"महादेवी के काव्य में सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद"

ममतामयी माँ
पूज्य पिता
एवं
इलाहाबाद की मधुर स्मृतियों
को......................

भूमिका

मेरी छायावादी कविता मे विशेष रूचि रही है तथा इसके काव्य–वैभव के वागर्थ ने मुझे लगातार आकर्षित किया है। इस युग के दर्शन, सौन्दर्य प्रेम और वेदना के प्रति मुझे सदा से लगाव रहा है। मै विद्यार्थी जीवन मे महादेवी की विशिष्ट भावभगिमा के चलते उनके गीतो की ओर आकृष्ट हुआ। उनके गीतो की सौन्दर्य चेतना ने मेरे सौन्दर्य–बोध को जागृत तथा उद्दीप्त किया है। अत शोध कार्य हेतु मैने सहज ही महादेवी के काव्य मे सौन्दर्य मूलक रहस्यवाद'' विषय का चयन किया।

हिन्दी साहित्य मे उत्कृष्टता की दृष्टि से छायावाद को प्रमुख स्थान प्राप्त है। जयशकर प्रसाद सुमित्रानन्दन पत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला और महादेवी वर्मा सभी छायावादियो के काव्य का भाव एव शिल्प–सौन्दर्य उत्कृष्ट है। इन सबके काव्य मे दर्शन और सौन्दर्य की निष्पत्ति सहज एव सूक्ष्म रूप मे दृष्टिगोचर होती है। इनका दर्शन आधुनिकता से युक्त विश्व दर्शन है। इन्होने दर्शन को व्यवहारिक जगत् मे प्रतिष्ठित किया है। इसे पलायनवादी नही कहा जा सकता है। छायावादी काव्य मे सौन्दर्य की अजस्र धारा प्रवाहित होती है। कवियो की राग चेतना से सिचित और उत्प्रेरित यह धारा सहज ही आकर्षण का केन्द्र है। सौन्दर्य तथा प्रेम के लौकिक तथा अलौकिक दोनो रूपो की सूक्ष्म अभिव्यजना इनके काव्य मे निदर्शित होती है। इनकी प्रेम तथा वेदना भी हृदय की उदार वृत्तियो से सचालित है और अपनी उदात्तता के चलते इसका पर्यवसन अलौकिक अज्ञात मे होता है। इन कवियो की सौन्दर्य चेतना व्यापकता लिए हुए है, जिसकी अनुभूति गहन और सूक्ष्म है। इनकी सौन्दर्य–विषयक दृष्टि प्रकृति–सौन्दर्य तक जाती है। दया करूणा ममता वेदना आदि के माध्यम से इनका आत्मिक सौन्दर्य निखरता है। अत छायावादी काव्य अपने सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण दार्शनिकता प्रेम तथा वेदना आदि के चलते विशिष्ट स्थान का अधिकारी स्वत हो जाता है।

छायावादी–साहित्य मे महादेवी वर्मा का योगदान अविस्मरणीय और अप्रतिम है। उनके गीतो का गीति–परम्परा मे विशिष्ट स्थान है। जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पत एव

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के काव्य पर हिन्दी साहित्य मे पर्याप्त शोध कार्य हुए है, परन्तु महादेवी वर्मा के काव्य पर अभी तक विशद रूप मे शोध कार्य नही हुआ है। महादेवी के सौन्दर्य और रहस्य सम्बन्धी दृष्टिकोणो पर व्यवस्थित ढग से विचार नही हुआ है। मेरी यह धारणा है कि महादेवी छायावादी काव्य की शैलीगत एव भावगत दोनो प्रभावो को पूर्णरूपेण आत्मसात् करती है। अपनी विशिष्ट भाव भगिमा के चलते उनका काव्य अन्य समकालीन कवियो से अलग दिखता है। यही कारण है कि छायावादी काव्य पर विचार करते हुए आलोचको ने उन्हे पर्याप्त महत्त्व नही दिया है। अत मेरा यह लक्ष्य रहा है कि महादेवी की मूल वृत्ति रहस्य और सौन्दर्य को उद्घाटित किया जाय।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे मेरी दृष्टि महादेवी के काव्य मे सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद की सृष्टि पर रही है। अत महादेवी वर्मा के मूल काव्य–ग्रन्थो का समग्रता एव तन्यमयता से अनुशीलन करना पडा। इनके काव्य की भूमिकाओ एव चित्रो से भी उनके दृष्टिकोण को समझने मे सहायता मिली। इनके गद्य (विशेषकर निबधो) का भी गभीर अनुशीलन कवयित्री के भाव–बोध को जानने मे सहायक सिद्ध हुआ। शोध विषय के सम्बन्ध मे मुझे रहस्यवाद और सौन्दर्य पर विशेष अध्ययन करना पडा। रहस्यवाद और सौन्दर्य विषयक अवधारणाओ के अध्ययन ने इनके काव्य को समझने मे सेतु का कार्य किया। यद्यपि मैने विभिन्न आलोचको एव मनीषियो की सौन्दर्य तथा रहस्य विषयक धारणाओ पर भी विचार किया है, परन्तु उन धारणाओ के पूर्व निर्मित सॉचो मे महादेवी के काव्य को कसने का प्रयत्न नही किया। सौन्दर्य एव दर्शन सम्बन्धी अवधारणाऍ भी बहुत–कुछ , व्यक्ति–सापेक्ष और युग–सापेक्ष होती है। अत महादेवी वर्मा के काव्य की मौलिकता स्वत सिद्ध हो जाती है। मैने महादेवी के काव्य एव गद्य से सौन्दर्य एव रहस्य सम्बन्धी तत्वो की खोज–खोज कर एकत्रित किया, तदुपरान्त उनको वर्गीकृत किया। इस प्रकार उनके काव्य मे जहॉ भी रहस्य की सृष्टि हुई – उन सब के माध्यम से मैने उनके सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद को उद्घाटित तथा सिद्ध किया है। मैने यथाशक्ति प्रभाववादी आलोचना से बचने का प्रयास किया है। उनके सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद के उद्घाटन मे किसी प्रकार के पूर्वाग्रह को लेकर नही चला। मैने उनके समग्र काव्य पर विचार करते हुए, निरपेक्ष दृष्टि से विषय को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मुझे इस शोध–प्रबन्ध के प्रणयन मे विविध समीक्षा प्रणालियो का आश्रय ग्रहण करना पडा है। जिनमे सैद्धान्तिक, व्याख्यात्मक, शास्त्रीय, तुलनात्मक और निर्णयात्मक समीक्षा प्रणाली मुख्य है।

प्रथम अध्याय मे छायावादी युग के पूर्व से पार्थक्य और छायावादी काव्य पर विस्तृत चर्चा की गई है। छायावादी काव्य के विकास क्रम को परिलक्षित करते हुए उसकी समय सीमा, नामकरण और युग प्रवाह पर सम्यक् चर्चा हुई है। युग प्रवाह के अन्तर्गत पुनर्जागरण, स्वच्छन्दतावाद और रवीन्द्र काव्य आदि के प्रभाव पर विशेष बल रहा है। अन्त मे छायावादी कवियो की काव्य–दृष्टि के विकास का सम्यक् मूल्याकन करते हुए महादेवी के काव्य की विवेचना प्रस्तुत की गई है। प्रस्तुत अध्याय मे महादेवी की अन्य कवियो से साम्य–वैषम्य पर भी पर्याप्त विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे महादेवी के काव्य विकास पर विचार किया गया है। उनके प्रारम्भिक और प्रौढ काव्य पर तर्कयुक्त ढग से टिप्पणी की गई है। महादेवी की काव्य सम्बन्धी अवधारणाओ और उनकी काव्य दृष्टि को इस अध्याय मे विवेचित किया गया है। प्रस्तुत अध्याय मे उनके सकलन ग्रन्थो की भी सूची और विवेचना प्रस्तुत की गई है। यद्यपि उनका महत्त्व उन सबकी भूमिकाओ के चलते ही है।

तृतीय अध्याय मे रहस्यवाद पर विस्तृत चर्चा है। इस विशद विवेचना के क्रम मे रहस्यवाद की भारतीय एव पाश्चात्य अवधारणा पर सैद्धान्तिक एव तुलनात्मक समीक्षा प्रणाली का आश्रय लिया गया है। तदुपरान्त, आधुनिक हिन्दी कविता और छायावादी कविता की रहस्य–भावना पर प्रकाश डालते हुए महादेवी को रहस्य की कवयित्री के रूप मे प्रतिष्ठित किय गया है। अत एक सम्यक् विवेचन सहज ही सभव हो गया है।

चतुर्थ अध्याय सौन्दर्यानुभूति पर विशद अनुशीलन और विवेचना को प्रस्तुत करता है। सौन्दर्य की बदलती अवधारणाओ के सन्दर्भ मे भारतीय और पाश्चात्य सौन्दर्य चिन्तन परम्परा पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् आधुनिक और छायावादी कविताओ की विशिष्टताओ और पूर्ववर्ती परम्परा से भिन्नता को दर्शाया गया है। महादेवी की सोन्दर्यानुभूति को तुलनात्मक रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

पचम अध्याय मे कविता मे सौन्दर्यानुभूति के आधार तत्त्व एव उपकरणो के माध्यम से उनकी शैली पक्ष पर भी विचार हुआ है। महादेवी की प्रणयानुभूति जो प्राय अज्ञात के प्रति है – प्रकृति, मानव, दर्शन, कल्पना, प्रतीक और बिम्बो के माध्यम से सौन्दर्य का उद्घाटन करती है। प्रस्तुत अध्याय मे सहज ही व्याख्यात्मक एव शास्त्रीय आलोचना प्रणाली का आश्रय लिया गया है।

षष्ठ–अध्याय–उपसहार मे सौन्दर्यानुभूति एव रहस्यवाद की पूरकता" पर विचार करते हुए उनके काव्य पर विचार किया गया है।

इस शोध–ग्रन्थ की पूर्णता का श्रेय परम पूज्य गुरुवर डॉ० राजेन्द्र कुमार वर्मा (आचार्य एव पूर्व अध्यक्ष हिन्दी–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) को है, जिन्होने इस शोध–प्रबन्ध का गुरुतर भार ग्रहण किया। गुरुवर के पितृतुल्य स्नेह और आशीर्वाद का ही परिणाम है कि आज मै यह प्रबन्ध इस रूप मे प्रस्तुत कर पाया हूँ। यह शोध–प्रबन्ध श्रद्धेया डॉ० मीरा श्रीवास्तव (आचार्य एव पूर्व अध्यक्ष हिन्दी–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद) के निर्देशन मे प्रारम्भ हुआ था। उनके विदेश प्रवास के चलते गुरुवर डॉ० राजेन्द्र कुमार वर्मा हमारे शोध निर्देशक बने। मै हिदी विभाग के गुरुओ डॉ० रघुवश, डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, डॉ० राजेन्द्र कुमार, डॉ० सत्य प्रकाश मिश्र आदि का भी आभारी हूँ। सरस्वती की सशक्त धाराये विश्वविद्यालय परिसर के बाहर भी है। मै उन क्षणो का भी आभारी हूँ, जिस क्षण इनकी लहरे मुझमे समाहित होती रही। इलाहाबाद की उन सडको तथा गलियो का भी आजन्म आभारी रहूँगा जहॉ से मैने विद्या ग्रहण की। मैने इन सडको/गलियो पर लुढकते पत्थरो के ठोकरो का भी मुरीद हूँ, जिन्होने मुझे लक्ष्य के प्रति सावधान किया।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के प्रणयन मे मुझे विभिन्न पुस्तकालयो से सामग्री सकलित करनी पडी। इनमे हिन्दी–सग्रहालय, हिन्दी–साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पुस्तकालय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविघालय, इलाहाबाद, केन्द्रीय पुस्तकालय, उ० प्र०, इलाहाबाद तथा केन्द्रीय ग्रन्थालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी प्रमुख है। मै इन पुस्तकालयो की उत्तम व्यवस्था तथा व्यवस्थापको के सहयोग का भी आजन्म ऋृणी रहूँगा, जिनके चलते मुझे शोध–सामग्री का अकाल नही झेलना पडा और शोध–विषय का तलस्पर्शी अध्ययन करने मे सहायता प्राप्त हुई।

मै अपने परिवार के समस्त सदस्यो, मित्रो और स्वजनो का भी आभारी हूँ, जिनके प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष सहयोग से यह कार्य सम्पादित हो सका।

दिनेश कुमार राय

दिनाक 21-11-2001 दिनेश कुमार राय

विषय सूची

प्रथम अध्याय

छायावादी काव्य और महादेवी

छायावादी काव्य

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास मे द्विवेदी युग के बाद की कविता को छायावादी युग से सम्बोधित किया गया है। जहॉ तक छायावाद युग की बात है तो उसमे राष्ट्रीय–सास्कृतिक, काव्य धारा के कवि (माखनलाल चतुर्वेदी, सियाराम शरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान आदि) भी अपनी रचनाये कर रहे थे, कुछ पूर्व के कवि भी सक्रिय थे तथा परवर्ती छायावाद मे आगामी काव्य–धाराओ के कवि भी सृजनरत थे। पर यहॉ छायावादी काव्य और प्रमुख रूप से जयशकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और महादेवी वर्मा के परिप्रेक्ष्य मे ही विवेचन उचित होगा।

द्विवेदी–युग के पूर्व के कवि राष्ट्र–दुर्दशा से व्यथित हो देश–गौरव को प्रतिष्ठित करने मे लगे थे। साथ ही साथ ब्रज भाषा का चोला उतार कर खडी बोली को महत्त्व देने लगे थे। पर द्विवेदी युग मे समाज स्वाधीनता हेतु कटिबद्ध हो चला था। इन्ही युगीन परिस्थितियो के चलते द्विवेदीयुगीन साहित्यकारो मे देश–गौरव तथा स्व–शासन एव स्व–राष्ट्र की परिकल्पना साकार हुई। भाषा, शैली तथा विषय वस्तु आदि के स्तरो पर भी परिवर्तन हो रहा था। रीतिकाल मे साहित्यिक भाषा ब्रज और अवधी ही थी। भारतेन्दु–युग मे खडी बोली का प्रारम्भिक रूप सामने आया। द्विवेदी युग मे आकर खडी बोली अपनी उत्कर्षता पर पहुँची। भाषा का एक मानक स्तर निर्धारित हुआ। छायावाद मे आकर भाषा को पर्याप्त लोच, मार्धुय, सुघडता तथा ओज मिला। रीतिकालीन कविताओ की एक निश्चित शैली थी, जो सस्कृति के लक्षण–ग्रन्थो पर आधारित थी। आधुनिक काल मे आकर ये बन्धन ढीले पडते गये और खडी बोली खासकर छायावाद मे एक तरह से मुक्त हुए। रीतिकाल मे दरबारीपन या अन्य तात्कालिक परिवेश के चलते कविता विषयगत रूप से स्थूल सौन्दर्य–चित्रण, नायिका के नख–शिख वर्णन आदि मे रूचि ले रही थी। वही भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग के साहित्यकारो ने सौन्दर्य के इस वासनात्मक रूप का चोला उतार फेका। इनके यहॉ नारी के प्रति दृष्टिकोण मे बदलाव और कविता की विषय–वस्तु का शनै–शनै विस्तारीकरण दिखता है। छायावाद मे इस विषय–वस्तु का वैविध्य–विस्तार चकित करता है। ऐसे विषयो पर भी कविताऍ लिखी गई जिसे

काव्य का विषय नही माना जाता था। छायावाद के बाद भी यह प्रवृत्ति जारी रही। सौन्दर्य के लौकिक तथा अलौकिक रूपो का चित्रण इन कवियो ने मुक्त–हृदय से किया। नारी को पूरा सम्मान देते हुए प्रेरक मानते हुए विभिन्न रूपो तथा दृष्टिकोणो से चित्रित किया। छायावाद मे नारी न तो भक्तिकाल की तरह माया या बाधा रही और न ही रीतिकाल की तरह भोग–विलास के दृष्टिकोण से देखी गई, बल्कि नारी को सम्मान की दृष्टि से देखा और समझा गया। छायावादी कवियो ने नारी–सौन्दर्य को रीतिकालीन मूल्यो से ऊपर उठाकर, 'नारी–सौदर्य के दैहिक सस्कारो का मानसिक और सास्कृतिक परिमार्जन किया है।[1] यहॉ तक कि नायिका प्रधान महाकाव्य भी लिखे गये–महाकाव्य के शास्त्रीय लक्षणो को खारिज करते हुए। सामाजिक मूल्यो आदि मे भी नवजागरण का प्रभाव या पूर्व – पश्चिम के द्वन्द्व से उपजी सामाजिक चेतना परिष्कृत होकर जनमानस मे पैठ रही थी।

द्विवेदी युग मे काव्य इतिवृत्तात्मकता से आबद्ध हो चुका था। इसी स्थूलोपासना के सीमतिक्रमण के फलस्वरूप नई क्राति सूक्ष्म द्वारा आयोजित और सम्पन्न हुई। इसे छायावाद सम्बोधन प्राप्त हुआ। सूक्ति वाक्य है– 'अति सर्वत्र वर्जयते। द्विवेदी युग मे कविता एक निश्चित सॉचे मे ढल चुकी थी। अभिव्यक्ति की स्वतत्रता युग की मॉग थी जो छायावादी काव्य का आधार बनी। छायावादियो ने सूक्ष्म की अभिव्यक्ति के लिए सॉचे के साथ–साथ भाषा को भी तोडा। डॉ० नगेन्द्र ने इस कविता को स्थूल के विरूद्ध सूक्ष्म का विद्रोह'[2] भी कहा है।

समय सीमा

साहित्य की सीमा निर्धारित करना, भौगोलिक सीमा निर्धारण की तरह सरल नही है। सहज ही बोधगम्य है कि प्राचीन सभी प्रवृत्तियॉ और आने वाली सभावित प्रवृत्तियॉ भी सूक्ष्म रूप से वर्तमान मे विद्यमान रहती है। जिसके चलते ठीक–ठाक निर्धारण करना कि कौन प्रवृत्ति कहॉ से प्रारम्भ हुई असम्भव नही तो दुष्कर अवश्य है। छायावाद के समय निर्धारण मे भी कई मतैक्य है। समय के साथ–साथ प्रथम प्रवर्तक पर भी विवाद है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को मैथलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, बदरीनाथ भट्ट और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की कविताओ मे छायावाद का बीज तत्त्व दिखता है। आगे वे सिद्ध करते हुए कहते है कि

[1] डॉ० कुमार विमल छायाबाद का सोन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ 100
[2] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृष्ठ 252

हिन्दी कविता की नई धारा का प्रवर्तक इन्ही को विशेषत श्री मैथलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय को समझना चाहिए।"[1] इसी प्रकार प्रसाद, पत और निराला को भी छायावाद का जनक मानते हुए तिथि निर्धारित की जाती है। महादेवी जी की साहित्य–साधना कुछ बाद मे प्रारम्भ हुई। अत वे इस विवाद का केन्द्र– बिन्दु नही बनती। 'गीताजलि' का प्रकाशन सन् 1913 ईसवी मे हुआ तथा छायावादी चेतना के कुछ बिन्दु रवीन्द्रनाथ टैगोर के काव्य मे निदर्शित होते है। इसी के लगभग प्रसाद का साहित्य प्रतिष्ठित हो रहा होता है। अत प्रसाद को छायावाद का जनक मानने मे कोई कठिनाई नही होनी चाहिए। जहॉ तक मुकुटधर पाण्डेय और मैथलीशरण गुप्त का प्रश्न है वे आगे चलकर छायावादी वृत्त मे नही स्वीकृत होते है। वस्तुत छायावादी चेतना के कुछ बिन्दुओ का प्रस्फुटन ही उनके काव्य मे होता है। जहॉ तक पत और निराला की बात है तो वे प्रसाद के बाद के कवि है न कि पहले के। पत के उच्छवास् (1920 ई०) तथा निराला की जुही की कली (1916 ई०) ही उन आलोचको का आधार बिन्दु है। प्रसाद की झरना (1918 ई०) मे छायावादी प्रवृत्तियो का पूर्ण निदर्शन मिलता है। स्पष्टत झरना की कविताऍ प्रकाशन तिथि के पूर्व लिखी गई है और प्रसाद काफी पहले से भी लिख रहे होते है। अत प्रसाद को छायावाद का प्रवर्तक मानने की धारणा और दृढ होती है। इस विवेचना के क्रम मे कुछ विद्वानो का मत प्रस्तुत है–

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक कविता के तृतीय उत्थान की सीमा का आरम्भ सवत् 1975 (सन् 1918 ई०) से माना है।[2]

2 इलाचन्द्र जोशी 'प्रसाद' को छायावाद का जनक मानते हुए इसकी समय सीमा 1913-14 ई० से सन् 1936-37 ई० तक स्वीकार करते है।[3]

3 आचार्य नददुलारे बाजपेयी पत को छायावाद का प्रवर्तक मानते है। उनका मानना है कि "साहित्यिक दृष्टि से छायावादी काव्य शैली का वास्तविक अभ्युदय सन् 1920ई० के पूर्व–पश्चात सुमित्रानन्दन पत की 'उच्छवास्' नाम की काव्य–पुस्तिका के साथ माना जा सकता है।[4]

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 650

[2] डॉ नगेन्द्र (स०) हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 536

[3] डॉ० धीरन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य काश भाग 1 पृष्ठ 253

[4] डॉ० धीरन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृष्ठ 253

4 डॉ० रामविलास शर्मा निराला से छायावाद युग का प्रारम्भ मानते है। उनके मतानुसार ''हिन्दी नवजागरण के सदर्भ मे निराला का यह लेखन महावीर प्रसाद द्विवेदी के ही कार्य की अगली कडी है।''[1] निश्चय ही उनका आधार बिन्दु निराला की कविता 'जुही की कली' है जो सन् 1916 ई० मे लिखी गई।

5 डॉ० नामवर सिह के अनुसार, '' यह प्रसाद, निराला, पत, महादेवी की उन समस्त कविताओ का द्योतक है, जो 1918 से '36 ई० के बीच लिखी गई।''[2]

6 डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त का मानना है कि ''छायावाद का प्रवर्तन जयशकर प्रसाद की कविताओ द्वारा सन् 1913-14 ई० मे हुआ तथा इसके तीन–चार वर्षो के बाद ही पत और निराला का आगमन इस क्षेत्र मे हुआ। इस प्रकार लगभग सन् 1918 ई० मे पूर्णत प्रतिष्ठित होकर कामायनी के रचना–काल 1936-37 ई० तक यह निरन्तर विकासोन्मुख रहा।''[3]

7 डॉ० तारकनाथ बाली के अनुसार, ''सन् 1918 से 1938 ई०तक के बीस सालो मे अत्यन्त विपुल काव्य–राशि का निर्माण हुआ।''[4]

8 डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित के अनुसार, ''इसका आविर्भाव सन् 1916 ई० के लगभग माना गया है।''[5]

9 डॉ रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि, ''कई दृष्टियो से जयशकर 'प्रसाद' छायावाद के पहले कवि है। सन् 1918 ई० मे प्रकाशित उनका काव्य–सग्रह 'झरना' इस नये ढग की कविताओ का पहला सकलन है।''[6]

छायावाद के सम्बन्ध मे कठिनाई यह है कि इस पर अधिकृत आलोचना सन् 1920-21 ई० से ही उपलब्ध होती है। यह जरूर है कि इन आलोचनाओ मे पूर्व की कुछ छिटफुट टिप्पणियॉ भी शामिल है। मुकुट धर पाण्डेय का 'हिन्दी मे छायावाद' (1920 ई०) तथा सुशील कुमार का 'हिन्दी मे छायावाद' (1921 ई०) लेखो से इस विषय पर कुछ प्रकाश पडता

---

[1] डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी हिदी साहित्य और सवेदना का विकास पृष्ठ 226
[2] डॉ० नामवर सिह छायावाद पृष्ठ 16
[3] डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त महादेवी नया मूल्याकन पृष्ठ 123
[4] डॉ० नगेन्द्र (स०) हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 537
[5] डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित छायावाद की सही परख–पहचान पृष्ठ 1
[6] डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास पृष्ठ 226

है।[1] इन निबधो मे छायावाद को रहस्यात्मक कविताओ के रूप मे जाना गया। इसी प्रकार छायावाद के अत के क्रम मे इलाचन्द्र जोशी का लेख–'छायावाद का विनाश क्यो हुआ ?' तथा डॉ० देवराज की पुस्तक 'छायावाद का पतन' महत्त्वपूर्ण है।[2] दोनो का प्रकाशन सन् 1940 होता है। अन्य आलोचक भी कामायनी को अन्तिम महत्त्वपूर्ण छायावादी कृति, तत्कालीन परिवेश (राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तरो पर) तथा प्रगतिवाद के उदय आदि को कारक मानते हुए सन् 1935-38 ई० के बीच छायावाद को समाप्त घोषित करते है।

उपरोक्त विवेचनो के आधार पर छायावाद के अत और प्रारम्भ पर दुविधा की स्थिति बनती है। जहॉ तक प्रारम्भ का प्रश्न है तो आलोचक वर्ग इसे सन् 1905 से 1920 ई० के बीच निर्धारित करते है। वस्तुत छायावादी कविता के कुछ बीज तत्त्व मुकुटधर पाण्डेय तथा मैथलीशरण गुप्त की कविताओ मे प्रकट होते है। पर वे बहुत स्पष्ट नही है। प्रसाद के काव्य मे सन् 1913-14 से इसका प्रस्फुटन स्पष्ट दिखता है। पर इनकी सशक्त रचना 'झरना' 1918 ई० मे प्रकाशित होती है। स्पष्टत इसकी कविताऍ 1918 ई० के पूर्व लिखी गई। निराला की 'जूही की कली' 1916 ई० मे लिखी गई। परन्तु , 'जूही की कली' के तत्काल बाद या पूर्व वैसी सशक्त रचना का क्रम निराला मे नही मिलता। यद्यपि कालातर मे निराला लोकप्रियता मे सबको पीछे छोड देते है। पत कुछ बाद मे प्रतिष्ठित होते है। हॉ ! इतना अवश्य है कि उनकी उपस्थिति सशक्त होती है। महादेवी जी इन तीनो के बाद मे अवतरित होती है। जयशकर प्रसाद मे निरतरता है। 'झरना' की प्रकाशन तिथि से जोडने पर सन् 1918 ई० से ही छायावाद की सीमा स्वीकार करनी पडेगी। छायावाद के प्रस्फुटन के अध्ययन के क्रम मे प्रसाद की पूर्ववर्ती रचनाओ को रखा जा सकता है। जहॉ तक समापन का प्रश्न है 'कामायनी' 1935 ई० मे और निराला की सशक्त कविताऍ 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्तिपूजा' भी इसी के आस–पास प्रकाशित होती है। यह वह समय था जब प्रसाद अपना शरीर छोडते है और पत तथा निराला अपना छायावदी चोला। यद्यपि पत अपने आलोचना ग्रन्थ 'छायावाद पुर्नमूल्याकन' मे छायावाद के निरतर विकसित होने की बात करते है।[3] जिसे पत की रचनाओ के विवेचन के

---

[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स) हिन्दी साहित्य काश भाग १ पृष्ठ २५१

[2] इलाचन्द्र जोशी ने अपने लेख 1940 ई० मे प्रकाशित (विशाल भारत अक्टूबर 4 क लख– छायावाद का विनाश क्यो हुआ ? डॉ० देवराज ने इस प्रसग को लेकर उक पुस्तक लिख डाली – छायावाद का पतन अस्तु। –
– डॉ० गणपति चन्द गुप्त महादेवी नया मूलयाकन पृष्ठ १२३

[3] वास्तव मे जिस आधुनिक काव्य–वस्तु तथा कला–बाध का तब छायावाद कहा गया वह आज भी उस युग की सकीर्णताआ तथा अपक्षाआ का अतिक्रम कर रिन्तर विकास की आर अग्रसर हान का प्रयास कर रहा है।
अपरिवत पृष्ठ 123

क्रम मे जरूर देखा जा सकता है। पर छायावाद के विवेचन के क्रम मे यह अपरिहार्य नही है। महादेवी की प्रौढतम कृति 'दीपशिखा' 1942 ई० मे सामने आती है। रामगढ के सुरम्य और शान्त वातावरण मे लिखी यह कृति छायावाद की भी अप्रतिम कृति के रूप मे व्याख्यायित की जाती है। ये कविताएँ 1942 ई० के पूर्व लिखी गई। इस तरह से (प्रकाशनावधि से देखकर) छायावाद का अत 1942 ई० माना जा सकता है। यह अवश्य है कि निराला और पत कुछ पहले ही छायावाद से मोह छोड चुके थे। अस्तु, छायावाद का समय सन् 1918-42 ई० के बीच ही मानना उचित होगा।

नामकरण –

जैसा कि कहा जा चुका है कि छायावाद पर प्रथम अधिकृत लेख 1920-21 ई० मे आये। ये लेख क्रमश मुकुटधर पाण्डेय तथा सुशील कुमार के थे। इसके पूर्व हल्की–फुल्की टिप्पणियॉ हो चुकी थी। "1927 ई० के मई मास की 'सरस्वती' मे महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सुकवि किकर' उपनाम से एक लेख लिखा था । 1927 ई० मे ही कृष्णदेव प्रसाद गौड ने महावीर प्रसाद द्विवेदी के उक्त निबध के उत्तर मे 'छायावाद की छानबीन' शीर्षक एक लेख लिखा।"[1] यद्यपि इन मनीषियो ने 'छायावाद' के अर्थ पर सहमति नही दिखाई है। साथ ही कुछ विचारको का भाव तिरस्कार–युक्त भी है। आचार्य रामचन्द शुक्ल ने इसे बगला कवियो के आधार पर 'छायावाद' चलने की बात की। उनके मतानुसार' उन्होने हिन्दी छायावाद और ईसाई 'फैटसमैटा' के बीच की कडी की भी कल्पना कर डाली और कह चले कि बगला मे भी इन कविताओ को छायावाद कहते थे।"[2] वही "हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि बगला मे 'छायावाद' नाम कभी चला ही नही।"[3] जयशकर प्रसाद कहते है कि, "कविता के क्षेत्र मे पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश–विदेश की सुन्दरी के बाह्य–वर्णन से भिन्न जब तक वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी मे उसे छायावाद

[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य काश भाग 1 पृष्ठ 251
[2] डॉ० नामवर सिह छायावाद पृष्ठ 14
[3] डॉ० धीरन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य काश भाग 1 पृष्ठ 251

के नाम से अभिहित किया गया।"[1] जो भी हो इस प्रवृत्ति का नाम 'छायावाद' चल पडा और इस धारा के कवि छायावादी कवि कहलाये।

एक विवाद यह भी चला कि, 'इसे छायावाद युग सम्बोधन क्यो दिया जाय'? राष्ट्रीय–सास्कृतिक धारा के कवि भी सृजनरत थे।" यह भी स्वीकार किया जाता है कि परिणाम मे छायावादी पद्धति की रचनाएँ राष्ट्रीय–सास्कृतिक धारा की रचनाओ से अधिक नही है।"[2] पर अपने व्यापक कलेवर के चलते ये रचनाएँ सशक्त सिद्ध हुई। जिसके चलते इस काल–खण्ड को 'छायावाद युग' सम्बोधन प्राप्त हुआ। वस्तुत ये कविताएँ अपने अभिव्यजनात्मक–स्वरूप, अनुभूति की उत्कर्षता, परम्परा–बोध, युग–बोध आदि के साथ–साथ उच्चतम जीवनादर्श भी प्रस्तुत करती है।

युग प्रवाह –

किसी भी काल–खण्ड विशेष के साहित्य को अध्ययन का केन्द्र बनाने से पूर्व, उसकी युगीन परिस्थितियो पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा। चूँकि सर्जक युग–समय–सीमा के भीतर ही सृजनरत रहता है। अत इस पर युगीन परिस्थितियो का प्रभाव स्वभाविक है। वस्तुत काल–विशेष की साहित्यिक प्रवृत्तियो का बीज–वपन तो पूर्व के युग मे होता है, किन्तु युग–सीमा के माहौल मे ही वह वृक्ष पल्लवित तथा पुष्पित होता है। मनुष्य प्रकृति का बौद्धिक तथा परिवर्तनशील प्राणी है। उसकी बौद्धिक चेतना सतत् प्रवाहित रहती है। यह वह बिन्दु है, जहॉ आगामी प्रवृत्ति के लक्षण प्रकट होते है तथा पूर्व से पार्थक्य स्पष्ट होता है। यह एक सहज क्रिया–प्रतिक्रया है और इसी सवेदनात्मक सघर्ष (विचार और चेतना के स्तर पर) काव्य का पृष्ठाधार निर्मित होता है। दूसरा बिन्दु वह है – जहॉ तत्कालीन परिवेश (राष्ट्रीय तथा अतर्राष्ट्रय) का प्रभाव पडता है। राष्ट्रीय घटनाक्रम तत्काल प्रभाव पडता है और अतर्राष्ट्रीय का भौगोलिक सीमा को अतिक्रमण कर। ये प्रभाव आन्तरिक, सास्कृतिक, राजनैतिक, भौतिक आदि धरातलो पर सम्पन्न होते है।

प्रथमत देखा जाय तो यह सदी व्यक्ति–स्वातत्र्य की सदी है। यह युग की मॉग थी। द्विवेदी युगीन काव्य नैतिकता से जकडा था। पर वे रूढियो से मुक्त हो रहे थे। भारतेन्दु युग के कवि रीतिकाल से उतना पार्थक्य अनुभव नही करते थे। खासकर उनकी

---

[1] जयशकर प्रसाद काव्य कला तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ 143

[2] डॉ० नगन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 537

अभिव्यजना–पद्धति तो रीतिकालीन ही है। ब्रज और खडी बोली मे सृजनरत ये कवि प्राचीन रूढियो से अशत ही मुक्त होते है। छायावादी कवि प्राचीन रूढियो तथा समावेशित प्रभावो से मुक्त हो नवीन राह के अन्वेषी बने। नये ढग से पुरातन की स्वीकृति भी इस युग मे मिलती है।

जहॉ तक तत्कालीन परिवेश के प्रभाव का प्रश्न है। तो इग्लैण्ड की अद्यौगिक क्राति के पश्चात यूरोप के विज्ञान, राजनीति, साहित्य आदि मे व्यापक परिवर्तन के स्वर परिलक्षित होते है। भारत उस समय ब्रिटिश साम्राज्य का एक उपनिवेश मात्र था। अत उन्नीसवी शताब्दी के मध्य मे और विशेष रूप से प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम (1857 ई०) के आस–पास इसके प्रभाव परिलक्षित होते है। इसे पुनर्जागरण सम्बोधन प्राप्त हुआ। पुनर्जागरण मे पाश्चात्य की वैज्ञानिकता तथा भौतिकता और आध्यात्म तथा सास्कृतिक–बोध का मिला–जुला स्वरूप देखने को मिलता है।

राजनैतिक स्तर पर विद्रोहियो ने ब्रिटिश सत्ता को उखाडने का प्रयत्न किया था। उनका यह प्रयत्न सतत् जारी था। वही भारतीय मनीषी भी पाश्चात्य और भारतीय विचारधाराओ पर चिन्तन–मनन कर रहे थे। शिक्षा के क्षेत्र मे वैज्ञानिक शिक्षा–पद्धति चल पडी। समूचे देश मे वैज्ञानिक चेतना प्रसारित हो रही थी। यूरोप के स्वच्छन्दतावादी कवियो ने यहॉके साहित्य को प्रभावित किया। हिन्दी कविता मे यह प्रवृत्ति टैगोर के काव्य से छन कर आई। रवीन्द्रनाथ टैगोर पुनर्जागरण की केन्द्र भूमि बगाल से थे और छायावाद के कवियो पर उनका थोडा–बहुत प्रभाव भी है। पत जी के अनुसार "कवीन्द्र के युग मे जो महान प्रेरणा हिन्दी काव्य–साहित्य को मिली वह वास्तव मे छायावाद के रूप मे विकसित हुई।"[1] पर यह प्रभाव अनुकरण के धरातल पर सम्पन्न नही होता। टैगोर कबीर के दर्शन से भी प्रभावित थे और उनकी कुछ कविताऍ रहस्यवादी भी है। इसी बहाने मध्ययुगीन कवियो पर भी विचार–मथन हुआ। मध्ययुगीन रहस्यवाद की यह प्रवृत्ति छायावाद मे आधुनिक ढग से व्याख्यायित और विश्लेषित हुई।

अस्तु, अनेक स्रोतो से तथा अन्त बाह्य परिस्थितियो से प्रभावित होते हुए भी अपनी मूल चेतना के अनुसार छायावादी काव्य विकसित होता है। उपर्युक्त सभी परिस्थितियो का प्रभाव सभी कवियो पर समान नही है।

---

[1] डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त महादेवी नया मूल्याकन पृष्ठ 117

छायावाद पर पडे प्रभावो के क्रम मे पुनर्जागरण या नवजागरण स्वच्छदतावाद और बगला के प्रभाव (रवीन्द्र काव्य के विशेष सन्दर्भ मे) पर विचार करना समीचीन जान पडता है।

पुनर्जागरण –

रोम शासन के पतन के पश्चात्, सन् 1350 ई० से सन् 1550 ई० के बीच के समय को यूरोप मे पुनर्जागरण या नवजागरण सम्बोधन प्राप्त हुआ। इस युग मे विज्ञान के प्रथम चरण–चिह्व दृष्टिगोचर होते है। इस युग मे धर्म की जगह दर्शन, सत की जगह उपभोगवाद आदि प्रतिष्ठित हुए। मनुष्य जो पारलौकिकता मे धर्म के चलते बॅधा था मुक्त हुआ। दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि व्यक्ति–चेतना विकसित हो व्यक्ति–स्वातन्त्र्य को प्रतिष्ठित कर रही थी। 'नवजागरण' की कल्पना के प्रचार का श्रेय इटली के नवजागरण के प्रथम इतिहासकार बर्कहार्ट को है, यद्यपि 'रेनेसॉ' (नवजागरण) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम प्रसिद्ध फ्रान्सीसी इतिहास दार्शनिक मिरोसेट ने 19वी शती के पूर्व के पूर्वाद्ध मे किया था।[1] विचारको का एक वर्ग नवजागरण को अरबो से उत्प्रेरित बताता है। यद्यपि भारत मे गुप्त काल को भी नवजागरण काल कहा जाता है, परन्तु यहॉ पुनर्जागरण या नवजागरण का तात्पर्य अग्रेजो के भारत आगमन के पश्चात् से ही है।

सन् 1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता सग्राम के आस–पास से पुनर्जागरण का प्रारम्भ माना जाता है। यह वह समय था, जब पौर्वात्य और पाश्चात्य सस्कृतियो की टकराहट से नई विचारधारा जन्म ले रही थी। इस विचारधारा मे जहॉ प्राचीनता के प्रति गौरव–बोध था वही पाश्चात्य दृष्टिकोण की वैज्ञानिकता भी। डॉ० बच्चन सिह आधुनिक काल के उपविभाजन का प्रारूप निम्नवत् प्रस्तुत करते है[2]–

1	पुनर्जागरण–काल (भारतेन्दु–काल)	1857-1900 ई०
2	जागरण–सुधार–काल (द्विवेदी–काल)	1900-1918 ई०
3	छायावाद –काल	1918-1938 ई०

[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृष्ठ 313
[2] डॉ० नगेन्द्र (स०) हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 439

4 छायावादोत्तर–काल

(क) प्रगति–प्रयोग–काल 1938-1953 ई०

(ख) नवलेखन–काल 1953 ई० से

वस्तुत वे छायावाद को पुनर्जागरण और सुधार के बाद की परिष्कृत स्थिति मानते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक गद्य और काव्य–साहित्य की दृष्टि से स० 1925-50 तक के काल को प्रथम उत्थान, स० 1950-75 तक के काल को द्वितीय उत्थान और सम्वत् 1975 के बाद के काल को तृतीय उत्थान कहा है।[1] डॉ० रामविलास शर्मा 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' की भूमिका मे चार चरणो की बात करते है। वे लिखते है, "गदर, सन् 57 का स्वाधीनता–सग्राम, हिन्दी प्रदेश के नवजागरण की पहली मजिल है। दूसरी मजिल भारतेदु हरिश्चद्र का युग है हिन्दी नवजागरण का तीसरा चरण महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियो का का कार्य–काल है हिदी नवजागरण के सम्बन्ध मे निराला का यह लेखन महावीर प्रसाद द्विवेदी के ही कार्य की अगली कडी है।"[2] पर यहॉ तीन ही चरणो मे देखना उचित होगा।

दो सस्कृतियो के अन्तरावलम्बन और अन्य कारणो से उपजी इस युग दृष्टि, युग मूल्य के निर्माण मे तत्कालीन वैचारिक आन्दोलनो एव मनीषियो का बहुत बडा हाथ रहा है। 'ब्रह्म–समाज', 'आर्य–समाज', 'प्रार्थना–समाज', 'स्वतत्रता आन्दोलन', 'थियोसाफिकल सोसायटी' जैसे विविध आदोलनो का प्रादुर्भाव एव उत्कर्ष इस काल मे देखने को मिलता है। स्वामी दयानद सरस्वती, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानद, रामकृष्ण परमहस, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गॉधी, श्री अरविन्द, सर्वपल्ली राधाकृष्णन्,मानवेन्द्र नाथ राय आदि विचारक पुनर्जागरण काल की मुख्य उपलब्धियॉ है। इन सब कारको का मिश्रित प्रभाव उस समय या बाद के हिदी साहित्य पर पडा। छायावादी काव्य को भी इस पुनर्जागरण से जोडकर देखा जा सकता है। यह नवजागरण तीसरे चरण मे छायावाद तक पहुँचता है। प्रथम, भारतेन्दुयुगीन नवजागरण मे धार्मिक या वैचारिक सस्थाओ, जैसे – आर्य–समाज, ब्रह्म–समाज, थियेसॉफिकल सोसायटी आदि के विचारो का समावेश मिलता है। द्वितीय चरण अर्थात् द्विवेदी युगीन नवजागरण मे पूर्ववर्ती का कुछ विकसित रूप मिलता है। इस पर तत्कालीन राजनैतिक तथा सामाजिक

---

[1] उपरिवत पृष्ठ ४३८

[2] डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी हिदी साहित्य और सवदना का विकास पृष्ठ २२६

परिस्थितियो का प्रभाव कुछ अधिक है। द्विवेदी युगीन साहित्यकार नैतिकता तथा परिष्कृत भाषा के उदाहरण प्रस्तुत करते है। तीसरे चरण मे छायावादी नवजागरण को सास्कृतिक नवजागरण भी कहा जा सकता है। इस पर बॅगला साहित्य खासकर रवीन्द्र साहित्य का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित मानते है कि, " छायावादी कवि अपने–अपने क्षेत्र मे विदग्ध विचारक रहे है। वेदान्त, शैवागम, बौद्ध मत, मार्क्स, गॉधी और अरविन्द तक को आत्मसात् करके समकालीन समाज–दर्शन के सहारे उन्होने एक जीवन–दर्शन को रेखाकित किया था, जो इस युग मे अव्यवहारिक लगता है, लेकिन अति भौतिकता से त्रस्त मानव–मन की मुक्ति का द्वार अन्तत वही सिद्ध होगा। यही छायावाद की युग–युगीन उपादेयता है।[1]

इस प्रकार पुनर्जागरण के प्रभावो का असर छायावाद पर स्पष्ट दिखता है। यह दो चरणो मे परिष्कृत होकर छायावादियो तक पहुॅचता है। ध्यान देने की बात यह है कि जागरण अनुकरण पर आधारित नही है। छायावादी इसे अपनी मौलिक चेतना से सम्पन्न करत है। वे नवजागरण से प्रेरित अवश्य है । वस्तुत भारत मे आधुनीकरण की प्रक्रिया विदेशी शासन के चलते आई। फिर भी इस प्रक्रिया मे अतीत की धार्मिक, दार्शनिक और साहित्यिक प्रक्रिया से छायावादियो का लगाव जुडाव बना रहा। इतना अवश्य है कि इसका परिष्कृत रूप ही सामने आया।

स्वच्छदतावाद

छायावाद पर न्यूनाधिक प्रभाव यूरोप के स्वच्छदतावाद (रोमाण्टिसिज्म) का भी माना गया हे। यहॉ तक कि प्रमुख छायावादी कवि पत भी इस बात को खुले रूप से स्वीकार करते है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका मे पत कहते है कि, "पल्लव काल मे मै उन्नीसवी सदी के अग्रेजी कवियो–मुख्यत शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टेनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूॅ, क्योकि इन कवियो ने मुझे मशीनी युग का सौदर्य–बोध और मध्यमवर्गीय सस्कृति का जीवन स्वप्न दिया है।"[2] रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, "पुराने ईसाई सतो के **छायाभास' (Phantasmata) तथा यूरोपीय काव्य क्षेत्र मे प्रवर्तित आध्यात्मिक** (Symbolısm) के

[1] डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित छायावाद की सही परख–पहचान पृष्ठ 27
[2] सुमित्रानन्दन पत आधुनिक कवि पृष्ठ 11

अनुकरण पर रची जाने के कारण बगाल मे ऐसी कविताए छायावाद कही जाने लगी।"[1] आगे वे श्रीधर पाठक, प० रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियो को स्वच्छन्दतावादी कवियो और प्रसाद, पत, निराला तथा महादेवी को छायावादी कवियो की श्रेणी मे रखते है। मुकुटधर पाण्डे तथा मैथलीशरण गुप्त भी इसी समय अवतरित होते है। ये कवि भी स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित है। प्रेम और मस्ती के काव्य के कवि तो प्रभावित है ही। डॉ० नामवर सिह रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छदतावाद को अलग– अलग परिभाषित करते है। वे कहते है कि "जहॉ तक रहस्यवाद, छायावाद और स्वच्छदतावाद शब्दो के शब्दार्थ और लोकप्रचलित भाव का सबध है, इन तीनो मे नि सदेह थोडा थोडा अतर है। रहस्यवाद अज्ञात की जिज्ञासा है, तो छायावाद चित्रण की सूक्ष्मता और स्वच्छदतावाद प्राचीन रूढियो से मुक्ति की अकाक्षा।"[2] वस्तुत छायावाद के व्यापक कलेवर मे रहस्यवाद और स्वच्छदतावाद दोनो प्रवृत्तियॉ समाहित है। यह भी नही है कि पूरा का पूरा काव्य रहस्यवादी या स्वच्छदतावादी हो। इस विवेचन के क्रम मे पाश्चात्य के रोमाण्टिसिज्म और उनके कवियो आदि पर विचार के पश्चात् ही कुछ कहना उचित होगा।

'क्लासिकल' और 'रोमाण्टिक' प्राय विरोधी अर्थ मे प्रयोग किये जाते है। योरोप मे 19वी शती का प्रथम चरण 'क्लासिकल' का पतन और 'रोमाण्टिक' का उद्‌भव माना जाता है। डॉ० कुमार विमल के मतानुसार, " 'क्लासिकल' कला वह है, जिसमे जातीय विवेक, पारम्परीण सस्थिति (ट्रैडिशनल ऐटिट्यूड) तथा शास्त्रीयता की सुरक्षा हो और, इसके विपरीत 'रोमाण्टिक' कला वह है जिसमे कल्पना और आवेग (पैशन) की प्रचुरता हो, पुरातन– प्रतिपादित मान्यताओ का विरोध हो एव सपनो की रगीनी के साथ गीले प्रेम का गायन हो।"[3] इस प्रकार वे दोनो को भिन्न घोषित करते है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने छायावाद के तत्वो पर विचार करते हुए लिखा है कि "उच्च कोटि की कल्पना, प्रकृति के रहस्यो का उद्‌घाटन, सुख–दु ख की एक तीव्र सवेदना, सौन्दर्य का एक आलोकमय दृष्टिकोण और चित्रात्मकता छायावाद की विभूतियॉ है ।"[4] इस तरह यदि देखा जाय तो रोमाण्टिसिज्म और छायावाद के कुछ गुण मिलते है। छायावाद मे पुरातन के प्रति विद्रोह और प्रेम–गायन भी प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है। जहॉ तक 'क्लासिकल' और 'रोमाण्टिक' की बात है, एक ही काल–खण्ड मे एक ही सर्जक दोनो तरह का सृजन कर सकता है। प्रसाद और निराला मे क्लासिकल साहित्य भी पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान है

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 556

[2] डॉ० नामवर सिह छायावाद पृष्ठ 16

डॉ० कुमार विमल छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ २५

डॉ० रामकुमार वर्मा विचार दर्शन पृष्ठ ७५

और पत और महादेवी मे उनकी अपेक्षा बहुत कम। छायावादी और रोमाण्टिक कविता की परिस्थितियो और प्रेरक तत्वो मे पर्याप्त भिन्नता है। फ्रास की क्राति के पश्चात् यूरोप मे रोमाटिक कविता की शुरुआत होती है। जबकि, "   छायावादी आन्दोलन के पीछे भारतीय सभ्यता और सस्कृति की वैचारिक पीठिका का प्रमुख हाथ है।"[1] फिर भी, उन कवियो पर दृष्टिपात करना समीचीन है – जिनका न्यूनाधिक प्रभाव छायावादियो पर दृष्टिगोचर होता हे।

सन् 1793 ई० मे विलियम वर्ड्सवर्थ की दो रचनाएँ 'इवनिग वॉक' तथा डेस्क्रिप्टिव स्केचेज प्रकाशित होती है। जिस पर पोप जॉन्सन युग का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।"   सन् 1798 ई०, वर्ड्सवर्थ और कोलरिज की सयुक्त रचना 'लिरिकल बैलेड्स' प्रकाशित हुई जो स्वच्छदतावाद सम्प्रदाय की प्रसिद्धि की घोषणा करता है।"[2] रोमाण्टिक आदोलन के प्रथम चरण मे जेम्स टॉमसन, विलियम कॉलिन्स, टॉमस विलियम काउपर, राबर्ट बर्न्स, विलियम ब्लेक आदि कवि आते है। द्वितीय चरण मे वर्ड्सवर्थ, शेली, कीटस, बायरन आदि कवि आते है। यह विभाजन शैली, समय, विचार आदि की दृष्टि से है, परन्तु जहॉ तक छायावादियो पर प्रभाव की बात है– ब्लेक, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शेली, कीट्स, बायरन और टेनीसन ही प्रमुख है। डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय मानते है कि "योरोप के रोमाटिक कवियो मे वर्ड्सवर्थ, शेली और कीट्स एक ओर है तो ब्लेक जैसे रहस्यवादी दूसरी ओर है।"[3] आलोचक इन चारो से छायावादी कवियो की सगति भी बैठाते है। "यदि सक्षेप मे कहा जाय तो प्रसाद और वर्ड्सवर्थ मानवतावादी है, कवि निराला और शेली क्राति प्रिय है, पत और कीट्स सौन्दर्यवादी है तथा महादेवी और विलियम ब्लेक रहस्यवादी है।"[4] यह साम्य भी कुछ स्तरो पर है। पर्याप्त वैषम्य भी दोनो समूहो के कवियो मे है।

'दी प्रिल्यूड' (The Prelude) वड्र्सवर्थ की प्रमुख स्वतन्त्र कृति है। उनका काव्य जन–भाषा मे है। प्रकृति के सर्वोत्कृष्ट निरूपण, सरलता, सौन्दर्य, गौरव तथा ओज उनकी कविताओ के प्रमुख गण है। कॉलरिज की स्वतन्त्र कृतियो मे 'एनिसिअन्ट मेरीनर' (Ancient Mariner), 'क्रिस्टावेल' (Christabel), कुबलाखान (Kublakhan) आदि प्रमुख है। इनकी कविताओ मे करूणा, कल्पना, विस्मय तत्व धार्मिक रूढियो के प्रति विद्रोह आदि का प्रकटन होता है। लार्ड बायरन की 'गियोर' और चाइल्ड हैरल्ड पिलग्रिमेज' (Child Harold's

---

[1] डॉ० कुमार विमल छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ 29

[2] हिन्दी विश्व कोष खड 10

[3] डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा पृष्ठ 219

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबध पृष्ठ 108

Pilgrimage) मे प्रकृति के प्रति प्रेम–भाव का निरूपण, वैयक्तिक प्रेमानुभूति आदि मिलती है। शेली की प्रमुख कृति 'दी मास्क आफ एनार्की' (The Mast of Anarchy) मे आदर्शवादी स्वच्छन्दता पाई जाती है।" शेली ने पदार्थ (Matter) की सत्ता के स्थान पर सर्वत्र चेतना–तत्त्व के प्रसार को ही मान्यता प्रदान करते हुए प्रकृति और मानव को एक ही चेतन तत्त्व की सगुण अभिव्यक्ति माना है।"[1] कीट्स और टेनीसन मे भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉ पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होती है। वही ब्लेक रहस्यवादी कवि सिद्ध होते है। यद्यपि उनमे भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉ समाहित है।

स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन मे कविता के अतिरिक्त गद्य (भूमिकाओ के रूप मे), कथा साहित्य, नाटक, आलोचना आदि मे भी उसकी विचारधारा पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।" इग्लैड मे 19वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवि वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शैली, कीट्स, बायरन इसी नये उन्मेष के कवि है। लैग, हट और हैजलिट के निबन्धो, कीट्स के प्रेम–पत्रो, स्कॉट के उपन्यासो, डी–क्विसी के 'कान्फ्रेशस ऑव ऐन ओपयिम ईटर' मे गद्य को भी अनुभूति, कल्पना और अभिव्यक्ति का वही उल्लास प्राप्त हुआ। आलोचना मे कॉलरिज, लैब और डी–क्विसी ने रीति से मुक्त होकर शैकसपीयर और उसके चरित्रो की आत्मा का उद्घाटन किया।"[2]

जहॉ तक स्वच्छन्दतावादी काव्य के स्वरूप का प्रश्न है, जनसामान्य और उसकी व्यैक्तिक अनुभूति ही उसके विषय बने। इस प्रकार वह अपने पूर्व की नैतिकतावादी और रूढिवादी साहित्य से भिन्न थी। जर्मन दार्शनिको का दर्शन तथा फ्रास की राज्य क्राति (सन् 1789 ई०) रोमाण्टिक कविता को प्रभावित करने वाले कारक है। रूसो रोमाण्टिक धारा का प्रथम प्रतिनिधि था। स्वातत्र्य की लालसा एव बधनो का त्याग उसका मुख्य आग्रह था। प्राचीन धर्म, परम्परागत सामाजिक सस्कार आदि समाप्त हुए और रोमाण्टिसिज्म का जन्म हुआ। साहित्य को सीमा, नियम, आर्दश, उद्देश्य आदि से निकालकर व्यापक बनाया गया। डॉ० कुमार विमल छायावादी कविता की दार्शनिक पृष्ठिभूमि पर काण्ट, शिलर, फिख्ते, शेलिग और हीगेल का प्रभाव मानते है–विशेष रूप से काण्ट और हीगेल का पर यह प्रभाव आशिक ही है।[3]

---

[1] डॉ० जगदीश गुप्त स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का दार्शनिक विवचन पृष्ठ 59

[2] डॉ० धीरन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी विश्व काष–खण्ड 1 पृष्ठ 18

[3] छायावादी कविता क पीछ काम करने बाली दार्शनिक पृष्ठिभूमि क प्रसग मे छायावादी कविया पर जर्मनी क इस दर्शन का प्रभाव हे जा 1724 ई० से 1854 ई० के अर्न्तगत काण्ट शिलर फिख्ते शलिग और हीगल क द्वारा निर्मित हुआ। इन दार्शिनिका क बीच भी काण्ट और हीगेल के दर्शन ने छायावादी कवियॅा का अधिक प्रभावित किया है

अस्तु, रोमाण्टिक साहित्य मे मानवीय अनुभूतियो को प्रश्रय, मानवतावाद, प्रकृति–प्रेम, आध्यात्मिकता, तीव्र सवेदना, स्फूर्ति, नैसर्गिकता, विचार, सरलता, क्लासिक काव्य के बन्धनो को तोडना, रूढियो के प्रति विद्रोह आदि का निदर्शन होता है। स्पष्टतया छायावादी काव्य भी इन लक्षणो से कुछ–न–कुछ अवश्य प्रभावित है। यद्यपि स्वच्छन्दतावादी काव्य की परम्परा को कुछ मनीषी रीतिमुक्त कवियो तक ले जाते है। डॉ० मनोहरलाल गौड का मानना है कि, "धनानन्द के साथ ठाकुर, बोधा, द्विजदेव इत्यादि भी इस प्रसग मे उल्लेखनीय हैं।"[1] आधुनिक मे छायावादी कवि के कुछ पूर्व तथा समकालीनो को स्वच्छदतावादी माना जाता है जो उचित है।" इस प्रसग मे श्रीधर पाठक के साथ राय देवीप्रसाद पूर्ण, रूपनारायण पाण्डेय, मन्नन द्विवेदी गजपुरी, बदरीनारायण भट्ट, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाडेय इत्यादि जैसे कवि महत्त्वपूर्ण माने जा सकते है।"[2] पर छायावादी काव्य मे स्वच्छदतावादी और रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ भी समाहित है। क्रोचे कहता है कि " 'रोमाण्टिक' कवि विधान की अपेक्षा विषय पर अधिक बल देता है।"[3] इस दृष्टि से छायावादी कवि इन कवियो के निकट है। अज्ञेय ने " छायावाद को अग्रेजी के रोमाटिक आदोलन का प्रभाव मानने से इनकार किया तथा उसे कालिदास और भारतीय परम्परा से जोडा।"[4] वस्तुत छायावादियो का सास्कृतिक पक्ष भारतीय ही है। विजयदेव नारायण साही भी 'लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस' निबध मे छायावाद पर रोमाटिक आन्दोलन का प्रभाव मानने से लगभग इन्कार करते है–

'रोमाटिसिज्म और छायावाद का साम्य उस एनर्जी मे है जो मॉरल विजन और इमेजिनेटिव विजन के साथ–साथ भभक उठने से पैदा होती है, लेकिन दोनो तत्त्वो का अनुपात इन दोनो मनोभूमियो मे बहुत भिन्न है, बल्कि हम कह सकते है कि परस्पर विलोम भी है। इसलिए दोनो का प्रकाश भिन्न है। इस भिन्नता को ध्यान मे रखकर ही हम रोमाटिसिज्म की शब्दावली का व्यवहार छायावाद के सदर्भ मे कर सकते है।[5] अत यह कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य पर रोमाण्टिक कवियो का प्रभाव न्यूनतम ही है। वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, बायरन टेनीसन, ब्लेक आदि का थोडा बहुत प्रभाव छायावादियो पर दृष्टिगोचर होता है। यह प्रभाव शैली पर कुछ अधिक है और भाव पर कम। सास्कृतिक तथा काल के धरातल पर दोनो

– डॉ० कुमार विमल छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ३४

[1] डॉ० मनोहरलाल गौड धनानन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा पृष्ठ 31

[2] डॉ० रामचन्द्र मिश्र श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व–स्वच्छन्दतावादी काव्य पृष्ठ 31

[3] क्राच द रोमाण्टिक थ्योरी आफ पोयट्री पृष्ठ 1

[4] डॉ० गिरिजा राय साहित्य का [illegible] पृष्ठ 110

[5] विजयदव नारायण साही साहित्य का छठवॉ दशक पृष्ठ 274

युग के कवि भिन्न है। ये प्रभाव कुछ प्रत्यक्ष तथा कुछ रवीन्द्र काव्य से छनकर आते है। रोमाण्टिक कवियो की वैयक्तिक चेतना से छायावादी अवश्य प्रेरित है। छायावादी कवि भी रोमाण्टिक कवियो की तरह छन्द के बन्धन को तोडते है। यह कार्य भाव पक्ष को महत्त्व देने के कारण होता है। छायावादियो मे नैतिकता का पुट अधिक है तो शक्ति का विस्फोट कुछ कम। पाश्चात्य वैज्ञानिक चेतना का प्रभाव हो या दर्शन आदि का – सब अपने धरातल पर सम्पन्न होता है। वस्तुत पाश्चात्य और भारतीय सस्कृति के टकराहट के फलस्वरूप जन–मानस मे जितनी चेतना उत्पन्न हुई, उतना ही छायावादी भी उत्प्रेरित होते है। यद्यपि उनका आग्रह भारतीय सस्कृति, साहित्य और दर्शन के प्रति ही अधिक है।

रवीन्द्र काव्य –

छायावाद पर बगला साहित्य का भी न्यूनाधिक प्रभाव स्वीकार किया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी योरोपीय तथा बगला प्रभाव को स्वीकार करते है। डॉ० नगेन्द्र भी रवीन्द्र को प्राचीन सस्कृत काव्य, अगरेजी का स्वच्छन्दतावाद और मध्ययुगीन रहस्यवाद से समन्वित मानते हुए उसकी छाया छायावादियो पर पडने की बात करते है। वे कहते है –

"कालिदास की कविता मे ऐसे अनेक गुणो का उत्कर्ष सहज–सुलभ था जो स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्राणतत्व है। इधर मध्ययुग के मर्मी कवियो की रचनाओ मे रहस्य–भावना का अपूर्व ऐश्वर्य विधमान था। रवीन्द्रनाथ इन दोनो के समन्वय का मार्ग प्रशस्त कर चुके थे। अत द्विवेदी युग के समाप्त होते–होते हिन्दी–कविता मे एक ऐसी प्रवृत्ति का आविर्भाव हुआ जो काव्य वैभव की दृष्टि से अधिक समृद्ध है।"[1]

वस्तुत देश के ऐतिह्य से विच्छिन्न होने की चिता रवीन्द्र तथा छायावादी साहित्य मे विद्यमान है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की महत्त्वपूर्ण कृति 'गीताजलि' को वर्ष 1913 ईसवी मे नोबल पुरस्कार मिलना एक ऐतिहासिक घटना है। इस घटना ने रवीन्द्रनाथ को लीविग लीजेन्ड बना दिया। अत भारतीय साहित्यकारो का रवीन्द्र से उत्प्रेरित होना उचित ही लगता है। छायावादियो की मूलवृत्ति रवीन्द्र काव्य से न्यूनाधिक साम्य रखती है। अत गीताजलि' के मूल तत्त्वो का प्रस्फुटन और विस्तार छायावादी काव्य मे दिखता है। यद्यपि गीताजलि के

---

[1] डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 734

प्रकाशन के पूर्व से ही प्रसाद लिख रहे होते है। पर जनजागरण के केन्द्र बगाल मे रवीन्द्र का होना तथा छायावादियो का पुनर्जागरण से उत्प्रेरित होना साम्यता का कारण बनता है। प्रो० सोमेन्द्रनाथ चटोपाध्याय कहते है –

"रवीन्द्रनाथ के हाथो बगला रोमाटिक काव्य चूडान्त उत्कर्ष पर पहुँच गया, किन्तु रवीन्द्र काव्य मे भी अनेक परिवर्तन हुआ है। उनकी रचना मे वय क्रम मे भाव, रूप और छन्द की दृष्टि से नाना प्रकार का विवर्त्तन हुआ था। आरभ से अन्त तक मे रवीन्द्रनाथ एक दम भिन्न है। अन्तिम अवस्था मे रवीन्द्रनाथ नये रचनाकार के रूप मे आते है। इस बात को मानते हुए बुद्धदेव कवि ने माना है कि रवीन्द्रनाथ आधुनिकता के पुरोधा पुरूष थे।"[1]

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लगभग 2000 कविताएँ लिखी। गीत–पञ्चशती' (स० इदिरा देवी चौधुराणी) मे उनके सन् 1877 ईसवी से सन् 1941 ईसवी तक के पॉच सौ चुने हुए गीत सकलित है। इस चयनिका मे पूरे गीतो को छ शीर्षको मे विभाजित किया गया है। जिससे इनके काव्य–क्षेत्र पर पर्याप्त प्रकाश पडता है। रवीन्द्र के काव्य पर विचार करने के पश्चात् ही प्रभाव पर विवेचन उचित होगा। प्रस्तुत है उनके गीतो के आधार पर विवेचन –

ऐसो गृहे देवता

ए भवन पुण्य प्रभाव करो पवित्र ।।

– – – – – – – – – – – – –

– – – – – – – – – – – – –

सब बैर हबे दूर

दूर तोमारे वरण करि जीवन मित्र ।।[2] (सन् 1896 ई०)

'आनुष्ठानिक गान' शीर्षक के अन्तर्गत चयनित इस गीत मे गृह–प्रवेश के समय का अनुष्ठान वर्णित है। जिसमे भवन पवित्र करने के साथ–साथ दु ख दूर करने की और धैर्य, प्रेम तथा समरसता की मॉग गृह–देवता से की गई है। आगे 'स्वदेश ' शीर्षक के अतर्गत सकलित गीत मे वे कहते है –

एक सूत्रे बॉधि याछि, सहस्त्रटि मन,

---

[1] प्रो० सोमेन्दनाथ चटोपाध्याय सारगूधारा अक 14-15 दिसम्बर 2000 पृष्ठ 19
[2] इदिरा देवी चौधुराणी (स०) गीत–पत्र्चशती (रवीन्द्र के गीतो का सगह) पृष्ठ 370

एक कार्ये सॅपियाछि सहस्त्र जीवन –

बन्दे मातरम् ।।

– – – – – –

– – – – – –

टूटे तो टुटुक एइ नश्वर जीवन

एक कार्ये सॅपियाछि सहस्त्र जीवन

बन्दे मातरम् ।।[1]

(सन् 1877 ई०)

प्रस्तुत गीत मे सहस्त्रो मन के एक सूत्र मे बॉधने की उद्घोषणा है। साथ ही साथ निडर भावो से प्रलय तािि बाधाओ को सहने की परिकल्पना और मृत्योपरान्त भी एकता के बधन के न टूटने की कामना है। 'विचित्र' शीर्षक के अन्तर्गत सग्रहीत गीत मे कवि कहता है–

हे नूतन देखा दिक बार–बार जन्मेर प्रथम शुभ लक्षण

– –

– –

चिर नूतनेरे दिलो डाक

पॅचिश बैशाख।।[2]

(सन् 1877 ई०)

इस कविता मे जीवन की कामना और असीम के प्रति विस्मय–बोध है। आगे 'प्रेम गीत' शीर्षक के अन्तर्गत सकलित कविता मे कवि कहता है–

अशान्ति आज हानल एकी दहन ज्वाला।

बिर्धल हृदय निदय बागे वेदन ढाला ।।

– – – – – – – – – – – – – – – –

[1] उपरिवत पृष्ठ 343
[2] उपरिवत् पृष्ठ 342

\- - - - - - - - - - - - - - -

यात्रा अमार निरूद्देशा, पथ–हरानोर लागल नेशा–

अचिन देश ऐबार आमार यावार पाला ।[1] (सन् 1933-36 ई०)

इस गीत मे जहॉ प्रकृति के माध्यम से ईश्वर के प्रति प्रेम को निदर्शित किया गया है, वही अन्त मे कवि मृत्यु को शास्वत मानने और मृत्यु का वरण करने की बात करता है। यहॉ रहस्यवाद का सहज अकुरण भी है। 'पूजा' शीर्षक के अन्तर्गत चयनित गीत मे कवि कहता है–

यदि तोमार देखा ना पाइ प्रभु, ए बार ए जीवने

\- - - - - - - - - - - - - - - - -

\- - - - - - - - - - - - - - - - -

येन तोमाय घरे हय नि आना से कथा रय मने।

येन भुले ना याइ, वेदना पाइ रायने स्वपने ।।[2] (सन~ 1908 ई०)

अपने इस प्रारम्भिक गीत मे कवि, ईश्वर को इसी जन्म मे पाने की लालसा रखता है। साथ–साथ ईश्वर को न पाने की स्थिति के आशका मात्र से कवि गहरी उदासी से भर जाता है।

रवीन्द्रनाथ कहते है कि ''मेरे शुरू के गीत 'ईस्थेटिकल' है, उनमे सौन्दर्य–बोध का तत्त्व प्रधान है।[3] वस्तुत अन्तस्थल की गहन–गहराईयो से निकलने के कारण उनके गीतो मे सम्पूर्णता है। उनके विलायत से स्वदेश वापसी के बाद के दो गीति नाटिकाओ 'बाल्मीक प्रतिभा' और 'काल मृगया' पर विलायती सगीत के प्रभाव के दर्शन होते है। बाद के गीतो मे ऐसा कम ही पाया जाता है। इतना अवश्य है कि पाश्चात्य मनीषियो के विचारो का निदर्शन भी मिलता है। यदि विश्लेषण करे तो हम पाते है कि रवीन्द्र पर पाश्चात्य का कुछ हल्का, भारतीयता का कुछ गहरा और बगाली लोक परम्परा का भी प्रभाव परिलक्षित होता है।

---

[1] इदिरा देवी चौधुराणी (सपा०) गीत–पत्र्चशती (रवीन्द्र के गीतो का सग्रह) पृष्ठ 193-94

[2] उपरिवत् पृष्ठ 31

[3] उपरिवत् पृष्ठ 9

जहॉ तक छायावादियो पर रवीन्द्र काव्य के प्रभाव की बात है तो छायावादियो द्वारा स्वय स्वीकार किया गया है। पत कहते है–

''कवीन्द्र रवीन्द्र भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत बनकर आये। 'कवीन्द्र के युग' मे जो महान प्रेरणा हिन्दी काव्य–साहित्य को मिली, वह वास्तव मे छायावाद केरूप मे विकसित हुई।[1](गद्य–पद्य – पृष्ठ 151) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' कहते है–

''रवीन्द्रनाथ द्वारा बग–भाषा को वह जीवन मिलता है। उनकी अकेली शक्ति बीस कवियो का जीवन तथा इन्द्रजाल लेकर साहित्य के हृदय केन्द्र से निकली और फैली। हिन्दी मे छायावादी कहलाने वाले कवियो से इसका श्रीगणेश हुआ।''[2] महादेवी जी कहती है–

' विशेषत बगला से उन्हे जो मिला वह तत्त्वत भारतीय ही था क्योकि रवीन्द्र स्वय भारतीय सस्कृति के प्रहरी है।''[3]

जयशकर प्रसाद को भी नगेन्द्र, कालिदास और रवीन्द्र की परम्परा मे रखते है।''[4] डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त कहते है–

''गीताजलि मे मुख्यत उदात्त प्रेम, रहस्यानुभूति, प्रकृति का सजीव रूप मे अकन, वेदना की छाया, वैयक्तिक अनुभूतियो के रूप मे कथ्य, कोमल, मधुर गीति शैली–आदि प्रवृत्तियॉ दृष्टिगोचर होती है। ये सभी प्रवृत्तियॉ न्यूनाधिक मात्रा मे प्रारम्भिक छायावाद मे दृष्टिगोचर होती है। वस्तुत 'गीताजलि' मे प्रणयानुभूतियो को भले ही वे लौकिक हो या अलौकिक, अत्यन्त उदात्त गभीर एव पवित्र रूप दिया गया है–अत वे सर्वत्र ही रहस्यभास और रहस्यवाद से सम्बद्ध दिखाई पडती है।''[5]

सक्षेपत यह कहा जा सकता है कि विश्व–कवि रवीन्द्र की अनुभूतियॉ बहुमुखी और अन्तस्थल को उकेरने वाली सिद्ध होती है। एक नवीन सास्कृतिक पृष्ठभूमि का बीज–वपन हमे उनके काव्य मे मिलता है। वे पाश्चात्य सस्कृति को भारतीयता की कसौटी पर कसते है और कुछ मिश्रण भी करते है। प्रकृति के अन्तस्थल मे बैठकर उसके निगूढतम रहस्यो को पढने

---

[1] सुमित्रानन्दन पत गद्य–पथ पृष्ठ 151

[2] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रबन्ध–पद्म

[3] डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त महादेवी नया मूल्याकन पृष्ठ 133

[4] डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 734

डॉ० गणपति चन्द गुप्त महादेवी नया मूल्याकन पृष्ठ 134

का सफल प्रयास इनके पूरे काव्य विशेषत 'गीताजलि' मे मिलता है। कबीर दर्शन से भी रवीन्द्र प्रभावित होते है। उनमे मध्ययुगीन रहस्यवादी कवियो की तरह अज्ञात मे विलीन होने की प्रवृत्ति न होकर सहज सहचर की भावना है। उनके उत्तरकालीन गीत जिन्हे 'ईस्थेटिकल' कहा जा सकता है। वे एक विशेष प्रकार की सात्विकता और सादगी भरे रहस्य और सौन्दर्य से युक्त है। उनका यही रूप छायावादी कवियो मे अपनी चरम् अभिव्यक्ति पाता है। इस प्रकार रवीन्द्र प्रेम, रहस्य, आनद, प्रकृति, वेदना, वैयक्तिकता, राष्ट्रीयता, शैली और सास्कृतिक–वैचारिक धरातल पर छायावादी कवियो को उत्प्रेरित करते है।

छायावादियो की काव्य–दृष्टि का विकास

जयशकर प्रसाद –

जयशकर प्रसाद (सन् 1889-1937 ई०) छायावाद के प्रथम सम्पूर्ण कवि माने जाते है। सही अर्थो मे ये छायावाद के जनक भी है। पर इनके पहले के कवियो मे भी छायावाद की कुछ प्रवृत्तियॉ विद्यमान है। कवि, नाटककार, उपन्यासकार, निबधकार के रूप मे असदिग्ध प्रतिभा के धनी प्रसाद की आरम्भिक रचनाऍ 'इन्दु' (1909 ई०) नामक मासिक से देखी जा सकती है। प्रारम्भ मे ये ब्रज भाषा मे लिखते थे, फिर खडी बोली मे लिखने लगे। कवि ने प्रारम्भिक काव्य को पुन खडी बोली मे परिवर्तित किया। इनकी समस्त काव्य–रचनाओ का काल–क्रमानुसार विवरण निम्नवत् है–

'चित्राधार' (सन् 1909 ई० फिर 1918 ई० मे), 'प्रेमपथिक' (पहले ब्रज, तत्पश्चात 1913 ई० मे खडी बोली मे), 'महाराणा का महत्त्व' (1914 ई०), 'कानन कुसुम' (सन् 1912 ई० पुन 1916 ई० मे), 'करूणालय' (सन् 1913 ई०), 'झरना' (1918 ई० तदुपरान्त 1927 ई०), 'ऑसू' (1925 ई०), 'लहर' (1931 ई०) और 'कामायनी' (1936 ई०)।

प्रसाद की प्रारम्भिक कविताऍ पत्र–पत्रिकाओ मे छपी, कुछ ब्रज से खडी बोली मे लिखी गईं तथा कुछ के प्रथम और द्वितीय सस्करण मे पर्याप्त भिन्नता है। उदाहरणार्थ –'

सन् 1927 ई० मे 'झरना' का दूसरा सस्करण 31 नयी कविताओ को जोडकर प्रकाशित

हुआ।''[1] अत कालावधि पर विवाद सम्भव है। पर काव्य–समीक्षा की दृष्टि से 'झरना', 'ऑसू', 'लहर', और 'कामायनी' ही अधिक महत्त्वपूर्ण है। 'झरना' के पूर्व की रचनाओ का प्रसाद–काव्य के विकास–क्रम की दृष्टि से ही अध्ययन होता आया है।

इसके अलावा बारह नाटक, पॉच कहानी–सग्रह तीन उपन्यास (एक अपूर्ण), एक निबध–सग्रह और कुछ छिटफुट ही इनकी साहित्यिक पूँजी है। इनक गद्य–साहित्य तथा काव्य–सग्रहो की भूमिकाओ से इनके साहित्यिक दृष्टिकोण का पता चलता है।

'चित्राधार' मे सकलित कविताओ मे कवि ने पौराणिक एव ऐतिहासिक विषयो को केन्द्र मे रखकर इतिवृत्तात्मक शैली मे वर्णन किया है। निश्चय ही यहॉ कवि द्विवेदी युग से अशत प्रभावित है। प्रकृति का स्वतत्र रूप, प्रेमानुभूतियो और भक्ति–भावना की अभिव्यजना भी कवि ने की है। 'कल्पना'–सुख, 'विसर्जन', 'नीरव–प्रेम आदि कविताओ मे प्रसाद की प्रणय–भावना अकुरित होती है। साथ ही साथ उनका प्रेम कभी विश्व–प्रेम और कभी आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होता है। प्रणय–भावना, विश्व–प्रेम और आध्यात्मिकता इन तीनो बिन्दुओ पर प्रसाद द्विवेदी युग की छाया से मुक्त हो रहे होते है। कवि कहता है–

प्रेम पवित्र पदार्थ न इसमे कही कपट की छाया हो।

इसका परिमित रूप नही जो व्यक्ति मात्र मे बना रहे।।[2] (प्रेम–पथिक)

यहॉ कवि वैयक्तिकता से विश्व–प्रेम की ओर अग्रसर है।

'महाराणा का महत्त्व' मे प्रसाद महाराणा की उदारता का वर्णन करते है। वे शत्रु की पत्नी को बदी बनाने के बाद ससम्मान वापस भेज देते है। यहॉ ओज गुण का प्राधान्य है। प्रसाद के इस दृष्टिकोण का विकास उनके नाटको मे उत्कर्षता पर है।

'कानन–कुसुम' मे परम–तत्त्व, प्रकृति–चित्रण और ऐतिहासिक तथा पौराणिक विषयो सम्बन्धी कविताऍ है। इसमे प्रसाद के काव्य की सभी प्रवृत्तियॉ अलग–अलग दिखती है। प्रकृति सम्बन्धी कविताओ मे 'नव–बसन्त', 'रजनी–गधा' आदि उल्लेखनीय है।

'करूणालय' एक गीतिनाट्य है। यद्यपि इस समय तक हिन्दी मे इस तरह की कविताओ का प्रचार नही था। पर अन्य भाषाओ मे इस तरह की कविताऍ मिलती है।

---

[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 9 पृष्ठ 254

[2] जयशकर प्रसाद प्रसाद ग्रन्थावली, खण्ड 1 पृष्ठ 96

उदाहरणके तौर पर सस्कृत के कुलक, बगला के अमित्राक्षर और अँग्रेजी के ब्लैक वर्स को लिया जा सकता है।

'झरना' मे यौवन का स्वर है–आत्मदान एव आत्मप्रकाशन की अभिलाषा है। भाव–प्रवणता एव आर्द्रता स्पष्ट दृष्टिगोचर है। कवि नये–नये प्रयोग करता है। प्रकृति के ऐश्वर्य का उत्कृष्ट चित्रण, करूणा, प्रणयानुभूति और रहस्यवाद को चित्रित करने मे कवि सफल है। इसकी प्रथम कविता 'झरना' प्रसाद के काव्य मे परिवर्तन को परिलक्षित करती है। छन्दो मे भी विविधता है। सॉनेट, गजल और रूबाई तक को लेकर कविताऍ लिखी गईं। वस्तुत यहॉ कवि परिवर्तन के साथ–साथ प्रौढता की ओर उन्मुख होने की भी सूचना देता है।

'ऑसू' मे लाक्षणिकता, प्रतिकात्मकता और मानवीकरण की प्रवृत्ति को लक्षित किया गया। अनुभूति की उदात्तता की दृष्टि से यह कृति अप्रतिम है। विरही पूर्व सुख और वर्तमान दु ख की सघनता से ऊपर उठकर वेदना से सरोकार करता है। वेदना का सहज स्वभाविक उच्छ्वास वेदना की छाया के साथ सर्वत्र विद्यमान है। प्रसाद यहॉ सतही तौर पर लौकिक दिखने वाले प्रेम को आध्यात्मिकता की ऊँचाईयो पर ले जाने मे सफल है। आचार्य शुक्ल ने 'ऑसू' के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लिखा–

''अभिव्यजना की प्रगल्भता और विचित्रता के भीतर प्रेम वेदना की दिव्य विभूति का, विश्व मे उसके मगलमय प्रभाव का, सुख और दु ख दोनो को अपनाने की उसकी अपार शक्ति का और उसकी छाया मे सौन्दर्य और मगल के सगम का भी आभास पाया जाता है।''[1]

'लहर' अनुभूति और चितन प्रधान है। पूर्ववर्ती काव्य–कृतियों की प्रवृत्तियो के साथ–साथ कामायनी की भाव–भूमि भी इसमे तैयार होती है। 'लहर मे आनन्दवाद, अज्ञात के प्रति लगाव, ऊँची कल्पना आदि की प्रधानता मिलती है। अशोक की चिन्ता', पेशोला की प्रतिध्वनि', 'प्रलय की छाया' और 'शेर सिह का शस्त्र समर्पण मुक्त छन्द की कविताऍ है।

कामायनी एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। यह आधुनिकता के सकट से सावधान भी करती है। वही दूसरी ओर अपने प्रतीको से रहस्यमयी सत्ता की ओर सकेत भी करती है। कामायनी मे प्रसाद 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' को प्रतिष्ठित करते है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है कि, ''किसी एक विशाल भावना को रूप देने की ओर भी अत मे प्रसाद जी ने ध्यान दिया,

---

[1] सम्पादक द्वय डॉ० सत्यनारायण त्रिपाठी व डॉ० रामदेव शुक्ल छायाताप पृष्ठ 26

जिसका परिणाम है कामायनी।"[1] आलोचक डॉ० प्रेमशकर कामायनी की तुलना इलियड से करते है–

"यदि इलियड मे यूनानी सभ्यता का सम्पूर्ण चित्र मिल जाता है, तो कामायनी भी आधुनिक युग का महाकाव्य है। उसके माध्यम से युग अत्यन्त कलात्मक रूप मे अभिव्यजित हो उठा।"[2]

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि सास्कृतिक–बोध, आदर्शोन्मुख दृष्टिकोण, आत्म प्रकाशन, अनुभूति प्रवणता, लाक्षणिकता, गेयता, सगीतात्मकता, प्रेमानुभूति, सौन्दर्य चेतना का विकास, कल्पना, प्रकृति प्रियता, रहस्यवाद आदि प्रवृत्तियॉ जो छायावादी काव्य के प्राण तत्त्व है– प्रसाद के काव्य मे सन्निहित है। साथ ही साथ, पौराणिक व ऐतिहासिक विष्य–वस्तुओ के माध्यम से राष्ट्रीयता की भावना का विकास, वेदनावाद, व्यापक मानवतावाद, विश्वबन्धुत्व आदि की प्रवृत्तियॉ भी उनके सम्पूर्ण काव्य मे स्थान पाती है।

प्रसाद एक बारगी रहस्य की ओर अग्रसरित नही हुए। अपने प्रारम्भिक दौर की कविताओ मे सौन्दर्य और रहस्य को व्यक्त करते है 'कानन कुसुम' की कविता के 'सौन्दर्य' मे प्रसाद कहते है–

देख लो जी भर इसे देखा करो।

इस कलम से चित्र पर रेखा करो।

लिखते लिखते चित्र वह बन आएगा।

सत्य सुन्दर तब प्रकट हो जाएगा।[3] (कानन कुसुम)

कवि का 'सत्य सुन्दर' आगे चलकर 'सत्य शिव सुन्दरम' की अभिव्यक्ति करने लगा। प्रारम्भिक काल मे प्रसाद अभिव्यक्ति की नई दिशाये खोज रहे होते है जो द्विवेदीयुगीन छाया से ग्रसित है। प्रसाद मे सौन्दर्य के प्रति दृष्टि, 'गीताजलि' के प्रकाशन के पूर्व ही विकसित हो चली थी। यद्यपि 'गीताजलि' के प्रकाशन के पूर्व से रवीन्द्रनाथ भी सृजनरत थे। द्विवेदी युग मे 'सौदर्य–साधना' अलकार के रूप मे प्रकट हुई। पर छायावादी इसे सर्वस्व मान कर चल पडे। द्विवेदी युग मे प्रकृति अपने स्थूल रूप मे ही चित्रित है। छायावादी कवि प्रकृति

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 26
[2] डॉ० प्रमशकर प्रसाद का काव्य पृष्ठ 442
[3] जयशकर प्रसाद प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ 180

से साक्षात्कार करते चलते है–

लहरो मे यह क्रीडा चचल

सागर का उद्वेलित अचल।[1]   (लहर)

प्रकृति के माध्यम से सौन्दर्य का उद्घाटन दो स्तरो पर होता है – लौकिक एव पारलौकिक। यह प्रवृत्ति अलग–अलग और कही समन्वित रूप मे दृष्टिगोचर होती है। उनका यह सौन्दर्य–बोध अन्य धरातलो पर भी सम्पन्न होता है। कवि का मनुष्य सुन्दर से भी श्रेष्ठ सुन्दरतम है –

जिसके आगे पुलकित हो

जीवन है जिसकी भरता

हॉ, मृत्यु नृत्य करती है

मुसक्याती खडी अमरता।[2]   (ऑसू)

प्रसाद यहॉ मृत्यु पर अमरता की विजय का उद्घोष करते है। आत्म–बोध युक्त मनुष्य मृत्यु के भैरवी–नृत्य पर भी पुलकित हो मुस्कान बिखेरता है। इसके पूर्व वे मनुष्य को उसकी सौन्दर्य चेतना का बोध कराते है–

इस स्वप्नमयी ससृति के

सच्चे जीवन तुम जागो

मग्ल किरनो से रञ्जित

मेरे सुन्दरतम । जागो [3]   (ऑसू)

कवि यहॉ मनुष्य को उसकी मनुष्यता का भान कराते हुए उसे 'स्व' को पहचानने की ओर इगित कर रहा है। प्रसाद वेदना के माध्यम से रहस्य के प्रति जिज्ञासु होते है–

वेदना विकल यह चेतन,

---

[1] उपरिवत   पृष्ठ 346
[2] उपरिवत   पृष्ठ 326
[3] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ 326

जड का पीडा से नर्तन,

लय–सीमा मे यह कपन,

अभिनयमय है परिवर्तन,

चल रहा यही कब से कुढंग। [1] (लहर)

प्रसाद यहॉ जड–चेतन की वेदना के माध्यम से रहस्य को देखकर चकित होते है। प्रसाद की यह वेदना 'धनीभूत' है–

जो धनीभूत पीडा थी

मस्तक मे स्मृति–सी छायी

दुर्दिन मे ऑसू बनकर

वह आज बरसने आई। [2] (ऑसू)

प्रसाद मे वेदना एक सामान्य दूती की तरह है, जिसकी न सुख से विरक्ति है न दुख मे अनुरक्ति। एक तरह से समरस की स्थिति है। प्रसाद अज्ञात की अनतता की ओर इगित करते है–

क्यो व्यथित व्योम गङ्गा सी

छिटकाकर दोनो छोरे

चेतना तरङ्गिन मेरी

लेती है मृदुल हिलोरे? [3] (ऑसू)

आकाश गगा जो स्वर्गीय चेतना का प्रतीक है पर यह आरोपित है कि वह व्यथित है अर्थात् उसक तटो की सीमाये स्पष्ट नही है।

प्रसाद का जीवन–दर्शन, देश–काल की सीमाओ का अतिक्रमण कर शाश्वतता और सार्वभौमिकता का प्रतीक है। प्रसाद की जीवन–दृष्टि पौराणिक और मध्यकालीन मूल्यो से भिन्न अतिरेक रहित सतुलित मूल्य–दृष्टि है जो उनके काव्य मे निदर्शित होती है। वे इष्टलोक,

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 373
[2] उपरिवत् पृष्ठ 306
[3] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ 303

मानव जीवन और जगत् मे आस्थावान भी है। उनके यहॉ 'काम त्याज्य नही है। वह जीवन के उपभोग की दृष्टि भी विकसित करता है। कामायनी (काम गोत्रजा कामायनी—काम की पुत्री) उनके सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य का शीर्षक भी है। प्रसाद मूलत कश्मीरी शैव दर्शन की शाखा 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' को अपने काव्य—फलक पर चित्रित करते है। जिसके चरण—बिन्दु अभेदवाद, आभासवाद, स्वतन्त्र्यवाद, समरसतावाद और आनदवाद है।

आध्यात्मिक स्तर पर जो सघर्ष प्रकृति—पुरूष अहम—इदम्, जड—चेतन मे है। भौतिक स्तर पर वही आन्तरिक और बाह्य सघर्ष है। इन सभी विषमताओ का परिहार और अतर्लयन प्रसाद के समरसता मे हो जाता है। दूसरे शब्दो मे इस समरसता के माध्यम से प्रसाद इच्छा, ज्ञान, क्रिया या भावलोक, ज्ञानलोक, कर्मलोक मे सामजस्य स्थापित करते है। द्रष्टव है एक उदाहरण—

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है

इच्छा पूरी हो, मन की

एक दूसरे से न मिल सके

यह बिडम्बना है जीवन की।[1]

उपर्युक्त तीनो का सामजस्य होते ही विषमता नष्ट हो जाती है। तदुपरान्त, मानव अपने चरम् लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

प्रसाद एक समन्वित दर्शन प्रस्तुत करते है। अद्वैतवाद, सर्वात्मवाद आदि भारतीय दर्शनो से प्रसाद ही नही बल्कि अन्य छायावादी कवि भी रस—ग्राह्य करते है। छायावाद को 'पाश्चात्य की देन' कहना भी अनुचित है। नददुलारे बाजपेयी प्रसाद की वर्ड्सवर्थ से तुलना करते हुए कहते है—

"प्रसाद के रहस्यवाद की तुलना मे वर्ड्सवर्थ का मानवतावाद रखा जा सकता है—मनुष्य का उत्कर्ष दोनो मे है।"[2]

प्रसाद अपनी उत्कर्षता को कामायनी मे पाते है। निश्चय ही उनकी यह कृति अप्रतिम है। डॉ० प्रेमशकर का मानना है—

---

[1] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 (कामायनी,रहस्य) पृष्ठ 682
[2] नददुलारे बाजपेयी राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबध पृष्ठ 110

" 'कामायनी' का कवि जीवन के मूल और अन्तिम उद्देश्य आनद की ही प्रतिष्ठा करता है। सम्पूर्ण सघर्ष के पश्चात् मानवता का प्रतीक मनु जीवन मे समरसता स्थापित कर आनन्द प्राप्त कर लेता है। यह श्रद्वाजन्य आनन्दवाद ही प्रसाद के महाकाव्य का लक्षण है।

लक्षण ग्रन्थो का अनुसरण न करती हुई भी कामायनी अपने जीवन–दर्शन, काव्य–सौष्ठव, मानवीय–व्यापार के आधार पर महाकाव्य का पद प्राप्त करती है।"[1]

वही डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल कामायनी के निर्माण की प्रक्रिया और महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए कहते है–

" 'कामायनी के माध्यम से प्रसाद ने स्व–रूचि व युग–रूचि के अनुरूप यथावश्यक परिवर्तन–परिशोधन के साथ महाकाव्य का निर्माण किया है। भामह, दण्डी और विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत महाकाव्य के लक्षणो मे से अधिकाश की पूर्ति कामायनी मे हो जाती है।[2]

वस्तुत कामायनी मे दार्शनिक दृष्टिकोण के साथ–साथ आधुनिक सभ्यता के आसन्न सकट को भी दिखाया गया है। इस पूरे कार्य मे प्रसाद रागात्मक सवेदन और सुस्पष्ट चितन से विरत नही होते है। 'कामायनी' नवोन्मेष का अप्रतिम महाकाव्य है। यह भारतीय दर्शन, जीवन–मूल्य, अध्यात्म तथा सौन्दर्य–बोध को नये ढग से प्रस्तुत करती है।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि प्रसाद के काव्य की उत्कर्षता पर संदेह नही किया जा सकता है। छायावाद के जनक प्रसाद की जडे भारतीयता मे गहरी धॅसी है। पाश्चात्य प्रभाव न्यूनतम रूप मे विद्यमान है। पूर्व और पश्चिम के द्वन्द से वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण विकसित करते है। जहॉ तक रवीन्द्रनाथ के प्रभाव की बात है तो रवीन्द्र की कविता भी इसी माटी मे पुष्पित और सुरभित हुई। अत न्यूनाधिक साम्य रहेगा ही। अव्यक्त, अज्ञात के प्रति जिज्ञासा के कारण इनके काव्य मे रहस्य–भावना सचरित हुई। यह विकास क्रमश होता है। प्रसाद के काव्य मे आध्यात्मिकता, वेदना का रूप धर अभिव्यजना के नये उपकरणो और नई काव्य भाषा के साथ आई। सौन्दर्य माध्यम है–मिलन की राह का। यह सब अह को बाधित कर नही होता है। 'कामायनी' तक आते–आते कवि का एक मोटो बन चुका है। सत्य, शिव और सुन्दरम का उद्घोष भी इनके काव्य मे मिलता है। आध्यात्मिक स्तर पर आनदवाद की प्रतिष्ठा उनका मूल लक्ष्य है। समरसता के धरातल पर यह सब विकसित होता है। इस प्रकार एक

---

[1] डॉ० प्रेमशकर प्रसाद का काव्य पृष्ठ 442-443
[2] डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल जयशकर प्रसाद वस्तु और कला पृष्ठ 18

समन्वित दृष्टिकोण को विकसित करने मे प्रसाद सफल है।

सुमित्रानन्दन पत

पद्मविभूषण से अलकृत और ज्ञानपीठ से पुरस्कृत कविवर सुमित्रानन्दन पत का जन्म 20 मई सन् 1900 ई० को प्रकृति की गोद (कौसानी) मे हुआ। उनकी रचना–स्थली इलाहाबाद रही। प्रकृति मे कौतूहल या रहस्य उनके सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद का उपक्रम बनते है। पत स्वच्छन्दतावादी कवियो मे कीट्स के निकट जाने जाते है और उन्हे सौन्दर्य का कवि कहा जाता है। विद्वानो को पन्त के काव्य मे सौन्दर्य के चार रूप मिलते है। नैसर्गिक सौन्दर्य, सामाजिक सौन्दर्य, मानसिक सौन्दर्य और आध्यात्मिक सौन्दर्य। इसी क्रम मे प्रारम्भिक रचनाओ को नैसर्गिक, 'गुजन' के बाद की रचनाओ को सामयिक, तीसरे चरण की रचनाओ को मानसिक और अन्त की रचनाओ को आध्यात्मिक सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य मे देखा जाता है। अधिकतर आलोचक उनकी रचनाओ को प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक या दार्शनिक सौन्दर्य से विवेचित करते है। दोनो मत अपनी जगह ठीक है। पन्त के काव्य मे छायावादी और प्रगतिवादी दोनो रूप मिलता है। पत का आगाज इतना सशक्त है कि आलोचको का एक वर्ग उन्ही से छायावाद का प्रारम्भ मानता है। पत की प्रकाशित रचनाए निम्नवत है।–

(क) काव्य – 'उच्छ्वास'(1920 ई०), 'ग्रन्थि' (1920 ई०), 'वीणा' (1927ई०), 'पल्लव' (1929ई०), 'गुजन' (1932ई०), 'युगान्त'(1936ई०), 'युगवाणी'(1939ई०), 'ग्राम्या'(1940ई०), 'स्वर्ण किरन'(1947ई०), 'स्वर्णधूलि'(1947ई०), 'युगपथ'(1948ई०), 'उत्तरा'(1949ई०), 'कला और बूढा चॉद'(1959ई०), 'पौ फटने से पहले'(1967ई०), 'लोकायतन'(1969ई०), 'पतझर'(1969ई०), गीत हस'(1969ई०), 'शशि की तरी'(1971ई०), 'शख ध्वनि'(1971ई०), 'समाधिता'(1973ई०), 'आस्था(1973ई०), सत्यकाम'(1975ई०), 'गीत–अगीत'(1977ई०) और गेय–अगेय कविताओ का अन्तिम 'सग्रह सक्रान्ति की कविताए'(1977ई०)।

(ख) रूपक और नाटक – 'रजत–शिखर'(1952ई० - छ काव्य रूपको का सग्रह), 'शिल्पी'(1952ई०)] 'सौवर्ण'(1956ई०), 'युगपुरूष' (पॉच काव्य रूपक), 'छाया' (दो नाटिकाऍ), 'ज्योत्स्ना'(1934ई०) और वाणी'(1957ई०)।

(ग) उपन्यास तथा कहानी – 'हार'(1960ई०), 'पॉच कहानियॉ (1930ई०)।

(घ) विविध – समीक्षात्मक गद्य के अर्न्तगत 'गघ पथ' (1949 ई०) 'छायावाद पुर्नमूल्याकन' (1965 ई०), 'साठ वर्ष एक रेखाकन' (1969 ई०), निबध तथा अन्य छिटपुट।

(ड) काव्य सचयन –

'आधुनिक कवि'(1941ई०), 'पल्लविनी'(1939ई०), 'रश्मिबध'(1959ई०), 'चिदबरा'(1959ई०), 'अभिषेधिता'(1960ई०), 'हरी बास सुनहरी टेर'(1963ई०), मुक्तियज्ञ' 'चित्रागदा'(1969ई०), 'स्वर्णिम रथचक्र'(1968ई०), 'सयोजिता'(1969ई०), 'पुरूषोत्तम राम'(1967ई०), 'तारापथ'(1969ई०), ऋता(1971ई०), 'गधबीथी'(1973ई०), आदि और अनूदित काव्य मधुज्वाल(1947ई०)।

परिणाम की दृष्टि से उनका साहित्य अन्य समकालीन साहित्यकारो की अपेक्षा अधिक है। आमतौर पर आलोचक पत की छायावादी ओर कुछ हद तक प्रगतिवादी साहित्य पर विचार करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते है। यही कारण है कि पत के परवर्ती साहित्य (जो उनका प्रौढतम् साहित्य है) पर तर्कसगत विचार नही हुआ। पत काव्य के मूल्याकन मे अनकी आलोचनात्मक कृतियो की भी अनदेखी नही कीजा सकती। रहस्य और सौन्दर्य के अध्ययन के केन्द्र मे अनके परवर्ती काव्य पर भी सक्षिप्त विचार कर लेना उचित होगा। प्रस्तुत है उनकी काव्य – कृतियो का सक्षिप्त अवलोकन–

'वीणा' के प्रगीत भावमय है– उनमे माधुर्य, कोमलता और सहज निश्छलता के नदर्शन होते है। कवि यहॉ शिव और सुन्दर का आह्वान करता है–

आओ शिव! आओ सुन्दर!

मुझे सौपने दो तुमको

अपनी वाक्षाऍ रज कण सी,

होने दो निश्चिन्त निडर!

निज वियोग की बॉहो मे[1]

'ग्रन्थि' मे कवि वियोगात्मक प्रणय–गाथा का गान करता है

[1] पत ग्रन्थावली भाग 1 पृष्ठ 103

विजन छाया मे द्रुमो की, योग–सी

विचरती है आज मेरी वेदना।[1]

'ग्रन्थि' मे अकुरित हुई वेदना का 'पल्लव' मे बहुआयामी आयाम मिलता है। प्रकृति और मानव–हृदय के ताने–बाने को समेटे इस कृति मे विश्वव्यापी वेदनानुभूति की अनुगूँज सुनाई पडती है–

वियोगी होगा पहला कवि/आह से उपजा होगा गान,

उमडकर ऑखो से चुपचाप/बही होगी कविता अनजान।[2]

'गुजन' के काव्य को पत अपनी **'अत साधना का सयम शुभ्र काव्य'**[3] मानते है। 'गुजन' की 'चॉदनी' शीर्षक कविता मे कवि सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है –

सुन्दर से निज सुन्दरतर,

सुन्दरतर से सुन्दरतम,

सुन्दर जीवन का क्रम रे,

सुन्दर–सुन्दर जग–जीवन।

यहॉ सौदर्य का प्रतिष्ठापन भी करता है। साथ ही साथ अपने पूरे काव्य–सग्रह मे कवि 'सुन्दरतम' से 'शिवम' की ओर प्रस्थान कर व्यापक जीवन–चेतना का उल्लास राग प्रस्तुत करता है।

प्रतीकात्मक गद्य नाटक 'ज्योत्स्ना' के एक गीत मे पत सुन्दर, सुखी और प्रकाशित जीवन की कल्पना भी करते है।

सुख परिमल पुलकित भव–अचल,

निखिल प्रेम मधुमय अन्तस्तल,

मधुरस पूरित, मुखरित प्रतिपल,

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 138

[2] उपरिवत पृष्ठ 183

[3] पत ग्रन्थावली भाग 6

विशद विश्व मधुमय—गृह अविकल।[1]

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' छायावाद और प्रगतिवाद की सधिबेला की कविताएँ है। 'युगवाणी' मे कवि प्राकृतिक रचनाओ के अतिरिक्त आत्ममथन मे रत है। भूत और अध्यात्म, नव सस्कृति, रूढियो से गुजरना या टकराना तथा टकराहट से उद्भूत विचारधारा मे कोमल—भाव रखना पत की स्वभावजन्य विशेषता ही है। जिसे निन्दको ने पत का नारी – भाव कहा है, वह वस्तुत उनकी शालीनता – कोमलता— सहृदयता ही है। विचारधाराओ से गुजरने के क्रम मे पत ने 'युगवाणी' की भूमिका (दृष्टिपात) मे स्पष्ट भी किया है। युगवाणी' मे पत कहते है।—

सघर्षो मे शान्ति बनू मै।

अन्धकार मे पड जीवन के,

अन्धकार मे काति बनू मै।[2]

यहाँ सघर्ष विराम नही है, बल्कि सघर्षो के दरमियान सयम रखने की बात है। तभी तो पत अधकार मे काति बनने की बात भी करते है। वस्तुत वे 'सघर्षो मे शान्ति ' और 'अधकार मे काति' बन 'मूल मनुष्य की खोज' करते है, जैसे—

आज मनुज को खोज निकालो।

जाति वर्ण सस्कृति समाज से,

मूल व्यक्ति को फिर से चालो।[3]

कवि भौतिकता और आध्यात्मिकता को जीवन मे अजस्र प्रवाहिनी धारा के दो तट मानते हुए कहता है—

भौतिकता आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,

व्यक्ति – विश्व से, स्थूल—सूक्ष्म से परे सत्य के मूल।[4]

वस्तुत यह विचारधारा उपनिषदो के 'विद्या—अविद्या' और हीगेल तथा मार्क्स की टकराहट के बाद की स्थिति है। निश्चित तौर पर कवि अपने आध्यात्मिक मानस से अपने को

---

[1] पत ग्रन्थावली भाग 6 पृष्ठ 352

[2] पत ग्रन्थावली भाग 2 पृष्ठ 119

[3] उपरिवत पृष्ठ 119

[4] पत ग्रन्थावली भाग 2 पृष्ठ 94

असपृक्त नही कर जाता।

इसी सग्रह की 'समाजवाद–गॉधीवाद' शीर्षक कविता मे कवि समाजवाद गॉधीवाद की तुलनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करता है

साम्यवाद ने दिया विश्व को नव भौतिक दर्शन का ज्ञान

गॉधीवाद हमे जीवन पर देता अन्तर्गत विश्वास,

मानव की नि सीम शक्ति का मिलता उसे चिर आभास।[1]

अपने दूसरे चरण की 'ग्राम्या' सग्रह मे कवि सामयिक समस्याओ से जूझ था। सुख–दु ख, शोषण–उत्पीडन, अमीरी–गरीबी आदि से प्रेरित हो– कवि कविता लिख था। यह उसके मार्क्सवादी दृष्टिकोण से उत्पन्न सोच की उपज थी। 'ग्राम्या' और 'युगवाण कवि वादियो/घाटियो की दुनिया से निकलकर जमीनी सच्चाइयो से रूबरू होता है। यह सहज ही उद्वेलित करता है कि क्या पत सत्य–शिव–सुन्दरम् का पथ छोड चले थे? नही। दर्शन सिर्फ सत्य की प्रतिष्ठापना करता है। अतएव पत का यहॉ गॉधी से अलगाव हो जात क्योकि उन्हे सत्य के साथ–साथ शिव और सुन्दर की भी प्रतिष्ठा करनी है। मार्क्स को नही पचा पाते – कोमलता आडे आ जाती है।

'स्वर्ण किरण' मे कवि अरविन्द दर्शन से प्रभावित होता है। जिसका वि आगे की कृतियो मे देखा जा सकता है। पत की सोच यहॉ पूर्ण आध्यात्मिकता का चोला है। वे श्री अरविन्द को अतिमानव मानते हुए श्रद्धॉजलि अर्पित करते है –

धन्य अवनि अवतरित हुए जो तुम अतिमानव लोक विधायक,

जन मन के चिर कुरूक्षेत्र के युग सारथि क्रम मे अतिनायक।[2]

यहॉ कृष्ण के क्रम मे श्री अरविन्द को वे प्रतिस्थापित करते है। 'स्वर्ण वि

---

[1] उपरिवत् पृष्ठ 93

[2] पत ग्रन्थावली भाग 2 पृष्ठ 57

'स्वर्णधूलि' और 'युगपथ' मे कवि अन्तश्चेतना और बर्हिचेतना के गीत गाता है। 'मधुज्वाल' उमर खैय्याम की रूबाईयो का अनुवाद मात्र है जिसमे पत मासल तीव्रता और प्रेम की अनुभूतियो को अपनी कल्पना से ऊँचाईयॉ प्रदान करते है।

'उत्तरा' मे आगामी पीढी की झॉकी प्रस्तुत है। पत की सामजस्य –भावना पूर्णता की ओर है खास बात यह है कि पिछले सग्रहो की अपेक्षा कवि का विद्रोही – भाव यहॉ लुप्त है। आनन्द और समर्पण का भाव सर्वत्र विराजमान है। कवि गॉधी और मार्क्स से सार ग्रहण कर मुक्त हो चला हे। पत के आध्यात्मिक होने के समय को भारत की आजादी से जोडकर भी देखा जा सकता है। कवि निराला की अधिकतर आध्यात्मिक कविताऍ भी इसी समय लिखी गईं। इसे एक अद्‌भुत सयोग ही कहा जायेगा। आजादी के पश्चात पत समाज की जगह व्यक्ति सुधार को महत्व देते है। तदुपरान्त वह अन्तश्चेतना को जागृत कर तथा बर्हिचेतना से जोडकर सृष्टि के मूल्याकन मे व्यस्त हो जाता है। वह धरा के स्वार्गिक रूपान्तरण की बात करते है –

मानव मन को ज्योति चमत्कृत कर, जीवन का
स्वर्गिक रूपान्तर कर, स्वर्णिम ऊँचाई से।[1]

यहॉ कवि मनुष्य की अन्तश्चेतना को रूपान्तरित कर रहा है। इसे श्री अरविन्द के 'सावित्री' महाकाव्य से भी जोडकर देखा जा सकता है। अठारहवी शताब्दी के विचारक 'मर्क्विस' (Marquies De Condorect) के दर्शन मे मिलता है कि 'सभ्यता उच्चतर व्यवस्था की ओर गतिमान है और भविष्य मे मनुष्य – स्वभाव सर्वथा दोषरहित और समाज समानता पर आधारित होगा।'[2] योरोप के रोमाटिक कवियो पर रूसो, मार्क्विस, गाडगिन आदि का प्रभाव पडता है। हिन्दी के छायावादी कवि भी रोमाटिक कवियो से प्रभावित होते है। निश्चित तौर पर 'स्वर्गिक रूपान्तर' की बात करते हुए पत मार्क्विस के स्वप्नो को परिभाषित भी कर रहे है। इस प्रकार पत की यह विकास यात्रा पौर्वात्य और पाश्चात्य विचारधारा की टकराहट से उद्‌भूत लगती है।

पत का सौदर्य – बोध उन्हे काल्पनिक जगत् मे रत रखता है। वह 'जो सत्य

---

[1] पत ग्रन्थावली भाग 3 पृष्ठ 117
[2] डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्याय आधुनिक हिन्दी कविता – सिद्धान्त और समीक्षा पृष्ठ 190

है, सुन्दर है, सनातन है' से कवि विमुख नही होता। कवि कहता है–

मै सुन्दरता मे

स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण

वह बने न बन्धन।[1]

सौन्दर्य पत के लिए बधन नही बनता है। ठीक इसी प्रकार वे किसी विचारधारा से भी नही बँधते। वे अपनी सोच के अनुगामी है।

स्वच्छदतावादी कवि कीट्स से पत प्रभावित रहते है। आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी भी ऐसा मानते है।–

"कीट्स मे सौन्दर्य तत्व की प्रधानता है। वे सौन्दर्य को ही सत्य मानते है – जो सत्य है, वही सुन्दर है, जो सुन्दर है, वही सत्य है। इसी तरह की धारणा पत की भी रही है। पत जी प्रकृति के कवि रहे है। काव्य मे सौन्दर्य का तत्व तथा सृष्टि मे सौन्दर्य – भावना का दर्शन पत काव्य की मूलभूत विशेषता है। कीट्स भी इस ससार की भावनाओ से मुक्त थे, इसलिए उनकी भाषा मे सौदर्य निखर आता है।"[2]

वही शुक्ल जी भी उन्हे प्रकृति का कवि मानते है–

"छायावाद के भीतर माने जाने वाले सब कवियो मे प्रकृति के साथ सीधा प्रेम–सम्बन्ध पत जी का ही दिखाई पडता है। प्रकृति के अत्यन्त रमणीय खण्ड के बीच उनके हृदय ने रूप–रग पकडा है।"[3]

दोनो ही धारणाओ से पूर्णतया सहमत नही हुआ जा सकता। हॉ, इतना जरूर है कि प्रकृति की गोद मे और सौन्दर्य से प्रभावित होकर पत लिख रहे है। वस्तुत अपने काव्य–फलक के विभिन्न चरणो मे पत विविध प्रयोगो के आग्रही रहे है।

छठे और सातवे दशक की कृतियो मे पत नये भाव–बोध और कुछ परिवर्तनो के साथ सामने आते है। वे जो काव्य मे नही कह पाते उसे रूपको आदि के गद्य–पथ मे स्पष्ट करते चलते है। 'कला और बूढा चॉद' मे कवि प्रकृति –सौन्दर्य से जुडकर अनुभूति की

---

[1] पत ग्रन्थावली भाग 3 पृष्ठ 68

[2] आचार्य नददुलारे बाजपेयी राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबध पृष्ठ 108

[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास

जीवतता को निर्देशित करता है, जैसे–

'स्वप्न', शुभ्र प्रकाश लपटो मे,

मनोदैन्य को भस्म करो।[1]

'पौ फटने से पहले' की कविताएँ केन्द्रीय चेतना को सम्बोधित है। 'पतझर' मे सुन्दर–असुन्दर की विभाजक रेखा मिट जाती है। वे कहते है–

चिद् विराट् स्वर सगति मे बध भव–सस्कृति की,

आत्म–मुक्त विचरेगा विश्व–मिलन की भू पर।[2]

इस 'आत्म – मुक्त' की स्थिति मे वे 'गीत–हस' मे मानव की उर्ध्वगामी चेतना के स्वर को मुखरित करते है। उन्ही के शब्दो मे–

सौन्दर्य बोध बन

उदय हृदय मे होती तुम,

मै उनको नित

करता रहा अस्वीकृत।[3]

'लोकायतन' दो खण्डो मे विभक्त सप्त सर्गीय महाकाव्य है। सत्य, शिव और सुन्दर के धरातल पर कवि ने विश्व–मानव के अन्तर और बाह्य के विकास–क्रम की परिकल्पना को साकार किया है। यह किसी वाद की हूबहू नकल भी नही है। इसे पत जी ने लोकायतन की भूमिका मे स्पष्ट किया है–

'उसके दर्पण मे हमे परात्पर विश्व तथा व्यक्ति का मुख साथ ही देखने को मिलता है। वह न तो श्री अरविन्द का अतिमानस तत्व है, न डी० एच० लारेन्स की प्राणिक मुक्ति का प्रमाद। उसमे ठण्डापन नही, अन्त साधना की शीत सौम्यता है, जो गॉधी युग की सविनय अवज्ञा मे रही है।[4]

आगे वे अपने मन्तव्य को स्पष्ट करते हुए कहते है कि–

---

[1] पत ग्रन्थावली भाग 4 पृष्ठ 239
[2] उपरिवत पृष्ठ 444
[3] उपरिवत् पृष्ठ 479
[4] पत ग्रन्थावली भाग 5 पृष्ठ 8

"मै लोकायतन मे मानव के योग्य मनुष्यत्व को कहॉ तक जीवन–मूर्त्त कर सका या धरा–स्वर्ग मे जीवन – ईश्वर को प्रतिष्ठित कर सका – यही इस भावी लोक काव्य के अध्ययन का विषय एव प्रतिपाद्य है।"[1]

सक्षेप मे यदि कहा जाय तो लोकायतन के प्रथम – खण्ड मे इस जग को ईश्वर की अनुकृति मानकर, उसे अर्पित कर भोगने की बात करते है। उदाहरणार्थ –

सौन्दर्य भोग कर सके मुक्त–मन भू–जन,

हो प्रीति – अग्नि – रस पावन मानव – जीवन।

जग मे जो कुछ, सबमे व्यापक ईश्वर स्थित,

भोगो जग को, निज को कर प्रभु को अर्पित।[2]

द्वितीय खण्ड मे उस बरसते सौन्दर्य मे भू–जन को अपने मनो–मालिन्य को दूर करने की बात करते है। जैसे –

आओ भू–मन के विषाद को करे प्रेम के प्रभु को अर्पण।[3]

वस्तुत सच्चाई यह है कि आलोचको का ध्यान पत के परवर्ती काव्य (प्रगतिवाद के बाद के काव्य) पर सही ढग से नही गया है। 'लोकायतन' को पत के अध्यात्म, रहस् और सौन्दर्य का प्रौढतम रूप माना जा सकता है।

'शख ध्वनि' की कविताओ मे नव–स्वर मे नव–मनुष्य की परिकल्पना साकार होती है। 'शशि की तरी' मे अतर्मन के कोमल परतो को खुरचते चलते है – 'गहन नील उर मे रहस्य,/ शिशु उर गोपन।[4] 'समाधिता' मे युग सघर्षो की अभिव्यक्ति, 'आस्था' की अतुकात कविताओ मे सस्कृति के आन्तरिक मूल्यो के प्रति आस्था तथा 'सत्यकाम' मे वैदिक तप को वाणी मिली है। वस्तुत ये सभी रचनाये 'लोकायतन' की पूरक है।

---

[1] पत ग्रन्थावली भाग 5 पृष्ठ 8
[2] पत ग्रन्थावली भाग 5 पृष्ठ 121
[3] पत ग्रन्थावली भाग 5 पृष्ठ 452
[4] पत ग्रन्थावली भाग 7 पृष्ठ 112

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भ मे पत जहॉ प्रकृति सौन्दर्य का निरीक्षण करते है वही दूसरे दौर मे छायावादी प्रवृत्तियो के अनुरूप सामाजिक सौन्दर्य का चित्रण करते है। अन्तिम दौर मे श्री अरविन्द से प्रभावित होते हुए वे रहस्य और सौन्दर्य की गहराईयो मे गोते लगाते है। ध्यातव्य है कि उनका प्रकृति से विछोह कही नही होता। हो भी नही सकता, सरल ह्रदय पत और सरल ह्रदया प्रकृति एक दूसरे के पूरक जा है। पत सत्य का निदर्शन सौन्दर्य के माध्यम से अपनी परवर्ती कविताओ मे करते है। साथ – साथ शिव को भी प्रतिष्ठित करते है। वे दुनिया को अपनी दृष्टि से भोगने की बात करते है। अखिल ब्रह्म की अपार सौन्दर्य राशि की अनुभूति और अभिव्यक्ति वे पूरी सृष्टि मे करते है। यह काम वे 'आत्मिक पूर्णता' के बल पर प्रकृति के माध्यम से करते है। यही वह बिन्दु है जहॉ श्री अरविन्द से उनकी तुलना की जा सकती है। अपने निबध 'दार्शनिक अरविन्द की साहित्यिक देन' मे वे कहते है–

''कलात्मक पूर्णता के भीतर जो एक और समग्रपूर्णता – जिसे आत्मिक पूर्णता का ऐश्वर्य कह सकते है, जो उन्हे अपनी योग दृष्टि तथा साधना से प्राप्त हुआ – उसी को हम वास्तव मे श्री अरविन्द का काव्य–सौन्दर्य अथवा प्रकाश वैभव कह सकते है।

लेकिन पत के साहित्य मे दर्शन, धर्म या सस्कृति का आरोपण नही होता। वे एक अच्छे साहित्यकार की भॉति दर्शन, धर्म, सस्कृति आदि से उसका सत् ही ग्रहण करते है। पत के साथ एक दिक्कत यह भी है कि वे अपने को दोहराते हे जिससे उनके काव्य मे प्राय एकरूपता और एकरसता की अनुभूति होने लगती है। फिर भी पत के कहने का अपना ढग है, अपनी सोच है। पत जहॉ जिससे प्रभावित है स्पष्ट स्वीकार करते है। इसी कारण लोग इन्हे वादो की परिधि से मुक्त नही पर पाते। पत की अतिरिक्त विनम्रता उनके काव्य मे प्रकट होती है। भौतिकता और अध्यात्म को वे अलग – अलग व्याख्यायित करते है। उनका अध्यात्म भी जीवन से निसृत हो जाता है। यदि उन्मुक्त भाव से देखा जाय तो पत का जीवन – दर्शन और अध्यात्म की जीवन मे प्रतिष्ठा उच्च भाव–भूमि पर विकसित हुई है। सृष्टि और परम् चेतन के बीच अखण्ड और चिर–स्थायी सम्बन्धो के निदर्शन और अनुभूति को उनकी जीवन –दृष्टि कहा जा सकता है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' –

सरस्वती–पुत्र सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (जन्म सन् 1896 ई० – मृत्यु 15 अक्टूबर 1961ई०) ने प्रारम्भिक काल मे लेख, आलोचना, टीका–टिप्पणी और अनुवादो पर लेखनी चलाई । कालान्तर मे गद्य और पद्य दोनो विधाओ पर अधिकार प्राप्त किया। सरस्वती से लौटी उनकी अद्वितीय कविता 'जुही की कली' (1916ई०) 'आदर्श' मासिक के नवम्बर–दिसम्बर सन् 1922 ई० के अक मे छपी। इसी दौरान उन्होने 'समन्वय' 'मतवाला' तथा 'सुधा' के सम्पादन की भूमिका भी निभाई । कालान्तर मे उनके अनेक काव्य–सग्रह प्रकाशित हुए जिनमे से 'परिमल' (1929ई०), गीतिका(1936ई०), अनामिका(1937ई०), तुलसीदास(1938ई०), 'कुकुर्मुत्ता' (1942ई०), 'अणिमा'(1943ई०), 'बेला' (1943ई०), 'नये पन्ने' (1946ई०), 'अपरा' (1948ई०) 'अर्चना' (1950ई०), 'अराधना' (1950ई०) 'गीत गूॅज' (1954ई०) मुख्य है। वस्तुत निराला का सशक्त कवि रूप उनके गद्य को ढक देता है। छायावादी तथा प्रगतिवादी दोनो तरह की काव्य–प्रवृत्तियॉ निराला मे विद्यमान है। उनके काव्य मे परस्पर विरोधी–सी प्रतीत होने वाली काव्य–प्रवृत्तियो के बीच एक आन्तरिक सम्बन्ध–सा दिखाई देता है। निराला के सौन्दर्य–बोध का फलक भी विस्तृत और हृदय को स्पदित करने वाला है। कही वे प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध होते है और कही रहस्, अध्यात्म और उपेक्षित समाज के साथ खडे होकर। पर यहॉ उनकी 'तुलसीदास' के पूर्व के काव्य का विवेचन ही उचित होगा। वस्तुत निराला के काव्य मे हमे तत्कालीन प्रचलित सभी प्रवृत्तियो की अनुगूॅज तथा आगामी सभी प्रवृत्तियो की भूमिका सुनाई पडती है। जीवित ही किवदन्ती बन चुके निराला के जीवन–काल मे ही साहित्यिक सस्था 'परिमल' की स्थापना उनकी लोकप्रियता का प्रमाण है । कालातर मे 'परिमल' से प्रेरित तथा दीक्षित अनेक साहित्यिक विभूतियॉ सामने आई।

निराला रामकृष्ण परमहस, विवेकानद, दयानद आदि युगीन विभूतियो से प्रभावित है । 'जागो फिर एक बार' कविता पर अपने लेख मे डॉ० नदकिशोर नवल ने यह दिखाया है कि यह शीर्ष–पक्ति विवेकानद के 'वस मोर अवेक' से सीधे जुडी है और शक्ति, ईश्वर सबधी निराला के विचार भी उनसे प्रभवित है। [1]

---

[1] डॉ० नदकिशोर नवल वसुधा 38, जनवरी–मार्च 1997 पृष्ठ 15-16

भारत के विशाल सास्कृतिक तथा दार्शनिक पृष्ठाधार का अक्स तो हरेक छायावादी कवियो मे नूतन रूप मे दिखता है । हॉ। इतना अवश्य है कि निराला के अध्यात्म–चितन मे जहॉ व्यक्ति की भावना प्रबल रहती है, वही प्राचीन मे एक विशेष विराट–भावना निदर्शित होती है। भारतीय साहित्य मे व्यक्ति–स्वातत्र्य बीसवी शती के पूर्वार्द्ध और उन्नीसवी शती के अन्तिम दशको की ही देन है। निराला कुछ जल्दी ही, कुछ ज्यादा ही मुक्त होते है। डॉ० अवधेश प्रधान को भी निराला के काव्य मे मुक्ति के स्वर दिखते है–

"मुक्ति की गहरी आकाक्षा निराला के काव्य की मौलिक प्रेरणा है। अग्रेजी साम्राज्यवाद के विरूद्ध राष्ट्रीय मुक्ति, सामती रूढिवाद के विरूद्ध सामाजिक–सास्कृतिक मुक्ति, रीतिवाद के विरूद्ध साहित्यिक मुक्ति, मोह और अज्ञान के विरूद्ध अध्यात्मिक मुक्ति–मुक्ति के विविध स्वरो का सधान जैसा निराला ने किया वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी मुक्ति–चेतना मे स्वाधीनता सग्राम, किसान आदोलन, वामपथी उभार के अनुभवो के साथ–साथ उनके विशिष्ट सौन्दर्यानुभव और भक्ति तथा वेदात के सस्कार भी घुल–मिल गए है ।"[1]

वस्तुत अपने पूरे काव्य मे निराला व्यक्ति–स्वातत्र्य की भावना से सृजनरत है। जहॉ अपने को व्यक्त नही कर पाते वहॉ गद्य का भी सहारा लेते है। यह मुक्ति की कामना उनके भाव–बोध, शैली और जीवन के साथ–साथ चितन–मनन मे भी परिलक्षित होती ह । डॉ० रामविलास शर्मा उन्हे दार्शनिक परम्परा से जोडते है –

"भारतीय सास्कृतिक परम्परा मे कालिदास से महाकवि हुए है, पर भारतीय दार्शनिक परपरा मे ऐसा सौन्दर्य–मण्डित, ज्योति–सवृत हिन्दी कवि एक मात्र निराला ही मिले है" – यह उनके कृतित्व की पर्याप्त विजय है।'[2]

'परिमल' निराला की सन् 1929 ई० तक की कविताओ का सग्रह है । इसमे 'अनामिका' की भी कुछ कविताऍ सग्रहीत है। परिमल की भूमिका तत्कालीन आलोचना को एक नया आधार देती है। छन्द की मुक्ति के प्रसग मे निराला कहते है –

"मनुष्य की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दो के बन्धनो से अलग हो जाना है।"[3]

---

[1] डॉ० राजेन्द्र कुमार(स०) स्वाधीनता' की अवधरणा और निराला पृष्ठ 80
[2] डॉ० रामविलास शर्मा निराला की साहित्य साधना पृष्ठ 577
[3] निराला रचनावली खण्ड 1 पृष्ठ 406

निराला मुक्त छन्द की विशद विवेचना के क्रम मे स्वय मुक्त छन्द का प्रवर्तक भी मानते है। 'परिमल' की भूमिका मे कवि अपने ऊपर अनुकरण के आरोप को खारिज करते हुए, भाव –मुक्त होने की भी बात करता है–

"मेरी तमाम रचनाओ मे दो –चार जगह दूसरो के भाव, मुमकिन है, आ गये हो, पर अधिकाश कल्पना–95 फीसदी–मेरी अपनी है।"[1]

'परिमल' सग्रह की 'जुही की कली', 'सन्ध्या सुन्दरी', 'बादल राग', 'तुम और मै' और 'पचवटी प्रसग' जैसी कविताओ मे उनके सौन्दर्य, दर्शन ओर अध्यात्म सम्बधी दृष्टिकोण के प्रारम्भिक स्वरूप पर प्रकाश पडता है। 'जुही की कली' मे कवि कहता है–

विजन–वन वल्लरी पर

सोती थी सुहाग–भरी–स्नेह–स्वप्न–मग्न

अमल–कोमल–तनु–तरणी–जुही की कली,

दृग बद किये, शिथिल, पत्राक मे,[2]

यहॉ प्रकृति सौन्दर्य के माध्यम से नायिका की रति क्रीडा का एक काल्पनिक चित्र उभरता है।

'तुम और मै' शीर्षक कविता मे निराला कहते है –

तुम वर्षो के बीते वियोग,

मै हूॅ पिछली पहचान।[3]

ये पक्तियॉ आध्यात्मिक चितन के क्रम मे है । यहॉ तुम ब्रह्म का प्रतीक है।

'परिमल' के साथ–साथ 'गीतिका की कविताऍ और भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। छायावादी कविता को प्रतिष्ठित करने के क्रम मे भूमिकाये महत्त्वपूर्ण सिद्व होती है । गेयता की दृष्टि से चमत्कृत–शब्द–चित्रो का निदर्शन 'गीतिका' मे मिलता है । प्रेम, प्रकृति श्रृंगार, भक्ति, अध्यात्म, रहस्य, राष्ट्रीयता, मानवता आदि विविध प्रकार की उत्कृष्टतम कविताऍ 'गीतिका' मे दृष्टिगोचर होती है। 'सखि बसन्त आया' शीर्षक कविता मे कवि कहता है –

---

[1] निराला रचनावली खण्ड 1 पृष्ठ 406
[2] उपरिवत् पृष्ठ 31
[3] उपरिवत पृष्ठ 38

आवृत सरसी–उर–सरसिज उठे

केशर के केश कली के छुटे,

स्वर्ण–शस्य–अँचल

पृथ्वी का लहराया।[1]

यहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य चरमोत्कर्ष पर है। अनामिका मे इनकी कालजयी रचनाएँ सकलित है। 'राम की शक्तिपूजा' और 'सरोज स्मृति' इस सकलन की महत्त्वपूर्ण कविताएँ है। 'सरोज स्मृति' जैसा शोक गीत हिन्दी ही क्या योरोप के साहित्य मे भी नही मिलता। शेक्सपियर के नाटक का एक पात्र किगलियर अपनी मृत कन्या कार्डिलिया के शव पर अवश्य विलाप करता है। निराला के विक्षुब्ध स्वर की लियर के करुण– व्याकुल पुकार से तुलना की जा सकती है –

दु ख ही जीवन की कथा रही

क्या कहूँ आज, जो नही कही ।[2]

कवि पुत्री विछोह से दग्ध हो जीवन की दुख गाथा को व्यापक भाव भूमि पर प्रतिष्ठित करते हुए –कन्या को अपने कर्मो का अर्पण करता है। उदाहरणार्थ –

कन्ये गत कर्मो का अर्पण

कर करता मै तेरा तर्पण।[3]

इस सग्रह की एक और सशक्त कविता 'राम की शक्तिपूजा' मे इनके काव्य को शक्ति काव्य के रूप मे प्रतिष्ठा मिली । डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते है –

" 'शक्तिपूजा' मे शक्ति–सधान की रचनात्मक व्याख्या है और इसका मूल सूत्र उस परामर्श मे है, जो जाम्बवान पराजय की मन स्थिति मे डूबे राम को देते है – 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना'। अर्थात् शक्ति का सधान मौलिक रूप मे ही सम्भव है।"[4]

'राम की शक्तिपूजा' को राष्ट्रीय घटनाओ के साथ–साथ नवीन दार्शनिक अनुबन्ध के रूप मे भी देखा जा सकता है । एक सुस्पष्ट दार्शनिक चितन यहाँ दृष्टिगोचर होता है।

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 239

[2] निराला रचनावली खण्ड 1 पृष्ठ 305

[3] उपरिवत पृष्ठ 305

[4] डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रसाद–निराला–अज्ञय पृष्ठ 71

महानायक राम का भी सफलता हेतु उद्योग करना 'कर्म की महत्ता सिद्ध करता है। इसे तुलसीदास की प्रसिद्ध पक्तियॉ 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा' से भी जोडकर देखा जा सकता है। पर निराला तुलसी की तरह समर्पित नही है। वस्तुत सरोज स्मृति की करुणा विश्व वेदना मे परिवर्तित होती है । 'राम की शक्तिपूजा' मे एक तृप्ति का अनुभव होता है ।

'तुलसीदास' मे भारतीय सस्कृति के उद्धारक की भूमिका मे कवि तुलसी का प्रस्तुतीकरण होता है । कवि आनद से साक्षात्कार भी करता है—

'आनद रहा, मिट गये द्वद्व, बधन सब।'[1]

'तुलसीदास' के बाद से निराला प्रगतिवाद के ध्वजवाहक हो गये। पर दर्शन और शैली के धरातल पर छायावाद से उनका सम्पर्क बना रहा। एक श्रेष्ठ कवि की भॅाति उनकी कविताओ के कई अर्थ भी निकलते है। 'जुही की कली' को लोकिक और आध्यात्मिक दृष्टि से व्याख्यायित किया जा सकता है।

निराला की प्रमुख छायावादी कृतियो के सक्षिप्त विवेचन के पश्चात् उनके रहस्, सौन्दर्य—बोध, दर्शन आदि का सक्षिप्त अवलोकन उचित होगा। निराला को दार्शनिक परम्परा का कवि माना जाता है। दार्शनिक स्तरो पर निराला भारतीय दर्शनो के साथ—साथ मार्क्स और लेनिन से भी प्रभावित है। जिसके चलते वे प्रगतिवादी स्वर को भी मुखरित करते है। उनके छायावादी तथा प्रगतिवादी स्वर मे सामान्य—सा अतर है। प्रगतिवादी स्वर मे वे करुणा से द्रवित हो आम—आदमी से जुडते है। दार्शनिक अनुबन्ध वहॉ भी है जो अपरोक्ष सत्ता पर विश्वास रखने वाले दर्शनो से भिन्न है। पर वे चार्वाक दर्शन से प्रभावित नही है। निराला अपने सौन्दर्य—बोध को प्रकृति, कर्म, भाव, आध्यात्मिक सभी प्रकार से सम्पन्न करते है। आचार्य नददुलारे बाजपेयी का मानना है —

"निराला मे पूर्ण मानवोचित सहृदयता और तन्मयता के साथ उच्च्व कोटि का दार्शनिक अनुबन्ध है। कुछ कवियो ने तो रहस्यपूर्ण कल्पनाऐ ही की है, किन्तु निराला जी के काव्य का मेरुदण्ड ही रहस्यवाद है। उनके अधिकाश पदो मे मानवीय जीवन के ही चित्र है सही, किन्तु वे सब के सब रहस्यानुभूति से अनुरञ्जित है।'[2]

'गीतिका' के समीक्षा के कम मे ही वे काव्य—कला के उद्देश्य की चर्चा करते है —

---

[1] निराला रचनावली खण्ड 1 पृष्ठ 287

[2] आर्चाय नन्ददुलारे बाजपयी गीतिका (समीक्षा) तृतीय सस्करण पृष्ठ 19

"सौदर्य ही चेतना है, चेतना ही जीवन है, अतएव काव्य–कला का उद्देश्य सौन्दर्य का ही उन्मेष करना है।"[1]

इसी क्रम मे वे निराला को सौन्दर्य–बोध से अनुप्रेरित भी मानते है । इस सौन्पदर्य–बोध को निराला विभिन्न फलको पर अनुभव करते है । 'समन्वय' मे निराला कहते है–

सृष्टि के अन्त करण मे तू बसी /है किसी के भोग भ्रम की साधना

या कि लेकर सिद्धि तू आगे खडी / त्यागियो के त्याग की आराधना।[2]

–समन्वय(दिसम्बर 1922–जनवरी 1923)

'परिमल' मे सकलित इस कविता मे कवि सृष्टि की अपरोक्ष सत्ता को मानता और पहचानता है । साक्षात्कार को परम लक्ष्य निर्धारित तथा शेष को माया–भ्रम के क्रम मे देखता है। वही पचवटी प्रसग–4 मे निराला ब्रह्म के स्वरूप को पहचान लेते है –

व्यष्टि औ' समष्टि मे समाया वही एक रूप

चिद्घन आनन्द–कन्द ।[3]

यहॉ द्वैत मिटाकर और साक्षात्कार करके निराला आनद–बोध करते है।

इस समग्र विवेचन के अत मे यह कहा जा सकता है कि निराला विविधता के कवि है। उनके व्यापक दार्शनिक पृष्ठाधार की जडे पूर्ववर्ती और समवर्ती दर्शनो मे खोजी जा सकती है। निराला सास्कृतिक और दार्शनिक धरातलो से लगातार जुडे रहते है । उनका व्यापक मानवीय दृष्टिकोण उनके सौन्दर्य–बोध को प्रभावित करता है। वे महापुरूषो से भी आकर्षित होते है। बुद्ध, प्रसाद, रामकृष्ण परमहस, रैदास आदि को वे शिद्दत से स्मरित करते है। मानो उनके व्यक्तित्व से उर्जस्वित हो रहे हो। निराला को उनकी रहस्यवादी कविताओ के लिए भी जाना सकता है। उनका रहस्यवाद मुक्ति का अनुगामी है। वे अद्वैतवाद से प्रभावित होते हुए भी अपनी सत्ता नही मिटाते। निराला कर्मयोगी भी है। परवर्ती काव्य मे श्रम–सौन्दर्य को भी प्रमुखता देते है । वस्तुत निराला की लौकिक तथा पारलौकिक अवधारणाऍ जीवन से जोडती ही हैं। समस्त छायावादी तथा प्रगतिवादी प्रवृत्तियो का समागम उनके काव्य मे हो जाता है। निराला के काव्य

---

[1] उपरिवत् पृष्ठ 17

[2] निराला रचनावली खण्ड 1 पृष्ठ 233

[3] निराला रचनावली खण्ड 1 पृष्ठ 46

को 'मुक्ति का काव्य' कहना उचित होगा। मुक्ति मे ही शक्ति निहित है। उनकी यह मुक्ति उच्छृखलता के क्रम मे नही देखी जा सकत । यह मुक्ति भी विवेक से आबद्ध है –

चाल ऐसी मत चलो

सृष्टि से ही गिर रहा जो

दृष्टि से फिर मत छलो ।[1]

अस्तु, निराला विविध–वादो और प्रवृत्तियो के सशक्त कवि सिद्ध होते है।

महादेवी वर्मा

24 मार्च सन् 1907 ई० को फर्रूखाबाद मे जन्मी महादेवी वर्मा, श्री गोविन्द्र प्रसाद और श्रीमती हेमरानी की प्रथम सतान थी। उनकी प्रथम शिशुवत रचना 1914 ई० के आस–पास आई। प्रारम्भ मे वे ब्रज–भाषा के पदो की समस्या पूर्ति करती थी। खडी की बोली की पूर्ण रचना 'दिया' (1918ई०) से वे चर्चित हुईं। उनकी कुछ रचनाएॅ 'आर्य महिला' और 'महिला जगत' मे भी प्रकाशित हुई। 'चॉद' के प्रथम अक (सन् 1922ई०) मे उनकी एक प्रौढ रचना प्रकाशित हुई। प्रारम्भ मे उनकी प्रतिभा अध्ययनरत और अभ्यासरत दिखती है। 'नीहार' (1930ई०) के प्रकाशन से वे साहित्य जगत मे छा जाती है। छायावाद की अतिम अराधिका महादेवी सितम्बर 1987 ई० मे अनश्वर मे लय हो गई। काल–क्रमानुसार इनकी रचनाएॅ निम्नवत् है–

काव्य – 'नीहार'(1930ई०), 'रश्मि'(1932ई०), 'नीरजा'(1935ई०), 'सान्ध्यगीत' (1936ई०), 'दीपशिखा' (1942ई०) और 'अग्निरेखा'(1990ई०)।

'अग्निरेखा' मे कुछ नये और कुछ पूर्व के गीत सकलित है। 'सन्धिनी'(1965ई०) मे विविध गीतो का सग्रह और 'सप्तपर्णा'(1960ई०) काव्यानुवाद है। 'यामा' मे 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत' सकलित है। 'बग–दर्शन'(1944ई०) तथा 'हिमालय'(1963ई०) महादेवी द्वारा सपादित है जिसमे उनके भी कुछ गीत सकलित है। प्रथम आयाम' मे उनकी प्रारम्भिक

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 25।

कविताएँ है। 'आधुनिक कवि', 'गीत पर्व','परिक्रमा', मेरी प्रिय कविताए, 'आत्मिका', 'नीलाम्बरा', 'दीपगीत' आदि मे उनके चयनित गीत ही है।

गद्य – 'अतीत के चल चित्र (1941ई०), 'स्मृति की रेखाएँ'(1943ई०), पथ के साथी'(1956ई०) तथा 'मेरा परिवार', सस्मरण तथा रेखाचित्र के अर्न्तगत है।

'श्रृखला की कडियॉ' (1937ई०), विवेचनात्मक गद्य' (1944ई०), 'क्षणदा'(1956ई०), 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध (1962ई०) और 'सकल्पिता'(1968ई०) मे इनकी निबध तथा आलोचना मिलती है।

इस प्रकार 'प्रसाद', 'पत' और 'निराला' की अपेक्षा इनका साहित्य परिणाम की दृष्टि से कम ही है। डॉ० विश्वनाथ तिवारी उनके काव्य और गद्य पर टिप्पणी करते हुए कहते है–

''महादेवी की कविता मे उनके निजी जीवन की व्यथा है तो उनके गद्य मे सामाजिक जीवन की। निजी जीवन की व्यथा का आधार भी सामाजिक ही होता है। अत महादेवी को 'पलायनवादी' कहना आलोचना कर्म से पलायन है। महादेवी के गद्य मे अपने समय के समाज की खासतौर से उपेक्षित–शोषित–पीडित समाज की जैसी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है वैसे विरले लेखको मे ही मिलेगी।''[1]

वस्तुत उनकी वेदना निजी न होकर विश्व–वेदना ही है। रहस्य के प्रति आग्रह छायावादियो मे पाया जाता है। महादेवी की मूल सवेदना रहस्य के प्रति आग्रह ही है। वे अपनी कविता मे इन्द्रियगोचर अनुभूतियो से प्रेरित है। यद्यपि साधना की न्यूनता के चलते यह बौद्धिक ही अधिक लगता है। गद्य मे उनकी सामाजिक चेतना अवश्य मुखरित होती है। छायावाद पर स्वच्छदतावाद का भी प्रभाव है। महादेवी के काव्य मे छायावाद की समस्त प्रवृत्तियॉ नयूनाधिक मात्रा मे विद्यमान है। करूणा, वेदना और रहस्य के प्रति आग्रह उनके काव्य के मूल विषय है। अपनी रहस्य विषयक कविताओ मे भी वे अपनी निजी सत्ता नही मिटाती। वे मुक्ति की अनुगामी है। वे कहती है–

---

[1] डॉ० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी गद्य क प्रतिमान पृष्ठ 73-74

" 'सा विद्या या विमुक्तये'– वह विद्या है, जो मुक्ति के लिए है और मुक्ति किसी व्यक्ति की नही है। यह मुक्ति बुद्धि की मुक्ति है, हृदय की मुक्ति है, विचारो की मुक्ति है। यह मुक्ति उच्छृखलता नही है। निर्माण के लिए जो मुक्ति चाहिए, वह है यह मुक्ति।"[1]

इस मुक्ति को पुनर्जागरण के प्रभाव स्वरूप रूढियो से मुक्ति के क्रम मे भी देखा जा सकता है। यह उस निर्दोष हृदय की मुक्ति है जो विवेक से सचालित और करूणा से सिचित है। उनकी करूणा जहॉ भवभूति के 'एको रस करूण' से प्रेरित हे वही उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण आधुनिकता का अन्ध अनुगामी नही है। सस्कृति के प्रति गहरी आस्था का आग्रह उनमे विद्यमान है। वे बौद्धिकता को रागात्माकता से जोडकर देखती है। सत्य उनका साध्य और सौन्दर्य साधन है। उनका 'सुन्दर भी सत्य के समान परिभाषित है।'[2] महादेवी के अनुसार "सत्य और यर्थाथ सर्वथा भिन्न तत्व है। यथार्थ इन्द्रियो से जाना जा सकता है किन्तु सत्य इन्द्रियातीत है और मनुष्य की पराचेतना या प्रतिभान से ही उस तक पहुँचा जा सकता है।'"[3] उनका "शिव उस आचार धर्म से सम्बन्ध रखता है जो व्यष्टि से समष्टि तक सबके मगल या शुभ का पर्याय है। यह मगल भी परिस्थिति सापेक्ष रहता है।"[4] सहज ही बोधगम्य है कि उनकी काव्य–दृष्टि की भाव भूमि आध्यात्मिक है। उनका कम उम्र मे बौद्ध धर्म की ओर उन्मुख होना इस बात का द्योतक है कि उनकी सोच आम व्यक्ति की सोच से हटकर है। यह गभीरता, सादगी और करूणा उनमे अत तक बनी रही। उनके यहॉ दर्शन और सस्कृति निरतर विकास के क्रम मे दृष्टिगोचर होती है। उनकी कविताओ के निहितार्थ को समझने के लिए एक विशेष वृत्ति की आवश्यकता पडती है–जिसकी भाव भूमि सास्कृतिक और आध्यात्मिक ही है। भारतीय सस्कृति और दर्शन का नितान्त परिष्कृत रूप उनकी कविताओ में मिलता है।

अज्ञात के प्रति प्रणय–निवेदन उनकी कविताओं मे दृष्टिगोचर होता है। वे वेदना–प्रधान कवयित्री है और उनकी यह वेदना आध्यात्मिक ही है। उनका प्रणय–निवेदन आत्मा की परमात्मा के प्रति आकुलता है। उनकी दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व की शोभा–सुषमा एक अनन्त अलौकिक चिरसुन्दर की छायामात्र है। वे उस परम पुरुष की अराधना निगुर्ण रूप मे करती है। उसी का चिन्तन, मनन एव मिलन की उत्कँठा, महादेवी की कविताओ के उपादान है। 'नीहार' मे

---

[1] महादेवी वर्मा मेरे प्रिय सभाषण पृष्ठ 9
[2] उपरिवत परिक्रमा (भूमिका) पृष्ठ 7
[3] उपरिवत् पृष्ठ 7
[4] उपरिवत् पृष्ठ 8

उस भाव का परिचय मिलता है। 'रश्मि' मे उनके उपास्य का दार्शनिक 'दर्शन' भी मिलता है। वे कहती है–

सजनि कौन तम मे परिचित से, सुधि सा, छाया सा, आता?

सूने मे सस्मित चितवन से जीवन–दीप जला जाता ।[1]

'रश्मि' की इस 'मिलन शीर्षक कविता मे उस एक के मिलन से प्रसन्न होती है। यामा की 'अन्त' शीर्षक कविता मे वे कहती है –

इस अनन्तपथ मे ससृति की सॉसे करती लास,

जाती है असीम होने मिट कर असीम के पास,

कौन हमे पहुॅचाता तुझ बिन

अन्तहीन के पार?

उपरोक्त कविता के पूर्व एक चित्र बना है जिसका शीर्षक है–'यात्रा का अन्त'। इस चित्र से कविता के मन्तव्य को समझने मे आसानी होती है। बिना उस एक के अनन्त के पार कोई नही पहुॅचा सकता। यहॉ इनका दर्शन प्रस्फुटित होता है।

आगे की कृतियो मे उनके भाव सुस्पष्टता और तन्मयता से जाग्रत हो उठे है। 'नीरजा' मे महादेवी कहती है –

मदिर मदिर मेरे दीपक जल!

प्रियतम का पथ आलोकित कर![2]

उनके हृदय की प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती है। आगे वे आत्मा के युगो–युगो की छटपटाहट को व्यक्त करती है –

तुम सो जाओ मै गाऊॅ!

मुझको सोते युग बीते,

तुमको यो लोरी गाते,

---

[1] महादेवी वर्मा यामा (द्वितीय याम) पृष्ठ 100

[2] उपरिवत नीरजा पृष्ठ 36

अब आओ मै पलको मे

स्वप्नो से सेज बिछाऊँ।[1]

महादेवी आत्मा के युगो–युगो से माया के भ्रम मे पडे रहने की बात करती है। अब आत्मा के जागरण की अवस्था मे प्रिय को पलको मे बिठाने और लोरी सुनाने की बात करती है।

महादेवी का असीम अधिकतर प्रियतम के रूप मे आता है। उसके प्रति उनका आर्कषण बरकरार रहता है और उससे मिटाने की चेष्टा बार–बार करती है। वे मिलन की स्थिति मे अपनी सत्ता नही मिटाती। उनकी दार्शनिक मान्यताएँ – विशेषत जीव, ब्रह्म, माया, सृष्टि आदि से सम्बन्धित मान्यताएँ – बहुत कुछ वेदांत एव औपनिषदिक दर्शन पर आधारित है। पर वे परपरागत दार्शनिक शब्दावली के स्थान पर सामान्य शब्दावली का प्रयोग करते हुए पुरातनता एव साम्प्रदायिकता से बचने का प्रयास करती है। अस्तु, यहॉ भी उनका रहस्यवाद, प्राचीन रहस्यवाद से भिन्न हो जाता है। छायावाद की सभी विशेषताये उनकी रहस्यानुभूति के साधन बनकर आये है।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि महादेवी की कविताओ की मूल–भावना रहस्यवाद का प्रतिपादन ही है। रहस्यवाद छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। प्रसाद, पत और निराला मे जहॉ छायावाद की समस्त प्रवृत्तियॉ समान रूप से विद्यमान है वही महादेवी मे रहस्यवाद मुख्यधारा बनकर उपस्थित हुआ है। अग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियो, नवजागरण की चेतना, आदि से वे प्रभावित अवश्य है, किंतु अनुकरण नही करती। पौर्वात्य और पाश्चात्य की विचारधारा से समकालीन कवियो की भॉति प्रेरित होती है। उनकी जडे भारतीय सस्कृति और दर्शन मे गहराई तक धॅसी है। सत्य, शिव और सुन्दरम का सहज समन्वय उनके समूचे काव्य मे निदर्शित होता है। उनके चित्रो, काव्य–सग्रहो की भूमिकाओ और काव्य विषयक निबधो से उनके मन्तव्यो को समझने मे आसानी होती है। महादेवी अपने गद्य साहित्य मे समाजोन्मुख ही अधिक है। जीवन के प्रति रागात्मक दृष्टिकोण उनके लेखन को विशिष्ट बना देता है। अस्तु, उनके काव्य मे व्यष्टि और समष्टि का सहज ही समायोजन हो जाता है।

---

[1] महादवी वर्मा नीरजा पृष्ठ 109

निष्कर्ष

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि छायावादी कविता शिल्प और भाव के विविध धरातलो पर अपनी पूर्ववर्ती काव्य धाराओसे भिन्न सिद्ध होती है। भारतेन्दु युग से पूर्व साहित्यिक भाषा ब्रज थी। भारतेन्दु युग मे खडी बोली का प्रारम्भिक एव विकसित रूप सामने आने लगा। द्विवेदी युग मे भाषा का एक मानक स्तर निर्धारित हो चुका था। यद्यपि दोनो युगो की कुछ रचनाऍ ब्रज मे उपलब्ध है, परन्तु खडी बोली ही सर्वमान्य साहित्यिक भाषा के रूप मे उभरती है। प्रसाद की कुछ प्रारम्भिक कविताऍ भी पहले ब्रज मे फिर खडी बोली मे लिखी गई। छायावादी कविता का विषय–वैविध्य तथा उसका विस्तार चकित करता है। जहॉ तक छायावाद की परिधि का प्रश्न है उसमे जयशकर प्रसाद, सुमित्रानदन पत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला और महादेवी वर्मा का स्थान विशिष्ट है। छायावाद के कुछ बीज–तत्व मुकुटधर पाण्डेय, मैथलीशरण गुप्त आदि की कविता मे निदर्शित होते है। पर ये कवि कालातर मे छायावादी काव्य मे स्वीकृत नही होते। प्रसाद छायावाद के पूर्व से लिख रहे थे, अत उनको छायावाद का प्रवर्त्तक मानने मे आपत्ति नही होनी चाहिए। प्रसाद अपनी कृति झरना (सन् 1918 ई) मे सम्पूर्णता के साथ उभरते है। अत छायावाद की समय सीमा का प्रारम्भ सन् 1918 ई० से मानने मे कोई आपत्ति नही होनी चाहिए। इसी प्रकार प्रसाद की मृत्यु के पश्चात् और प्रगतिवाद के आगमन के साथ पत और निराला अपना छायावादी चोला उतार फेकते है। पर महादेवी की सशक्त कृति 'दीपशिखा' का प्रकाशन सन् 1942 ई० मे होता है, अत इस विवेचन के क्रम मे छायावाद की समय सीमा का अन्तिम बिन्दु 'दीपशिखा' का प्रकाशन वर्ष सिद्ध होता है। जहॉ तक छायावाद के नामकरण का प्रश्न है, मुकुटधर पाण्डेय और सुशील कुमार के प्रकाशित लेखो (1920-21 ई०) के साथ ही यह नाम चल पडा, वही अपनी उत्कृष्टता और स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह आदि के चलते छायावादी कविता अपनी समकालीन काव्य–धारा से श्रेष्ठ सिद्ध होती है।

युग प्रवाह की धारा से भी छायावाद अछूता नही है। छायावाद पर राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावो के लक्षण भी निदर्शित होते है। यह प्रभाव आन्तरिक, सास्कृतिक, राजनैतिक, भौतिक आदि धरातलो पर सम्पन्न होते है। इस दृष्टि से पुनर्जागरण या नवजागरण, स्वच्छदतावाद और रवीन्द्र काव्य का प्रभाव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पुनर्जागरण के आगमन को भारत के प्रथम आदोलन से जोडकर देखा जा सकता है। दो सस्कृतियो की टकराहट से उद्भूत इस युग दृष्टि, युग मूल्य के निर्माण मे तत्कालीन वैचारिक आन्दोलनो एव मनीषियो का बहुत बडा हाथ रहा है।

इन सब कारको का मिश्रित प्रभाव उस समय या बाद के हिन्दी साहित्य पर पडा। छायावदी कविता मे यह तीसरे चरण मे पहुँचा। प्रथम, भारतेन्दु युगीन नवजागरण मे धार्मिक या वैचारिक सस्थाओ का प्रभाव दिखता है। द्वितीय, द्विवेदी युगीन नवजागरण मे पूर्ववर्ती का कुछ विकसित रूप मिलता है। तीसरे चरण मे छायावादी नवजागरण को सास्कृतिक नवजागरण भी कहा जा सकता है। छायावादी काव्य पर योरोप के रोमाण्टिक कवियो का भी प्रभाव दिखता है। यह प्रभाव कुछ प्रत्यक्ष तथा कुछ रवीन्द्र काव्य के माध्यम से आता है। यद्यपि काल तथा परिवेश की दृष्टि से दोनो युग भिन्न है, परन्तु रोमाटिक कवियो की वैयक्तिक चेतना से छायवादी कवि प्रभावित है। यह प्रभाव शैली तथा भाव पक्ष–दोनो पर पडता है, पर इसे अनुकरण नही कहा जा सकता। छायावादियो की आस्था भारतीय सस्कृति, साहित्य और दर्शन के प्रति ही अधिक है। गीताजलि के प्रकाशन के बाद रवीन्द्र पुनर्जागरण के अग्रदूत बनकर उभरते है। रवीन्द्र की कविता बगाल की जातीय चेतना, भारतीय दर्शन, योरोप के प्रभाव आदि से उत्प्रेरित है। उनकी कविता सात्विकता, सादगी, रहस्य और सौन्दर्य से भी युक्त है। छायावादियो को उनका यही रूप भाता है।

जयशकर प्रसाद के काव्य मे छायावाद क्रमश विकसित होता है। वे पूर्व और पश्चिम के वे द्वन्द से वैज्ञानिक दृष्टि विकसित करते है, परन्तु भारतीय दर्शन तथा सस्कृति मे गहरी आस्था भी रखते है। उनकी अप्रतिम कृति 'कामायनी मे उनके दर्शन और सौन्दर्य की उच्चतम परिणति दिखती है। अव्यक्त और अज्ञात के प्रति जिज्ञासा के कारण इनके काव्य मे रहस्य–भावना सचरित हुई है। आध्यात्मिक स्तर पर आनदवाद की प्रतिष्ठा उनका मूल ध्येय है जो समरसता के धरातल पर विकसित होती है। सुमित्रानदन पन्त सौन्दर्य एव प्रकृति के कवि माने जाते है। नैसर्गिक, सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य मे उनके काव्य को बॉटा जाता है। पर छायावादी स्वर उनके काव्य मे अन्त तक विद्यमान है। वस्तुत वे प्राकृतिक सौन्दर्य का निरीक्षण करते है। तत्पश्चात् सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य का निदर्शन – छायावादी प्रवृत्तियो के अनुरूप करते है। इस क्रम मे उनका प्रकृति और सौन्दर्य से विद्रोह नही होता। निराला विविध स्रोतो से काव्य–वस्तु का आधार ग्रहण करते है। वस्तुत वे सम्पूर्णता, विविधता एव नूतनता के कवि है। उनकी रहस्यवादी कविताऍ भी दार्शनिक आधार लिए हुए हैं। निराला मुक्ति के आकाक्षी है जो अनियत्रित नही है। रहस्यवाद को छायावाद की सशक्त धारा के रूप मे प्रतिष्ठा महादेवी के काव्य से मिलती है। उनके काव्य मे छायावाद की सभी प्रवृत्तियॉ विद्यमान है। पर वे अपनी रहस्यवादी कविताओ के माध्यम से ही जानी जाती है। उनकी जडे

भारतीयता मे गहरी धँसी है, परन्तु रूढियो के प्रति विद्रोह का भाव उनमे विद्यमान है। महादेवी के काव्य मे व्यष्टि और समष्टि का सहज ही समन्वय निदर्शित होता है। 'सत्य–शिव–सुन्दरम' का उद्‌घोष उनके काव्य मे दृष्टिगोचर होता है। उनका काव्य उनकी राग–चेतना से सचालित है।

द्वितीय अध्याय

महादेवी का काव्य विकास

महादेवी वर्मा के सम्पूर्ण काव्य मे एक निश्चित क्रमबद्धता मिलती है। वे छायावादी काव्य की शैलीगत एव भावगत दोनो प्रभावो को पूर्णरूपेण आत्मसात् करती है। यही कारण है कि उनको छायावादी वृत्ति से अलग किसी वृत्ति को अपनाने की ज़रूरत नही पडी। महादेवी चूँकि छायावाद के उत्कर्ष मे अवतरित हुई, अत उन्हे एक बना–बनाया ढॉचा उपलब्ध हुआ और वे पूर्ण आत्मविश्वास के साथ इस पथ पर चल पडी– 'सत्य, शिव और सुन्दरम्' की आकाक्षा के साथ। महादेवी के काव्य के दो सोपान स्पष्टत परिलक्षित होते है– प्रारम्भिक काव्य और प्रौढ काव्य।

प्रारम्भिक काव्य –

महादेवी वर्मा के प्रारम्भिक काव्य मे एक प्रतिभा के प्रस्फुटन या अवतरित होने की स्थिति से परिचित हुआ जा सकता है। मॉ की धार्मिक प्रवृत्ति के चलते भक्तिमय स्वर लहरियॉ उनके यहॉ व्याप्त थी। बाबा के अरबी–फारसी ज्ञान तथा पिता के ॲग्रेजी ज्ञान के बीच प्रतिभा अकुरित हुई। ब्रज भाषा, समस्यापूर्ति और खडी बोली के आर्कषण से गुजरती हुई कवयित्री 'नीहार' के सोपान तक पहुॅची, जो उनके काव्य का प्रथम आयाम सिद्ध हुई। उनकी काव्य–यात्रा 'रश्मि' से गुजरती हुई 'नीरजा' और 'दीपशिखा मे प्रौढतम रूप मे सामने आई। 'प्रथम आयाम' शीर्षक से सकलित पचास गीतो द्वारा उनके प्रारम्भिक–काव्य पर प्रकाश पडता है। 'प्रथम आयाम' की भूमिका मे वे कहती है–

"बारह वर्ष की अवस्था तक मैने ब्रज–भाषा, छन्द–शास्त्र आदि का ज्ञान भी प्राप्त किया और समस्यापूर्ति तथा स्वतन्त्र काव्य रचना भी की। तब मेरा माधुर्य अधिक अभिव्यक्ति पाता है।"[1]

तात्पर्य यह है कि महादेवी ब्रज भाषा, छन्द, अलकार आदि से परिचित हो चली थी। पर उनकी प्राय प्रौढ काव्य रचना खडी बोली मे ही हुई। उनके आत्मकथन से पता चलता

---

[1] महादेवी प्रथम आयाम पृष्ठ 7

है कि वे राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त से प्रभावित थी। इसी क्रम मे उनकी कुछ प्रारम्भिक कविताओ को उद्धृत कर विवेचन करना उचित होगा। द्रष्टव्य है कुछ उदाहरण–

ठडे पानी मे नहलाती,

ठडा चदन हमे लगाती,

इनका भोग हमे दे जाती,

फिर भी कभी नही बोले है।

मॉ के ठाकुर जी भोले है।[1]

यह गीत 6 वर्ष की अवस्था मे लिखा गया था। अपनी इस तुकबन्दी से बालिका महादेवी ने अपनी मॉ के आराध्य को ही सदेह के घेरे मे ले लिया। आगे इसी तर्क–वितर्क की कसौटी पर उन्होने दर्शन, अध्यात्म आदि को भी साधा–

सिरमौर तुझको रचा था

विश्व के करतार ने,

आकृष्ट था सबको किया

तेरे मधुर व्यवहार ने।[2]

ग्यारह वर्ष के उम्र मे लिखी इस कविता मे महादेवी ने मनुष्य को सभी प्रणियो मे श्रेष्ठतम मानते हुए – उसके मानवोचित व्यवहार को प्राथमिकता दी। यह मानवोचित तथा मधुरतम दृष्टिकोण भी उनके आगे के काव्य मे उत्कर्षता प्राप्त करता है–

अवतरित हुए तुम धरती पर

बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।[3]

'बुद्ध के प्रति' शीर्षक कविता को बौद्ध धर्म के प्रभाव के रूप मे देखा जा सकता है। इस करुणा तथा 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना का उत्तरोत्तर विकास उनके काव्य मे परिलक्षित होता है। महादेवी कल्पना की उडान भरती है–

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 1

[2] महादेवी प्रथम आयाम पृष्ठ 11

[3] उपरिवत पृष्ठ 64

इन सपनो के पख न काटो

इन सपनो की गति मत बॉधो।[1]

उपर्युक्त पक्तियो मे स्वच्छन्दता की कामना है, जो कि छायावादी काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति स्वीकार की जाती है। इसे उनकी ऊँची कल्पना' का आधार–बिन्दु भी कहा जा सकता है।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि एक सभ्य और सुसस्कृत परिवार मे जन्मी कवयित्री को एक प्रोत्साहन पूर्ण वातावरण प्राप्त हुआ। इस उचित शिक्षा–दीक्षा और माहौल मे उनकी काव्य–प्रतिभा विकसित हुई। बचपन मे उठे भावो का पूर्ण प्रकटीकरण उनके आगे के काव्य मे निदर्शित होता है।

प्रौढ काव्य

प्रारम्भिक काव्य के माध्यम से महादेवी वर्मा के काव्य–निर्माण की प्रक्रिया को समझा जा सकता है। 'नीहार' उनका प्रथम प्रौढ काव्य–सग्रह हे। यहॉ से वे पूरी तन्मन्यता और प्रौढता के साथ हिन्दी साहित्य के फलक पर अवतरित होती है।

नीहार –

'यामा' मे 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सान्ध्यगीत' के समस्त गीतो का सकलन है। सहज ही बोधगम्य है कि 'यामा के प्रकाशन के पूर्व उपरोक्त चारो काव्य–सग्रह प्रकाशित हो चुके थे। 'नीहार' को महादेवी के काव्य का प्रथम याम कहा जा सकता है। 'नीहार' के गीतो मे कवयित्री की वेदना, रहस्य, प्रकृति, सौन्दर्य आदि उत्कृष्ट छायावादी काव्य–शैली तथा भाव भगिमा के साथ उपस्थिति हुए है। आगे की कृतियो मे इन गुणो का विकास होता जाता है। कवयित्री 'यामा' की भूमिका मे कहती है कि, ''यामा मेरे अतर्जगत के चार यामो का छायाचित्र है। ये याम दिन के है या रात के यह कहना मेरे लिए असम्भव नही तो कठिन अवश्य है ''[2] वस्तुत ये चार याम उनकी काव्य–यात्रा के चार सोपान है। इसी क्रम मे उनकी

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 108

[2] यामा (भूमिका स) पृष्ठ 5

चारो कृतियो मे रहस्यवाद का क्रमिक विकास मिलता है। इस काव्य–सग्रह मे अज्ञात सत्ता के प्रति आस्था के स्वर है। ये स्वर जिज्ञासा और वेदना से परिपूर्ण है। 'नीहार' के सम्बन्ध मे महादेवी का कथन है, ''नीहार के रचना–काल मे मेरी अनुभूतियो मे वैसी ही कौतूहल–मिश्रित वेदना उमड आती है जैसी बालक के मन मे दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है।''[1] प्रकृति मे परिव्याप्त सौन्दर्य–राशि की झलक महादेवी को मिलती है। जिसके चलते वह अज्ञात के प्रति आस्थावान होकर समर्पित होती है, यथा–

नही अब गाया जाता देव!

थकी ॲगुली, है ढीले तार,

विश्ववीणा मे अपनी आज

मिला लो यह अस्फुट झकार![2]

इस कविता मे कवयित्री अज्ञात सत्ता के प्रति मुग्ध हो और थक–हार कर अपने स्वर को विश्ववीणा के स्वर मे तिरोहित करने के लिए उत्सुक है। यहॉ विश्ववीणा का सगीत अखिल ब्रह्माण्ड का सगीत है।

'नीहार' की 'विसर्जन' शीर्षक कविता के प्रारम्भ मे 'गये तब से कितने युग बीत / हुए कितने दीपक निर्वाण,'[3] कहकर पूर्णत्व प्राप्त कर चुकी पूर्व की आत्माओ का अक्स उपस्थिति करती है। निश्चित रूप से उनका रहस्यवाद भारतीय अद्वैतवाद से प्रेरित दिखता है। अज्ञात शक्ति की झलक से प्रभावित होकर आस्था के स्वर का गायन उनकी अन्य कविताओ मे भी व्यक्त होता है, जैसे–

कैसे कहती हो सपना है

अलि! उस मूक मिलन की बात?

भरे हुए अब तक फूलो मे

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 6

[2] महादेवी नीहार पृष्ठ 2

[3] उपरिवत पृष्ठ 1

मेरे ऑसू उनके हास।[1]

यहॉ पर आस्था विश्वासपूर्वक व्यक्त की गई है।

आस्था और फिर समर्पण रहस्यवाद का प्रथम सोपान है। यह उनके प्रथम सकलन मे सर्वत्र विद्यमान है। इसी क्रम मे वे 'उस पार' कविता मे 'कौन पहुँचा देगा उस पार?' कहकर प्रश्न भी करती रहती है। वस्तुत 'नीहार' मे कवयित्री रहस्य–साधना का पथ ढूढ रही है और वेदना तथा करुणा की रेखाये भी धीरे–धीरे स्पष्ट हो रही है। प्रस्तुत है कुछ उदाहरण–

अतिथि किन्तु सुनते जाओ

टूटे तारो का करुण विहाग।[2]

* * * *

अमिट रहेगी उसके ॲचल

मे मेरी पीडा की रेखा।[3]

महादेवी की यह करुणा तथा वेदना आगे के सग्रहो मे विस्तार पाती है। कुछ कविताएँ, जैसे– 'फिर एक बार', 'परिचय', 'फूल' आदि, किशोर सुलभ भावुकता की ही अभिव्यक्ति करती है और शिथिल शब्द–विन्यास, शैली आदि के चलते उनका प्रारम्भिक काव्याभास ही प्रतीत होती है। कुछ कविताओ मे भौतिक–प्रेम एव आध्यात्मिक–प्रेम दोनो की अभिव्यक्ति मिलती है और कुछ मे भौतिक प्रेम की ही। फिर भी इस सग्रह की अधिकाश कविताएँ रहस्योन्मुखी है। रहस्योन्मुखी इस अर्थ मे कि दर्शन और अज्ञात सत्ता के प्रति आकर्षण लगातार दिखता है। यह जरूर है कि 'नीहार' मे अनुभूति का वह ताप नही है जो होना चाहिए। कही–कही कल्पना की उडान ही दिखती है। यह भी कहा जा सकता है कि अभिव्यक्ति उतनी सधी हुई नही है। ससीम को असीम मे मिलाने की आकाक्षा तो है, किन्तु अपने अस्तित्व की रक्षा का भी प्रश्न उपस्थिति हो जाता है–

क्या अमरो का लोक मिलेगा

तेरी करुणा का उपहार?

---

[1] उपरिवत् पृष्ठ 5

[2] महादेवी नीहार पृष्ठ 6

[3] उपरिवत पृष्ठ 8

रहने दो हे देव! अरे

यह मिटने का अधिकार![1]

'यह मिटने का अधिकार' वे नही खोना चाहती आगे भी यह अधिकार उन्हे अस्तित्व न मिटाने को प्रेरित करता है। कही –कही कल्पना की ऊँची उडान भी है, जो छायावादी कविता का प्राण तत्व है। परन्तु इस कल्पना मे भी उस अज्ञात सत्ता के प्रति सकेत दिखता है, जैसे–

मिल जाये उस पर क्षितिज के सीमाहीन,

गर्वीले नक्षत्र धरा पर लोटे होकर दीन,

उदधि हो नभ का शयनागार

अनोखा एक नया ससार।[2]

यहाँ पर 'उस पार क्षितिज के सीमाहीन मे अज्ञात के प्रति सकेत है, शेष पूरी कविता मे 'अनोखे ससार' की कल्पना ही है। इसे महादेवी की बाल सुलभ कल्पना ही कहा जा सकता है। यद्यपि ऐसा पूरे सकलन मे कही–कही मिलता है। परवर्ती काव्य–सग्रहो मे वे उत्तरोत्तर गभीर होती जाती है।

उनका प्रिय किसी अज्ञात लोक (उस पार) रहता है और प्रिय की झलक मिलने के पश्चात् महादेवी विरह–वेदना मे उन्मत्त हो जाती है। सूफी कवियो की भॉति उन्हे भी पीडा मधुर लगने लगती है–

व्यथा मीठी ले प्यारी प्यास

सो गया बेसुध अन्तर्नाद,[3]

वस्तुत यह झलक मिलने के पश्चात् की तडपन है। इस मीठे विरह मे बेसुध कवयित्री अपने को भूल जाती है। सूफियो की माधुर्य–भावना का प्रभाव भी उनमे परिलक्षित होता है। अन्तर सिर्फ इतना है कि वे उनकी तरह अपनी सत्ता नही मिटाती।

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 13
[2] उपरिवत पृष्ठ 19-20
[3] उपरिवत पृष्ठ 14

महादेवी 'पूछता आकर हाहाकार/ कहॉ हो। जीवन के उस पार?'[1] कहकर बार–बार उसे खोजती है, जो अपनी झलक दिखाकर चला गया है। यह हाहाकार उनके चरम् विरह को निदर्शित करता है। इसके पूर्व कवयित्री सशय की स्थिति मे भी पडती है। विरह शाप है या वरदान यह उनकी उलझन का विषय हे–

ज्योति बुझ गई रह गया दीप

रही झकार गया वह गान,

विरह है या अखड सयोग

शाप है या यह है वरदान?[2]

'उस पर' शीर्षक कविता के अत मे 'विसर्जन ही है कर्णधार, वही पहॅुचा देगा उस पार।[3] कह कर वे पूर्ण आस्था व्यक्त करती है। इसी कविता मे वे 'मनोरथ फूल'[4] अर्थात् समस्त सासारिक कामनाओ को विर्सजित करने को कहती है। यहॉ वैराग्य की प्रबल भावना भी देखी जा सकती है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'यामा' मे इस कविता के साथ एक चित्र भी है जिसमे एक व्यक्ति नौका से तूफान और लहरो को पार कर रहा है। इस अर्थवाही चित्र से भवसागर पार करने या अनत पथ पर अग्रसर जीवात्मा का बिम्ब स्पष्ट हो चला है।

महादेवी अपनी असीम वेदना की तुलना उनकी अनत करुणा से करती हुई अपने को छोटा नही समझती–

उनसे कैसे छोटा है

मेरा यह भिक्षुक जीवन

उनमे अनत करुणा है

इसमे असीम सूनापन।[5]

अपने और उसके अस्तित्व की टकराहट आगे भी चलती रहती है। महादेवी ऑखे चाहती है। जो साक्षात्कार कर सके। श्रीकृष्ण भी गीता मे अर्जुन को दर्शन से पूर्व दृष्टि

---

[1] महादेवी नीहार पृष्ठ 13
[2] उपरिवत पृष्ठ 59
[3] उपरिवत् पृष्ठ 36
[4] उपरिवत पृष्ठ 18
[5] उपरिवत पृष्ठ 32

प्रदान करते है।[1] करूणा के सागर से सर्वस्व की कीमत पर कवयित्री ऑखे मागती हुई कहती है–

आज आये हो हे करूणेश।

इन्हे जो तुम देने वरदान,

गलाकर मेरे सारे अग

करो दो ऑखो का निर्माण।[2]

ध्यातव्य है कि वे वरदान नही चाहती।

सक्षेपत महादेवी 'नीहार मे छायावादी भाव–भूमि पर रहस्यवाद को ही प्रतिष्ठित करती है। पूरे काव्य मे वे अज्ञान की खोज माधुर्य–भाव से परिचय, दर्शन, मिलन, बिछुडन आदि की अभिव्यक्ति करती है। यह क्रम कही–कही टूटता भी दिखता है– कही शिथिल शब्दावली के चलते तो कही कोरी कल्पना या भावुकता के चलते। फिर भी, कवयित्री का भाव – लोक रहस् की भूमि पर ही निर्मित है। उनकी वेदना भी अलौकिक है जिसके चलते इसकी टीस मधुर है। प्रथम याम की यह यात्रा आगे के यामो मे और स्पष्ट दिखती है। 'नीहार' मे अभिव्यक्ति और अनुभूति की सीमितता है। उनकी अभिव्यक्ति और अनुभूति आगे की काव्य–यात्रा मे विकसित हो गयी है। साथ ही साथ 'नीहार की मामिर्कता जो इसकी विशेषता है– आगे लुप्त होती चली जाती है।

रश्मि

'रश्मि' महादेवी वर्मा का दूसरा गीत– सग्रह हे और 'यामा' का द्वितीय याम भी। 'नीहार' की अपेक्षा इसमे गीत कम है, किन्तु विषय–वैविध्य की दृष्टि से 'नीहार' की अपेक्षा इसमे विस्तार मिलता है। यह 'नीहार की अपेक्षा भाव– भूमि और शिल्प–वैशिष्ट्य दोनो ही दृष्टि से उत्कृष्ट कृति है। इसमे 'नीहार' की अपेक्षा अधिक गभीरता, दार्शनिकता और प्रौढता है। 'रश्मि' की कुछ कविताओ मे अनुभूतियो की कृत्रिमता और अभिव्यक्ति का सकट तथा कुछ मे

---

[1] न तु मा शक्यसे द्रष्टुमननैव स्वचक्षुणा।
दिव्य ददामि ते चक्षु पश्य मे योगमैश्नरम।। – (श्रीमदभगदीता अध्यया 11 श्लाक 8

[2] महादवी यामा पृष्ठ 54

विचारो की अपरिपक्वता भी परिलक्षित होती है। 'अति से', 'पपीहे की प्रति' आदि कविताओ मे यह कमी खटकती है। फिर भी 'रश्मि मे काव्य कला तथा भाषा का विकास परिलक्षित होता है। इसकी भूमिका और कविताओ को देखकर यह कहा जा सकता है कि कवयित्री ने दार्शनिक और आध्यात्मिक दृष्टि विकसित कर ली है। महादेवी मनुष्य मे जड और चेतन दोनो के अस्तित्व को स्वीकार करती है–

''मनुष्य मे जड और चेतन दोनो एक प्रगाढ आलिगन मे आबद्ध रहते है। उसका बाह्याकार पार्थिव और सीमित ससार का भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव असीम का– एक उसको विश्व से बॉध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उडाता ही रहना चाहता है।''[1]

इसी क्रम मे वे जड और चेतन के पारस्परिक सम्बन्धो को और व्याख्यायित करती है। जड, चेतन और जीवन का विश्लेषण करते हुए वे कहती है–

''जड चेतन के बिना विकास शून्य है और चेतन जड के बिना आकार शून्य। इन दोनो की क्रिया और प्रतिक्रिया ही जीवन है।''[2]

निश्चित रूप से ये निष्कर्ष उपनिषदो और दार्शनिक ग्रन्थो के अध्ययन तथा मनन के पश्चात् ही निकले है। वेदना उनकी कविता का प्राण तत्व है। अपनी इस वेदना को भी वे स्पष्ट करती है। यहॉ दु ख अभाव का पर्याय नही है और न ही वेदना लौकिक है। 'रश्मि' की भूमिका मे वे कहती है–

''ससार जिसे दु ख और अभाव के नाम से जानता है वह मेरे पास नही है। जीवन मे मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा मे सब कुछ मिला है, परन्तु उस पार्थिव दु ख की छाया नही पड सकी। कदाचित उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।[3]

सहज ही बोधगम्य है कि इसे पार्थिव दु ख नही कहा जा सकता है। बौद्ध दर्शन के प्रति अनुराग के चलते वे दु खवाद को लेकर चलती है। उनका दु खवाद करूणा से नि सृत है।इसका आधार व्यक्तिगत न होकर वैश्विक है । यही उनके सर्ववाद का आधार भी बनता है। इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा भी है–

---

[1] महादेवी रश्मि (अपनी बात) पृष्ठ 1

[2] उपरिवत पृष्ठ 1

[3] उपरिवत पृष्ठ 3

"मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दु ख सबको बॉट कर विश्व–जीवनमे अपने जीवन को, विश्ववेदना मे अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिन्दु समुद्र मे मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।'[1]

वेदना के माध्यम से कवयित्री असीम चेतना के करूण राग को व्यक्त करती है।

'नीहार' मे जहॉ आस्था के स्वर है वही जिज्ञासा और वेदना भी अकुरित हो चली है। 'रश्मि' मे कवयित्री एक भावनात्मक सम्बन्ध अपने आराध्य से बना लेती है। यह सम्बन्ध प्रिय का सम्बन्ध है और स्पष्टत यह माधुर्य–भाव लिए हुए है। वेदना जहॉ कुछ अधिक मुखरित है वहॉ यह भाव कुछ दब सा जाता है। 'नीहार की झलक 'रश्मि' मे कुछ स्पष्ट हो चुकी है। जिसके कारण कवयित्री लगातार रूप चितन मे सलग्न रहती है और रूप वर्णन की अभिव्यक्ति करती है। प्रिय से अलगाव की स्थिति मे विरह वेदना का सस्वर पाठ भी होता रहता है। इस रूप चितन और वर्णन को रहस्यवाद का द्वितीय सोपान कहना उचित होगा। द्रष्टव्य है एक उदाहरण –

नीलम – मन्दिर की हीरक

प्रतिमा सी हो चपला निस्पन्द,

सजल इन्दुमणि से जुगनू

बरसाते हो छवि मकरन्द ।[2]

'जीवन' शीर्षक कविता मे कवयित्री मनुष्य को विश्व के असीम सौन्दर्य और अनत वैभव का प्राण मानती है। उनके निकास का रास्ता मृत्यु से होकर जाता है। परिवर्तन–पथ का उल्लेख वे बार–बार करती है। उनका परिवर्तन उन्हे पूर्णता की ओर ले जाता है। वे कहती है–

परिवर्तन – पथ मे दोनो

शिशु से करते थे क्रीडा,

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 4

[2] उपरिवत यामा पृष्ठ 85

मन मॉग रहा था विस्मय

जग मॉग रहा था पीडा।[1]

यह परिवर्तन – पथ पर चलने के पश्चात् की स्थिति है। कवयित्री विस्मित भी है और पीडा की आकाक्षी भी। कुछ अन्य कविताओ मे परिवर्तन – पथ को अनत–पथ भी कहा गया है।

'कौन है?' शीर्षक कविता मे कवयित्री अखिल ब्रह्माड के प्रतिपल परिवर्तित सौदर्य मे अज्ञात शक्ति का आभास प्रस्तुत करती है। 'उपालम्भ' शीर्षक कविता मे जीवन की सुकुमारता और सुषमा पर क्षण भगुरता की छायापड जाती है। वे कह उठती है–

दिया क्यो जीवन का वरदान?

इसमे है स्मृतियो की कम्पन,

सुप्त व्याथाओ का उन्मीलन,

स्वप्नलोक की परियॉ इसमे

भूल गईं मुस्कान।[2]

'जीवन क्यो दिया' का प्रश्न सासारिक क्षण भगुरता को पहचानने के पश्चात् किया जाता है। उलाहना का भाव यहॉ माधुर्य लिए हुए है।

'मै और तू' कविता मे चन्द्रमा और उसकी किरण (रश्मि) के प्रतीको के माध्यम से सीमित और असीम के सम्बन्धो की व्याख्या है, यथा –

तुम हो विधु के बिम्ब और मै

मुग्धा रश्मि अजान,

जिसे खीच लाते अस्थिर कर

कौतूहल के बाण,[1]

---

[1] महादेवी रश्मि पृष्ठ 22

[2] उपरिवत पृष्ठ 39

'मै और तू' कविता मे ही वे अपने को ब्रह्म से असम्पृक्त महसूस करती है। साथ ही साथ विभिन्न कथनो से इसकी पुष्टि भी करती है –

मै तुमसे हूँ एक, एक है

जैसे रश्मि प्रकाश,

मै तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यो

घन से तडित–विलास।[2]

भिन्नता भी उतनी जितनी 'घन से तडित–विलास' और साम्यता भी उतनी जितनी किरण और प्रकाश। निश्चय ही यह एक अटूट बधन है, सम्बन्ध है। द्वैत सिर्फ इतना ही है कि प्राचीन रहस्यवादियो की भॉति वे अपने को विलीन नही करती बल्कि अपनी निजी सत्ता बनाये रखती है। इसी कविता के अन्त मे 'कर पाओगे भिन्न कभी क्या/ज्वाला से उत्ताप?'[3] कहकर प्रिय को चुनौती भी देती है।

सक्षेप मे महादेवी 'रश्मि' मे लगातार अपने प्रिय अराध्य के रूप चितन और वर्णन मे सलग्न रहती है। जहॉ तक वेदना का प्रश्न है 'नीहार मे जहॉ दु खवाद और अध्यात्म का धुँधला कुहासा है वही 'रश्मि' मे प्रेमाकुलता है। 'रश्मि' मे वेदना कही–कही दबी हुई है और कही–कही उभरी हुई। इस प्रकार कवयित्री कुछ स्पष्ट भाव–बोध, शिल्प–बोध और सौन्दर्य–बोध के साथ इस कृति मे खुलकर सामने आती है।

नीरजा

'यामा' के तृतीय याम के अर्न्तगत सकलित 'नीरजा' महादेवी वर्मा की तृतीय महत्त्वपूर्ण कृति है। 'रश्मि' की भूमिका मे महादेवी जिस तरह के काव्य का खॉचा खीचती है उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति 'नीरजा' मे मिलती है। अगर वर्गीकरण किया जाय तो यह कहा जा सकता है कि, 'नीहार' और 'रश्मि' मे जहॉ महादेवी लय पाने की कोशिश कर रही है वही 'नीरजा' से वे लय पा लेती है। 'रश्मि' का चितन पक्ष और गहनतर होकर 'नीरजा' मे अभिव्यक्ति

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 44

[2] उपरिवत पृष्ठ 49

[3] उपरिवत पृष्ठ 49

पाता है। रहस्यवाद की दृष्टि से अगर देखा जाय तो आत्म–साक्षात्कार के पश्चात् हुए परितोष की सी स्थिति दिखाई देती है। अश्रुकणो से सिक्त वेदना आत्मानन्द के मधु मे डूबी हुई है। साधक के साक्षात्कार के पश्चात् उत्पन्न सतोष या तृप्ति की स्थिति को उनके रहस्यवाद का तृतीय सोपाल कहा जा सकता है। वेदना भी और गहन तथा उत्कृष्ट बन पडी है। इस सग्रह मे कवयित्री ने सामजस्य की स्थिति स्वीकार कर ली है। 'सान्ध्यगीत' की भूमिका मे महादेवी कहती है –

' 'नीरजा' मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेगी जिसमे अनायास ही मेरा ह्रदय सुख मे सामजस्य का अनुभव करने लगा। पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम–रोम मे ऐसा पुलक दौड जाता था मानो वह मेरे ही ह्रदय मे खिला हो, परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव मे एक अव्यक्त वेदना भी थी। फिर वह सुख–दु ख मिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगगी और अब अन्त मे ने जाने कैसे मेरे मन ने उस बाहर–भीतर मे एक सामजस्य–सा ढढ लिया है जिसने सुख–दु ख को इस प्रकार बुन दिया है कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।"[1]

निश्चित रूप से 'सामजस्य–सा' कहकर अपनी सम स्थिति की ओर इगित कर रही है। साथ ही साथ आत्मानद की स्थिति मे भी वेदना का अप्रत्यक्ष आभास भी करती है।

'नीरजा' के गीतो के शीर्षक नही है। प्रथम पक्ति को ही शीर्षक मान लिया गया है। एक खास बात यह है कि इस प्रथम पक्ति मे ही पूरी कविता का निहितार्थ भी परिलक्षित हो जाता है। 'नीरजा' मे 'नीहार' और 'रश्मि' मे व्यक्त विषयो की पुनरावृत्ति भी मिलती है। परन्तु अभिव्यजना की दृष्टि से यदि देखा जाय तो 'नीरजा' मे अधिक माधुर्य, सुकुमारता और सरसता दिखाई पडता है। प्रिय इन नयनो का अश्रु–नीर। शीर्षक कविता मे महादेवी कहती है –

सिहर सिहर उठता सरिता–उर,
खुल खुल पडते सुमन सुधा–भर,
मचल मचल आते पल फिर फिर,
सुन प्रिय की पद–चाप हो गयी

---

[1] महादवी सान्ध्यगीत (अपनी बात) पृष्ठ 3

पुलकित यह अवनी।[1]

स्पष्टत इस कविता की शुरुआत अश्रु–सिक्त से करके महादेवी अन्त तक आनद की स्थिति मे आ जाती है। यह आत्मानद से मुग्ध सुख की स्थिति मे भी दु ख या वेदना का आभास पाते रहने की स्थिति है।

'कौन तुम मेरे हृदय मे?' शीर्षक कविता मे महादेवी जहॉ पूर्ववर्त्ती कृतियो की भॉति परिचय की आकाक्षी है वही अपनी सम स्थिति का बखान भी करती है –

मूक सुख दुख कर रहे

मेरा नया श्रृगार सा क्या

झूम गर्वित स्वर्ग देता –

नत धरा को प्यार सा क्या?[2]

यहॉ सुख, दुख, श्रृगार या सौन्दर्य तथा प्रेम मे सामजस्य की स्थिति बन पडी। वही 'आज पुलकित सृष्टि'[3] कहकर वे अपने को सृष्टि के लय से लय मिलाकर चलने का सकेत भी करती है। उनकी वेदना भी विश्वव्यापी वेदना का स्वरूप ग्रहण करती है –

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।

वेदना मे जन्म करूणा मे मिला आवास,

अश्रु चुनता दिवस इसका, अश्रु चुनती रात।

जीवन विरह का जलजात।[4]

यह जीवन व्यापी विरह है, जो करूणा से प्रेरित वेदना से उपजी है। यह करूणा अश्रु से नि सृत है। इस प्रकार कवयित्री ने कम शब्दो मे अपने विरह, वेदना, करूणा और अश्रु या दु ख की चरम् स्थिति की सफल अभिव्यक्ति की है।

---

[1] महादेवी नीरजा पृष्ठ 13
[2] उपरिवत पृष्ठ 23
[3] उपरिवत पृष्ठ 23
[4] महादवी नीरजा पृष्ठ 26

'बीन हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'[1] कहकर महादेवी जहाँ अटूट सम्बन्धो को व्याख्यायित करती है वही 'मै बनी मधुमास आली।' शीर्षक कविता मे प्रकृति के माध्यम से साक्षात्कार भी। द्रष्टव्य है इस कविता का एक अश –

मेरी ऑखो मे ढलकर

छवि उसकी मोती बन आई,

उसके घन प्यालो मे है

विद्युत् सी मेरी परछाई

नभ उसके दीप, स्नेह

जलता है पर मेरा उनमे,

मेरे है यह प्राण, कहानी

पर उसकी हर कम्पन मे,[2]

ऑखो मे उतरी छबि, घन और विद्युत, दीपक और उसका तेल, प्राण और प्राणो की धडकन कहकर कवयित्री अपने गहनतर सम्बन्धो का बखान करती है। साथ ही साथ 'मै मतवाली इधर,उधर मेरा प्रिय अलबेला सा है।'[3] कहकर अपनी आत्ममुग्ध स्थिति की अभिव्यजना भी करती है।

'अलि वरदान मेरे नयन।'[4] मे वे अपनी ऑखो को वरदान मानती है। स्पष्टत यही ऑखे उन्हे साक्षात्कार जो करा रही है। 'जाग बेसुध जाग`[5] स्वर को वे भूलना नही चाहती, वही 'प्रिय सुधि भूले री मै पथ भूली।'[6] शीर्षक कविता मे पूर्णत आत्मानद की स्थिति मे लक्षित होती है। प्रस्तुत है इस कविता का एक अश –

उनकी वीणा की नव कम्पन,

डाल गयी री मुझ मे जीवन,

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 27
[2] उपरिवत पृष्ठ 54
[3] उपरिवत पृष्ठ 54
[4] उपरिवत पृष्ठ 97
[5] उपरिवत पृष्ठ 103
[6] उपरिवत पृष्ठ 102

खोज न पायी उसका पथ मै

प्रतिध्वनि सी सूने मे झूली।

प्रिय सुधि भूले री मै पथ भूली।[1]

प्रिय से साक्षात्कार की स्थिति मे नव जीवन का सचार होता है। जिस साधना पथ पर चलकर 'दर्शन' हुआ है उस पथ तथा पथ मे पडने वाले विघ्न–बाधाओ की विस्मृति आत्म–साक्षात्कार की स्थिति मे हो गयी है। यह स्थिति मधुर और सौन्दर्य से उत्पन्न है। एक अन्य कविता मे कवयित्री कहती है –

लय गीत मदिर, गति ताल अमर

अप्सरि 'तेरा नर्तन सुन्दर।[2]

इस गीत मे सृष्टि मे परिव्याप्त उस सौन्दर्य की लय, गति, गीत, ताल और नृत्य के अनुभूति की सफल अनुभूति तथा अभिव्यक्ति महादेवी करती है।

इस सग्रह की 'जागो बेसुध रात नही यह।'[3] शीर्षक कविता मे अपनी अब तक की यात्रा को वे अतिम पडाव नही मानती तथा उसे रात्रि का विश्राम ही मानती है। इस पूरी कविता मे आशावादिता का सचार है और लक्ष्य के प्रति निरतर सावधान होकर सतत् चलने की इच्छा भी। निश्चित रूप से यह विकास की प्रक्रिया है जो निरतर नवीन तथा चलती रहने वाली है।

सक्षेपत महादेवी के रहस्यवाद का तृतीय सोपान 'नीरजा' मे पूर्ण अभिव्यक्ति पाता है। 'नीहार' और 'रश्मि' के वे विषय जो पुन नीरजा मे आये है अपने नूतन भाव–बोध के साथ आये है। 'रश्मि' की भूमिका मे कवयित्री जो कुछ कहना चाहती है, उसकी सफल अभिव्यजन 'नीरजा' मे निदर्शित होती हे। महादेवी अपने प्रियतम का साक्षात्कार कर मुग्ध तो होती है, किन्तु वेदना को नही भूलती। वेदना, करुणा, सुख ओर दु ख मे एक पूर्ण सामजस्य की स्थिति 'नीरजा' मे मिलती है। सपूर्ण विश्व को उस चिर नवीन, अलौकिक, चिर सुन्दर की छाया मानते हुए–उसका आभास कराने मे महादेवी सफल है। यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य की

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 102
[2] उपरिवत पृष्ठ 104
[3] उपरिवत् पृष्ठ 111

अभिव्यक्ति मे कवयित्री पूर्णत सफल है। अपने आलोचनात्मक निबध '' 'नीरजा' एक विश्लेषण'' मे डॉ० विजयेन्द्र स्नातक कहते है कि –

''सचमुच 'नीरजा' के विरह, दु ख, वियोग और अद्वैतपरक गीतो मे एक ऐसी चमक है जो एक साथ मानस को आलोक से परिपूर्ण कर देती है। जैसे रात्रि के तमाच्छन्न आकाश मे उल्का का प्रकाश सहसा फैल कर उजियाले की दिव्य छटा दिखता है वैसे ही इन गीतो का आलोक भी, जहॉ कही गभीर चितन मे कवयित्री नही उतरी है, वहॉ काव्य के चरम् सौन्दर्य का दर्शन कराता है।' [1]

सान्ध्यगीत

यामा' का चतुर्थ याम तथा महादेवी वर्मा की चौथी कृति 'सान्ध्यगीत' मे भी कविता की प्रथम पक्ति को ही शीर्षक मान लिया गया है। समरसता की स्थिति मे साधक सुख और दु ख से परे हो जाता है। ऐसी स्थिति वैराग्य के कारण उत्पन्न होती है। एक सात्विक वैराग्य–भावना और समरसता की स्थिति से परिचय को चतुर्थ सोपान कहा जा सकता है। 'सान्ध्यगीत' के प्रथम सस्करण मे चित्र भी मिलते है। ये चित्र उनकी कविताओ को समझने मे सहायक है। गीतो का भाव बोध तथा शिल्प बोध भी 'नीरजा की तरह सशक्त है। 'नीहार के गीतो पर छाया कुहासा, 'रश्मि' के प्रकाश से छॅट जाता है। रश्मि' मे वह दार्शनिक आधार भी ग्रहण करता है। 'सान्ध्यगीत' मे अन्तश्चेतना की सजलता तथा वाह्य–चेतना की प्रॉजलता के दर्शन होते है। उनका आध्यात्मिक व्यक्तित्व और चितन अपने चरम् अभिव्यक्ति के साथ 'सान्ध्यगीत' मे सामने आता है। एक साधक की उच्च स्थिति से सरोकार भी होता है। यह अलग बात है कि महादेवी मे साधनात्मक रहस्यवाद के स्वर कम ही मिलते है। 'सान्ध्यगीत' की 'चिर् महान!' शीर्षक कविता जो बाद मे 'सन्धिनी आदि सग्रहो मे भी सग्रहीत हुई मे पूर्ण सौन्दर्य निदर्शित होता है –

हे चिर् महान्!

यह स्वर्ण रश्मि छू श्वेत–भाल,

बरसा जाती रगीन हास,

---

[1] राचीरानी गुर्टू महादवी वर्मा पृष्ठ 195

सेली बनता है इन्द्रधनुष,

परिमल मल मल जाता बतास्।[1]

आगे इसी कविता मे वे 'टूटी है कब तेरी समाधि, झझा लौटे रात हार–हार,'[2] कहकर साधना पथ पर चलने के पश्चात् लक्ष्य को प्राप्त कर समाधि की अवस्था की ओर इगित करती है। 'सुख से विरक्त दुख मे समान्।[3] कहकर समरस हो जाने की स्थिति को साकार भी करती है। इसी कविता मे आगे वे कहती है –

तन तेरी साधकता छू ले

मन ले करुणा की थाह नाप।

उर मे पावस दृग मे विहान्।[4]

कवयित्री सतत् साधना और महानता के सामने नतमस्तक है और हृदय मे व्याप्त अज्ञानता को चक्षु से देखे जाने वाले सौन्दर्य से दूर करती है। 'सखि मै हूँ अमर सुहाग भरी।'[5] कविता मे अपने प्रिय के अनत अनुराग से तृप्त हो वे कह उठती है –

किसको त्यागूँ किसको माँगू ,

है एक मुझे मधुमय विषमय,

मेरे पद छूते ही होते,

काँटे कलियाँ प्रस्तर रसमय।[6]

महादेवी को 'मधुमय' और 'विषमय' दोनो एक जैसे लगते है। यह उनकी समदृष्टि और सम स्थिति को लक्षित करता है। काँटे, कलियाँ और पत्थर तीनो रसमय दिखते है। अपने अराध्य से मिलन की स्थिति मे ही ऐसी अनुभूति तथा अभिव्यक्ति सभव है।

महादेवी जी 'उस पार' अर्थात् रहस्य को जानने को उत्सुक भी होती है। 'फिर विकल है प्राण मेरे।'[1] कविता मे इसे लक्षित भी करती है –

---

[1] महादेवी सन्धिनी पृष्ठ 117
[2] उपरिवत पृष्ठ 117
[3] उपरिवत पृष्ठ 118
[4] उपरिवत पृष्ठ 118
[5] महादवी सान्ध्यगीत पृष्ठ 85
[6] उपरिवत पृष्ठ 85

तोड दो यह क्षितिज मै भी देख लूँ उस ओर क्या है।

जा रहे जिस पथ से युग कल्प उसका छोर क्या है।[2]

ऐसा भी नही है कि वे अपने अराध्य को नही जानती –

बेध दो मेरा हृदय माला बनूँ प्रतिकूल क्या है।

मै तुम्हे पहचान लूँ इस कूल तो उस कूल क्या है।[3]

'सान्ध्यगीत मे महादेवी की जिज्ञासा का विस्तार होता है। जिज्ञासा यह नही कि प्रिय (अराध्य) कैसे है बल्कि इसके आगे भी जानने की उत्सुकता है। यह उनकी प्रौढ दृष्टि का द्योतक है।

'सान्ध्यगीत मे महादेवी कही प्रकृति–चित्रण से प्रेरित और कही प्रिय के बारे मे चितन करती है। 'सान्ध्यगीत' के बारे मे नददुलारे बाजपेयी ने 'महादेवी का काव्य–व्यक्तित्व' शीर्षक निबध मे लिखा है –

''सान्ध्यगीत मे दार्शनिक एकाग्रता उच्चतर हो उठी है, किन्तु काव्य–उपादान उतनी मात्रा मे समृद्ध नही हो पाया है। इसलिए सभवत इन गीतो की रहस्य–भावना ही प्रधान स्थान पा गई है, उपयुक्त रूप–योजना उन्हे नही मिल सकी।''[4]

वस्तुत महादेवी प्रकृति से उत्प्रेरित और उत्तेजित हुई है। कही–कही प्रकृति से उत्प्रेरित या उसे उपादान बनाकर वे अपने दार्शनिक मन्तव्यो को उचित आधार नही दे पायी है। चित्रात्मक बिम्ब–योजना, प्रतीको और रूपको का प्रयोग, अलकारिक शब्दावली, अभिप्राय को समझने मे सहायक चित्रो आदि को इस सग्रह की अन्य विशेषताओ मे गिना जा सकता है।

जहॉ तक उच्चतर दार्शनिक एकाग्रता का प्रश्न है इसे अपनी भूमिका मे ही वे स्पष्ट कर देती है। महादेवी कहती है '' कवि ने ऐसे तारतम्य खोजने का प्रयास किया जिसका एक छोर असीम चेतन और दूसरा उसके ससीम हृदय मे समाया हुआ था तब प्रकृति का एक–एक अश एक अलौकिक व्यक्तित्व को लेकर जाग उठा।''[5] प्रकृति की यह अलौकिकता

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 55

[2] उपरिवत पृष्ठ 55

[3] महादवी सान्ध्यगीत पृष्ठ 65

[4] डॉ० इन्द्रनाथ मदान महादेवी पृष्ठ 118

[5] महादवी सान्ध्यगीत पृष्ठ 6

'सान्ध्यगीत' के गीतो मे निदर्शित भी होती है। किन्तु वे यही पर सतुष्ट नही होती। अपने गीतो मे आत्म–विसर्जन, अनुराग, सरसता आदि भावो की अभिव्यक्ति ही उनका लक्ष्य है। आगे महादेवी कहती है कि, ''इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म निवेदन कर देना इस काव्य का दूसरा सोपान बना जिसे रहस्यमय रूप के कारण ही रहस्यवाद का नाम दिया गया।'[1] रहस्यवाद के इसी द्वितीय सोपान की अभिव्यक्ति उनके इस सग्रह मे मिलती है। इसी कारण 'सान्ध्यगीत' मे अन्तश्चेतना की सजलता मिलती है।

सक्षेपत 'सान्ध्यगीत' मे महादेवी साधना के स्वरूप और साध्य को स्पष्ट कर देती है। वैराग्य भावना तथा उससे उत्पन्न समरसता की स्थिति सर्वत्र विद्यमान है। पूरे ब्रह्मड की अनेकता मे एकता का सूत्र खोजते हुए, उसके मधुमय और सजल गायन मे कवयित्री सफल है। रहस्यवाद के प्रारम्भिक चरण जिज्ञासा आदि का भी विस्तार दिखता है। निश्चय ही उनकी जिज्ञासा प्रारम्भिक जिज्ञासा से भिन्न तथा प्रौढ है। उनका प्रकृति–वर्णन तथा अर्थवाही चित्र उनके अभिप्राय को समझने मे सहायक सिद्ध होते है। कुछ अपवादो को छोडकर उनके अधिकॉश गीत रहस्यात्मक अनुभूतियो से पूर्ण है।

दीपशिखा

महादेवी वर्मा के इस काव्य–सग्रह के प्रत्येक गीतो के साथ एक चित्र छपा है। इन अर्थवाही चित्रो से उनकी चित्रात्मक सर्जन शक्ति से परिचित हुआ जा सकता है। काव्य–सौन्दर्य और चित्र–सौन्दर्य का अद्भुत सग्रह 'दीपशिखा' है। 'दीपशिखा' मे कवयित्री के सिद्धावस्था का निदर्शन मिलता है। इस सग्रह मे चौदह गीत तो पूर्णत दीपक के रूपक पर आधारित है। अन्य गीतो मे भी दीपक की चर्चा मिलती है। जिस प्रकार दीपक की लौ खुद जलकर जगत् को आलोकित करती है, उसी प्रकार महादेवी का सवेदनशील हृदय जगत् के दुख को दूर करना चाहता है। 'दीपशिखा' मे कवयित्री का स्वाभिमान और आत्मविश्वास चरमोत्कर्ष पर है। 'दीपशिखा' की भूमिका मे वे कहती है –

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 7

'' 'दीपशिखा मे अविश्वास का कोई कम्पन नही है। नवीन प्रभात के वैतालिको के स्वर के साथ इसका स्थान रहे ऐसी कामना नही, पर रात की सघनता को इसकी लौ झेल सके, यह इच्छा तो स्वाभाविक रहेगी।'[1]

भूमिका के प्रारम्भ मे ही वे कहती है सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है।'[2] ऐसा कहकर वे अपने लक्ष्य को सामने रख देती है। दीपशिखा' की लम्बी भूमिका मे वे इहलौकिक और पारलौकिक जगत् को जोडकर देखती है। यह भूमिका उनके दृष्टिकोण को समझने मे सहायक ही सिद्ध होती है। एक तरह से वे अपने रहस्यवाद को जीवन से जोडकर देख रही है। उनके कलात्मक सृजन का मूल 'दीपशिखा मे मिलता है। कलात्मक सृजन पर टिप्पणी करती हुई वे कहती है–

''वस्तुत तीव्र आवेग–क्रिया के गहरे सस्कार तथा सवेदन के प्रति रूपो के सामजस्यपूर्ण सयोजन द्वारा हमारे मनोजगत् मे जिस नवीन अनुभव की रचना होती है, वही कलात्मक सृजन का मूल है।''[3]

सयोग की इस स्थिति को दीपशिखा' ही नही, बल्कि उनके समस्त काव्य मे देखा जा सकता है। वस्तुत महादेवी का सम्पूर्ण काव्य अनुभूति से प्रेरित है। साथ ही साथ उनके काव्य मे अन्त करण के सारे अवयवो का सामजस्यपूर्ण सयोजन भी मिलता है। यद्यपि अपवाद स्वरूप कही – कही सहज रूप से इन स्थितियो का सयोजन नही मिलता।

डॉ० नगेन्द्र ने 'दीपशिखा' की अनुभूति को पार्थिव मानते हुए उसमे तीन तत्त्व स्वीकार किये है–(1) जलने की भावना (2) विश्व के प्रति गीला–करूणा –भाव (3) अज्ञात प्रिय का सकेत।[4] इसके आगे डॉ० नगेन्द्र कहते है–

''दीपशिखा' कवि के अपने मन का प्रतीक है। 'दीपशिखा' मे फारसी शमअ की तरह ऐद्रिय–वासना की दाहक ज्वाला नही है, वरन् करूणा की स्निग्ध लौ है जो मधुर–मधुर

---

[1] महादेवी दीपशिखा (चिन्तन के क्षण) पृष्ठ 59
[2] उपरिवत पृष्ठ 3
[3] महादेवी महादेवी साहित्य भाग –2 पृष्ठ 8
[4] शचीरानी गुर्टू (स०) महादवी वर्मा पृष्ठ 201

जलती हुई पृथ्वी के कण–कण के लिए आलोक वितरित करती है और इस जलने के पीछे किसी अज्ञात प्रिय का सकेत है जो उसे असीम बल और अकम्प विश्वास प्रदान करता है।"[1]

अज्ञात प्रिय के सकेत को असीम का सकेत मानना ही उचित होगा। वह अपरा शक्ति ही महादेवी को असीम बल और अकम्प विश्वास प्रदान करती है। महादेवी के काव्य मे साधनात्मक रहस्यवाद की न्यूनता के चलते कतिपय आलोचको को उनमे रहस्यवाद नही दिखता। महादेवी 'नीरजा' मे 'क्या पूजा क्या अर्चन रे?'[2] कहकर साधना की अनिवार्यता समाप्त कर देती है। इसका अर्थ यह भी नही कि उनमे साधना है ही नही। साधना की न्यूनता भी एक आकर्षण है जो उसे मध्ययुगीन दुर्बोध और जटिल रहस्यवाद से अलग करती है।

'दीपशिखा' मे महादेवी 'दूर घर मै पथ से अनजान।'[3] की स्थिति मे नही रहती है, वरन् अपनी उपासना–पद्धति के रूप को स्थिर कर सिद्धावस्था मे पहुँच गई है। उनकी उपासना या समस्त सर्जनात्मक क्रिया–कलाप विश्व सुख के निमित्त है। अपने साधना पथ को ही वे 'निर्वाण' तथा 'वरदान' मानती है –

पथ मेरा निर्वाण बन गया।

प्रति पग शत वरदान बन गया।[4]

इस पथ को वे विकास की प्रक्रिया मानती हे। विकास की इस प्रक्रिया के निरतर चलते रहने का सकेत भी वे जगह–जगह करती है। साथ ही साथ अपने साधना पथ पर चलने मे किसी भय या दुविधा का अनुभव भी नही करती है–

मिल अरे बढ, रहे यदि प्रलय झझावात।

कौन भय की बात?

पूछता क्यो शेष कितनी रात?[5]

यहॉ उनका असीम आत्मविश्वास और अटूट दृढता दिखती है।

---

1 उपरिवत पृष्ठ 207
2 महादवी नीरजा पृष्ठ 101
3 उपरिवत पृष्ठ 100
4 महादवी दीपशिखा पृष्ठ 127
5 महादवी दीपशिखा पृष्ठ 131

'दीपशिखा' की पच्चीसवी कविता मे आत्मबोध हो जाने का सकेत भी महादेवी करती है –

प्रश्न जीवन के स्वय मिट

आज उत्तर कर चली मै।[1]

प्रस्तुत पक्तियो से उनके द्वारा 'रहस्' को जानने–समझने का सकेत मिलता है। 'ऑसुओ के देश मे।' शीर्षक कविता मे महादेवी कहती है –

खोज ही चिर प्राप्ति का वर,

साधना ही सिद्धि सुन्दर,

रुदन मे सुख की कथा है,

विरह मिलने की प्रथा हे,

शलभ जलकर दीप बन जाता निशा के शेष मे।

ऑसुओ के देश मे।[2]

यहॉ कवि प्रिय की अनत खोज की ओर अग्रसर है। खोज–प्राप्ति, साधना–सिद्धि, रुदन–सुख, विरह–मिलन तथा शलभ–दीप आदि प्रतीकात्मक रहस्यवादी शब्दावली के माध्यम से उन्होने उत्कृष्ट रहस्यवादी अनुभूति की अभिव्यजना की है।

ऐसा भी नही है कि 'दीपशिखा' मे उनके रहस्यवाद का अन्तिम चरण ही मिलता है बल्कि यत्र–तत्र प्रारम्भिक चरण भी निदर्शित होता हे। फिर भी उनके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती गीतो मे एक तारतम्यता मिलती है। जीवन की नश्वरता, पूर्वजन्म आदि का सकेत भी 'दीपशिखा' की 'तू धूल भरा ही आया।' शीर्षक कविता मे मिलता है –

तू धूल –भरा ही आया।

ओ चचल जीवन–बाल। मृत्यु जननी ने अक लगाया।

साधो ने पथ के कण मदिरा से सीचे,

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 106
[2] उपरिवत पृष्ठ 93

झझा ऑधी ने फिर–फिर आ दृग मीचे,

आलोक तिमिर ने क्षण का कुहुक बिछाया।[1]

इसी कविता मे आगे जहॉ 'शत–शत प्यासो की चली लुभाती छाया।'[2] कहकर माया की ओर लक्षित करती है वही 'विषाद ने अग कर दिये पकिल,'[3] कहकर वेदना की पराकाष्ठा की ओर सकेत भी। निश्चय ही यहॉ वैराग्य–भावना दिखाती है। अत्यधिक विवशता की स्थिति मे और नितान्त अकेलेपन मे कवयित्री को अपने अराध्य का सकेत भी मिलता है –

पाथेय–हीन जब छोड गये सब सपने

आख्यानशेष रह गये अक ही अपने,

तब उस अचल ने दे सकेत बुलाया।[4]

'दीपशिखा की अतिम कविता मे महादेवी अज्ञात को पूर्णत जानने का सकेत करती है –

क्षण–क्षण का जीवन जान चली।

मिटने को कर निर्माण चली।

साराशत 'दीपशिखा' मे कवयित्री साधनावस्था से निकलकर सिद्धावस्था मे पहुॅच गई है। 'दीपशिखा' मे 'सान्ध्यगीत' सी प्रौढता भी दिखती है। इस गीत–सग्रह मे महादेवी पिछले सग्रहो की अपेक्षा प्राकृतिक उपादानो पर अधिक निर्भर है। 'दीपशिखा' रामगढ की सुरम्य वादियो मे लिखी गई। जिसके चलते उसमे प्रकृति–चित्रण की बहुलता मिलती है। पूर्ववर्ती चित्रो की अपेक्षा कम रगो का सयोजन भी 'दीपशिखा' मे मिलता है। ऐसा उनकी वैराग्य –भावना के चलते है। सवेदना का उचित सयोजन, अनुभूति की गहनता और अभिव्यक्ति की उत्कृष्टता भी 'दीपशिखा मे मिलती है। उनके अर्थवाही चित्रो के आध्यात्मिक मतव्य ही निकलते है। वासना का लेश मात्र आरोहण इन चित्रो से नही झलकता। महादेवी की दृढता, आस्था और आत्मविश्वास को इस सग्रह मे चरमोत्कर्ष पर देखा जा सकता है। वे एक निरतर और नवीन पथ पर अग्रसर है। दार्शनिक तथ्यो की सफल अभिव्यक्ति के साथ–साथ उत्कृष्ट बिम्ब तथा

---

[1] उपरिवत् पृष्ठ 89

[2] उपरिवत पृष्ठ 89

[3] उपरिवत पृष्ठ 89

[4] उपरिवत पृष्ठ 89

प्रतीक, योजना, चित्रात्मकता, प्रकृति–चित्रण आदि को इस काव्य–सग्रह की प्रमुख विशेषता माना जा सकता है।

अग्निरेखा

सन् 1990 ई० मे महादेवी की मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित इस कविता–सग्रह मे उनके अतिम दिनो की कविताएँ सग्रहीत है। इसमे कुछ नई तथा कुछ पूर्व प्रकाशित कविताएँ है। किसी भी कविता का रचनाकाल नही दिया गया है। 'अग्निरेखा' की दस कविताओ के शीर्षक दिये गये है। अन्य कविताओ का एक ही शीर्षक है – गीत'। सभी कविताओ मे भावो का उचित सयोजन मिलता है। 'हिमालय' और 'बापू को प्रणाम कविताओ मे गौरव बोध है। 'विदा–बेला' मे रवीन्द्रनाथ टैगोर को भावभीनी श्रद्धाजलि अर्पित है। इस कविता का मूल स्वर शोक है। 'बग–बदना' मे बगाल के अकाल के सन्दर्भ मे राष्ट्रीय शोक की अभिव्यजना है। 'विदा–बेला' और 'बग–बदना' करूणा के स्रोत से निसृत कविताएँ है। महादेवी के साहित्य का मूल स्वर यहाँ विस्मृत हो चला है। इस सग्रह के कवर–पृष्ठ पर कहा गया है –

" महादेवी–काव्य मे ओत–प्रोत वेदना और करूणा का वह स्वर, जो कब से उनकी पहचान बन चुका है, यहाँ एकदम अनुपस्थित है। अपने को 'नीर भरी–दुख की बदली' कहने वाली महादेवी यहाँ 'ज्वाला के पर्व' की बात करती है और 'ऑधी की राह' चलने का आह्वान करती है। 'वशी' का स्वर अब 'पाचजन्य' के स्वर मे बदल गया है और 'हर ध्वस–लहर मे जीवन लहराता' दिखाई देता है।[1]

स्पष्टत महादेवी पूर्व की अपेक्षा कुछ अलग दिखती है। अब वे ज्वाला की बात करती है। 'अग्नि–स्तवन' शीर्षक कविता मे वे कहती है –

पर्व ज्वाला का, नही वरदान की बेला।

न चन्दन फूल की बेला।[2]

यहाँ समय को बदलने का दृढ सकल्प लक्षित होता है। कवयित्री अपने पथ की अकेली राही है। वह प्रश्न कर बैठती है –

---

[1] महादेवी अग्निरखा कवर पृष्ठ

[2] उपरिवत पृष्ठ 11

किरण–पथ पर क्यो अकेला दीप मेरा है?

यह व्यथा को रात का कैसा सबेरा है?[1]

यह अकेलापन भी उनके आत्मविश्वास को नही डिगा पाता। अपनी 'आलोक पर्व' कविता मे कवयित्री कहती है –

घन तिमिर मे हो गया प्रहरी यही दीपक हमारा।

है अगर निधियॉ तुम्हारी

दीप माटी का हमारा।[2]

बडे विश्वास और उत्साह के साथ वे अपने माटी के दीपक को अधकार से बचाने का प्रहरी मानती है। कोई प्रलोभन उनको अपने मार्ग से नही हटा सकता। निश्चित रूप से वे अपने अकेली यात्री होने की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति करती है।

साराशत इस काव्य–सग्रह मे विषय–वैविध्य का विस्तार मिलता है। जिस रास्ते का निर्माण उन्होने पूर्ववर्ती कृतियो मे किया है उससे उनका विश्वास नही हटा है। वे और आत्मविश्वास के साथ अपने पथ पर अग्रसर दिखती है। साथ ही साथ सामूहिक चेतना का सयोजन भी 'अग्निरेखा' मे परिलक्षित होता है।

अन्य

महादेवी की अन्य कृतियो मे उनके कविताओ का चयन या सकलन ही मिलता है। इन सभी सग्रहो मे भूमिकाये भी है जो कवि के उद्देश्य को समझने मे सहायक सिद्ध होती है। अतएव इस पर भी एक सक्षिप्त चर्चा अनिवार्य है।

'यामा' मे 'नीहार', 'रश्मि, नीरजा' और 'सान्ध्यगीत' का सकलन है। इतना अवश्य है कि 'यामा' के चित्र तथा भूमिका उसके निहितार्थ को समझने मे सहायक है।

'सन्धिनी' मे उनकी 'रहस्य–प्रधान' कविताओ का सकलन है, जो विविध सग्रहो से ली गयी है। 'सन्धिनी' की भूमिका मे वे अपने आशय को समझाने मे सफल है।

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 22
[2] उपरिवत पृष्ठ 23

'बग दर्शन', 'हिमालय' आदि मे उनके साथ–साथ अन्यो के गीतो का भी सचयन है। इनमे समसामयिक विषयो और हिमालय के माध्यम से भारत के गौरव–बोध को उठाया गया है।

'सप्तपर्णा' महादेवी की अनुदित कविताओ का सग्रह है। इसकी लम्बी भूमिका मे महादेवी ने अपने मन्तव्यो और विभिन्न विषयो पर लेखनी चलाई है।

'परिक्रमा', 'गीतपर्व', 'मेरी प्रिय कविताए', 'आत्मिका', 'नीलाम्बरा', 'दीपगीत' आदि मे उनके चयनित गीत ही है। इनकी भूमिकाये सक्षिप्त और सुक्ति सरीखी है जो उनके मन्तव्यो को समझने मे सहायक सिद्ध होती है।

सक्षेपत उपरोक्त सकलनो की भूमिकाये कवयित्री को साहित्य के क्षेत्र मे और स्थापित करती है। अपने साहित्यिक मन्तव्यो तथा अन्य विषयो पर महादेवी निर्भयतापूर्वक अपने विचारो को रखती है। अपने सचयनो मे वे अपनी श्रेष्ठ कविताओ को ही रखती है। 'सप्तपर्णा' मे अपने अनुदित साहित्य के माध्यम से वे अतीत की सुरभि को समेटने मे सफल है। साथ ही साथ भूमिका मे अपने साहित्यिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करती हुई वर्तमान मे उसकी प्रासगिकता को भी स्पष्ट करती है।

निष्कर्ष

सार रूप मे यह कहा जा सकता है कि महादेवी के प्रारम्भिक–काव्य मे उनकी प्रतिभा के अकुरण की स्थिति निदर्शित होती है। इस काल मे कवयित्री ब्रज भाषा, छन्द, अलकार आदि से परिचित हो चुकी थी। महादेवी जी अपने प्रारम्भिक–काव्य मे ब्रज भाषा, समस्यापूर्ति और खडी बोली के आकर्षण से गुजरती है। पर उनकी प्राय प्रौढ काव्य रचना खडी बोली मे ही हुई। 'नीहार' के प्रकाशन से साहित्य जगत मे उनकी पहचान बनती है। महादेवी की इस कृति मे छायावाद की समस्त प्रवृत्तियॉ सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। 'नीहार' मे मार्मिकता है और छायावादी भाव–भूमि पर रहस्यवाद का प्रतिष्ठापन भी। पूरे काव्य–सग्रह मे अज्ञात की खोज प्रणय–भावना से होती है। इस क्रम मे आई स्थितियो का भी वर्णन मिलता है। अज्ञात प्रिय से मिलन, बिछुडन तथा परिचय आदि महादेवी के काव्यगत विषय बनते है। यह क्रम कही–कही टूटता भी दिखता है -- कही शिथिल शब्द–विन्यास तो कही कोरी भावुकता के

चलते। अनुभूति और अभिव्यक्ति की सीमाये भी है, परन्तु नीहार की मार्मिकता प्रभावित करती है। कवयित्री का भाव–लोक, रहस्योन्मुख–चितन की भित्ति पर प्रतिष्ठित होता है। 'रश्मि' मे महादेवी अपने अज्ञात प्रियतम के रूप–चितन और वर्णन मे रत दिखती है। 'नीहार' मे जहॉ दु खवाद और अध्यात्म का धुॅधला कुहासा है वही 'रश्मि' मे प्रेमाकुलता है। वस्तुत का 'रश्मि' मे महादेवी की दार्शनिकता का उभार दिखता है। इस कृति मे महादेवी कुछ स्पष्ट भाव–बोध, शिल्प–बोध और सौन्दर्य–बोध के साथ उपस्थित होती है। 'नीरजा' मे पिछले सग्रहो की मार्मिकता लुप्त है। महादेवी अपनी रहस्यवादी कविताओ मे सामजस्य एव प्रौढता की स्थिति मे दिखती है। महादेवी जी सम्पूर्ण विश्व को उस चिर् नवीन, अलोकिक की छाया मानते हुए – उसको उद्भासित करने मे सफल है। 'सान्ध्यगीत' मे अन्तश्चेतना की सजलता तथा बाह्य–चेतना की प्राजलता निदर्शित होती है। महादेवी की चितन तथा उसकी अभिव्यक्ति प्रशसनीय है। 'सान्ध्यगीत' मे उनकी साधना का स्वरूप एव साध्य स्पष्ट हो चला है। विश्व की विविधता मे एकता के सूत्र को खोजना तथा उसका रागात्मक गायन करना उनका साध्य हो चला है। पर काव्य–सग्रह मे वैराग्य की भावना से समरसता का गायन है। महादेवी की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति मे यह सम स्थिति दिखाई देती है। 'दीपशिखा' उनकी प्रौढतम कृति है। काव्य–सौन्दर्य और चित्र–सौन्दर्य की दृष्टि से यह सग्रह चकित करता है। 'सान्ध्यगीत' की तरह दीपशिखा के अर्थवाही चित्र भी उनके निहितार्थ को समझने मे सहायक है। पर यहॉ महादेवी प्राकृतिक उपादानो पर अधिक निर्भर है। 'दीपशिखा के चौदह गीत दीपक के रूपक पर आश्रित है और जिस प्रकार से दीपक जलकर दूसरे को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार महादेवी का सवेदनशील ह्दय जगत् की पीडा का हरण करना चाहता है। दार्शनिक तथ्यो की सफल अभिव्यक्ति के साथ–साथ उत्कृष्ट शिल्प–बोध इस कृति को अमर बना देता है। 'अग्निरेखा' महादेवी की मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित होती है। अग्निरेखा' मे कुछ नये तथा कुछ पुराने गीत सकलित है। नये गीतो मे महादेवी पूर्व की अपेक्षा कुछ अलग दिखती है। विषय–वैविध्य का विस्तारीकरण तथा सामूहिक चेतना का सयोजन भी इस कृति मे दृष्टिगोचर होता है। महादेवी की कृति 'सप्तपर्णा' एक अनुदित काव्य–रचना है। इसकी लम्बी भूमिका कवयित्री के मन्तव्यो को समझने मे सहायक सिद्ध होती है। महादेवी जी कृतियो मे उनकी कविताओ का चयन या सकलन ही मिलता है। भूमिकाओ की दृष्टि से कुछ नवीनता अवश्य मिलती है। महादेवी जी के गद्य से भी उनके दृष्टिकोण को जॉचा–परखा जा सकता है।

तृतीय अध्याय

रहस्यवाद

मनुष्य को सृष्टि का सर्वोपरि प्राणी माना जाता है। सामान्य रूप से उदरपूर्ति, आत्मरक्षा तथा प्रजनन को प्राणी मात्र की मूल प्रवृत्तियॉ माना जाता है। परन्तु, इन प्रवृत्तियो की पूर्ति मात्र से ही मनुष्य सतुष्ट न रह सका, वह सदैव प्रकृति के विभिन्न क्रिया–कलापो तथा रहस्यो को जानने के लिए तत्पर रहा। इन सब क्रिया–कलापो के पीछे किसका हाथ है, वह कौन सी शक्ति अखिल ब्रह्माण्ड को नियत्रित करती है? आदि प्रश्न मनुष्य के मस्तिष्क मे लगातार उठते रहे। इन्ही प्रश्नो के समाधान हेतु मनुष्य का जिज्ञासु मन आदिकाल से ही प्रयत्नशील है। प्रकृति पर विजय की प्रवृत्तियो ने जहॉ वैज्ञानिक प्रगति का झडा गाडा, वही अपने सूक्ष्मतर रूप मे इसको अभिव्यक्ति दर्शन से मिली। औत्सुक्य की अवधारणा मनुष्य के पृथ्वी पर आगमन के साथ शुरू हुई। सभ्यता के विकास के क्रम मे जगत् और उसके रहस्यो को जानने की प्रक्रिया और तीव्र हुई। विज्ञान और दर्शन की उन्नति के साथ यह प्रक्रिया अपनी उच्चतर स्थिति मे पहुँची।

जिज्ञासा की यह भावना उन्ही मे पाई जाती है, जो भावुक तथा अतमुर्खी और लौकिकता से विमुख है। जब व्यक्ति–विशेष, इस ससार से पूर्णत विमुख हो जाता है, तब उसकी अन्तश्चेतना अत्यधिक सवेदनशील हो उर्ध्वगामी हो जाती है। वह जीव–जगत्, ब्रह्म – जीव या आत्मा – परमात्मा और उसके अकाट्य सम्बन्धो पर विचार तथा अनुभव करने लगता है। बाह्य – जगत् के आलम्बन उसकी रागात्मक चेतना को आधार नही दे पाते। ऐसी स्थिति मे अपनी अन्तश्चेतना के उच्चतम धरातल पर उसे किसी अलौकिक शक्ति का आभास होता है। इसकी अनुभूति इतनी तीव्र होती है कि वह क्षणिक आनद को पूर्णत प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो उठता है। इसी क्रम मे वह परम् तत्त्व से प्रेम मिलन और विरह की अनुभूति करने लगता है। सृष्टि के समस्त विस्तार मे उसे परम् तत्त्व के निदर्शन होने लगते है। इसी अज्ञात को जानने की या साक्षात्कार की प्रवृत्ति रहस्यवाद है। सत्य या परम् तत्त्व को जानने के क्रम मे आई स्थितियॉ ही रहस्यवाद का विषय और क्षेत्र है। अलौकिक शक्ति के प्रति प्रेम, औत्सुक्य, मिलन, बिछुडन आदि के अनुभवो को जब व्यक्त किया जाने लगता है, तब इस अवस्था–विशेष की दशा को रहस्यानुभूति कहा जाता है। चूँकि यह प्रक्रिया लौकिकता से विमुख

होकर सम्पन्न होती है, अत रहस्यवादी प्राणी मात्र की मूल प्रवृत्तियो से विरक्त–भाव रखते हुए उसके परिमार्जन और उदात्तीकरण मे रत दिखते है।

सक्षेप मे सत्य से साक्षात्कार की प्रवृत्ति को रहस्यवाद तथा उस क्रम मे हुए विविध अनुभवो की अभिव्यक्ति को रहस्यानुभूति कहा जा सकता है। रहस्यवाद का प्रयोजन सिर्फ इतना है कि परम तत्त्व सामान्य प्राणी के लिए अगम्य है और परम तत्त्व का दर्शन 'अन्त स्फुरित सहज ज्ञान' [1] के द्वारा ही सम्भव है यह पूर्णत अनुभव गम्य हे जिसे विशिष्ट स्थिति मे अनुभव किया जा सकता हे। रहस्यानुभूति ईश्वर से जीव के एकाकार की स्थिति मे ही सम्भव है। इसी कारण वह ईश्वर मात्र पर श्रद्धा न रखकर उससे साक्षात्कार पर विश्वास करता है। इसे धर्म या वाद की विशिष्ट प्रणाली मात्र मानना भी अनुचित होगा। परमात्मा से विशिष्ट सम्बन्ध बनाना या उसमे विलीन होना अनुभूति का क्षेत्र है। अत यह अनुभूति अनत प्रेम की आग्रही होती है। रहस्यवादी इस अनत प्रेम की तीव्रता को लौकिक या पारलौकिक प्रतीको के माध्यम से व्यक्त करता है।

रहस्यवाद की भारतीय अवधारणा

भारत रहस्यवादियो ओर उनकी साधना का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यहॉ वैदिक युग से ही रहस्यवादी साधना के बीज मिलते है। 'ऋग्वेद' मे कहा गया है कि –

''उदुत्तम मुमुग्धि नो विपाश मध्यम चृत अवधामनि जीवसे।''[2] (शिर के, उदर के, पैरो के पाश को काट दो ताकि सारा जीवन मुक्त हो जाय।)

यहॉ मुक्ति की कामना व्यक्त हुई है। यह मुक्ति दृश्यमान् जगत् के त्याग के पश्चात् ही सम्भव है।

किन्तु ऋग्वेद मे रहस्यवाद के सकेत अल्प ही है। तप, ऋत और पुरुष आदि की चर्चा के क्रम मे रहस्यवाद के सकेत दिखाई देते है। ''वैदिक सूक्त परवर्ती काल की भारतीय विचारधारा की आधारभित्ति का निर्माण करते है। जहॉ एक ओर ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञ आदि के अनुष्ठान पर बल देते है, जिनकी छायामात्र सूक्तो मे पाई जाती है, उपनिषदे उनके अर्न्तगत

---

[1] स० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्यकोश भाग 1 पृष्ठ 691

[2] ऋग्वेद 3/1/115

दार्शनिक विचारो को आगे बढाती है।"[1] अत उपनिषदो मे रहस्यवादी साहित्य का प्राचुर्य मिलता है। उपनिषद् (उप+नि+षद्) शब्द, उप+नि उपसर्ग षद् धातु के क्रिप् प्रत्यय करने पर बनता है। "षद् (सद्) धातु का अर्थ विशरण (विनाश), गति(ज्ञान) और अवसादन (शिथिल करना) होता है। इस व्युपत्ति के अनुसार जो समस्त अनर्थों के उत्पन्न करने वाले ससार का विनाश करती है– वह उपनिषद् है। तैत्तरीय उपनिषद् मे इसे रहस्य' कहा गया है।"[2] उपनिषदो मे विभिन्न वैचारिक धाराये दृष्टिगोचर होती है। पर इस समस्त सृष्टि से परे एक चेतन शक्ति है, जो आत्मा या ब्रह्म कहलाती है। इस पर सभी उपनिषद् एक मत है। उपनिषदो मे उस परम तत्त्व के स्वरूप पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। वह परम तत्व एक और अद्वितीय, शान्त और अनन्त, सत्–चित्–आनन्द, अलक्षण और निर्विकार, समस्त जगत् का अधिष्ठान ब्रह्म है। मनुष्य की आत्मा भी ऐसी ही और उससे अभिन्न है।"[3] बाद के दार्शनिको और रहस्यवादियो ने अपनी–अपनी मान्यताओ के अनुसार उपनिषदो का भाष्य किया है। गौतम बुद्ध भी 'मज्झिमनिकाय' मे आत्मा और अनात्म के सम्बन्धो को उपनिषद शैली मे व्याख्यायित करते है– "मै वह हूँ, मै उससे हूँ, वह मेरा है। मै सदात्मा रखता हूँ, मै आत्मा से आत्मा को जानता हूँ, मै अनात्म को आत्मा से जानता हूँ, मै आत्मा को आत्मा से जानता हूँ।"[4]

वस्तुत समस्त उपनिषदकार आत्म प्रचार से दूर रहकर सत्य के प्रचार–प्रसार मे सलग्न रहते है। उनके अनुसार बुद्धि तत्त्व के स्तर पर द्वैत भाव बना रहता है। आत्मा उस आनद स्वरूप परम तत्त्व का ही अश है। ब्रह्म से साक्षात्कार की स्थिति मे द्वैत भाव मिट जाता है। इस प्रकार समस्त परवर्ती दार्शनिक विचारधाराओ के बीज उपनिषद–ग्रन्थो मे परिलक्षित होते है।

बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म मे रहस्यवाद का व्यवहारिक पक्ष ही मिलता है। गौतम बुद्ध निर्वाण को ही जीवन का लक्ष्य मानते है। जिसका साधन वे अष्टागिक मार्ग को बतलाते है। उनमे बुद्धिवादी और उपयोगितावादी दृष्टिकोण दिखता है। चीन और जापान आदि देशो मे बौद्ध धर्म का विस्तार हुआ। वहॉ अद्यतन प्रचलित "बौद्ध धर्म की ध्यान सम्प्रदाय–शाखा मे परम सत्य के स्वरूपकी अपरोक्षानुभूति, उसमे आकस्मिक अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर लेने पर ही बल दिया

---

[1] डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् भारतीय दर्शन पृष्ठ 106

[2] श्री देवदत्त शास्त्री उपनिषद्–चिन्तन पृष्ठ 4

[3] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृष्ठ 693

[4] श्री देवदत्त शास्त्री उपनिषद्–चिन्तन पृष्ठ 6

गया है।"[1] यह ज़रूर है कि बौद्ध धर्म के तान्त्रिक विकास मे रहस्यवादियो तथा रहस्यवाद का प्राचुर्य है। आदिकालीन नाथो–सिद्धो के साहित्य मे भी रहस्यवाद विषयक दृष्टिकोण प्राप्त होता है।

उपनिषदो मे भक्ति की चर्चा प्राय कम ही मिलती है। पर भक्तिमार्गी भी श्रद्धा, साधना और समर्पण के बल पर उसी लक्ष्य पर पहुँचना चाहते है। इस बिन्दु पर रहस्यवादियो और भक्तिमार्गियो का लक्ष्य एक ही है। 'भगवद्गीता' मे भक्ति के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। भक्ति आदोलन जो दक्षिण के अलवार सन्तो से शुरू हुई उसे वैष्णव आचार्यों ने पूरे देश मे फैलाया। सगुण रहस्यवादी साधको मे बल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई, तुकाराम, नरसी मेहता आदि प्रमुख है, परन्तु रहस्यवादी साहित्य निर्गुण शाखा के कवियो मे प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है। सूफी सन्तो की एक शाखा का विकास भारत मे होता है, जिसका प्रतिनिधित्व जायसी आदि कवि करते है। वस्तुत सूफी तथा सत परम्परा के कवियो ने रहस्यवाद को उच्चतम धरातल पर प्रतिष्ठित किया। रहस्यवाद पर अध्ययन के केन्द्र मे कबीर और जायसी विशेष उल्लेखनीय है। इन दोनो का प्रभाव आधुनिक काल के कवियो पर भी पडा है।

आधुनिक काल मे देवेन्द्रनाथ ठाकुर, रामकृष्ण परमहस, स्वामी विवेकानद, रवीन्द्र नाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द आदि की कृतियो से भारत का रहस्यवादी साहित्य समृद्ध होता है। इनके विचारो तथा साहित्य के छायावादी कवि ऋणी है। अत प्रसाद, पत, निराला तथा महादेवी की रहस्यात्मक कविताओ पर इनका प्रभाव परिलक्षित होता है। इन कवियो की रहस्यवादी कविताएँ आधुनिक सन्र्दभो मे विकसित धरातल पर सम्पन्न हुई है। प्रमुख भारतीय विद्वानो ने रहस्यवाद को निम्नवत ढग से परिभाषित किया है–

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य मे रहस्यवाद के सम्बन्ध मे कहते है– "चितन के क्षेत्र मे जो अद्वैतवाद है भावना के क्षेत्र मे वही रहस्यवाद है।"[2] शुक्ल जी की यह धारणा भारतीय अद्वैतवाद के निकट है। साहित्य मे भावना के रहस्योन्मुखी होकर आने को ही वे रहस्यवाद मानते है।

---

[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृष्ठ 692

[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ 195

प्रो आर० डी० रानाडे के अनुसार,''रहस्यवाद का अभिप्राय ईश्वररैक्य सुख का मौन उपभोग करना है।''[1] प्रो० रानाडे की धारण दर्शन के निकट है। साहित्य मे इसका प्रकटीकरण होता है।

महेन्द्रनाथ सरकार कहते है कि, ''सत्य समझे गये यर्थाथ की प्रत्यक्ष चेतना रहस्यवाद है।''[2] साहित्य मे इस प्रत्यक्ष चेतना की अभिव्यक्ति होती है।

डॉ० रामकुमार वर्मा के मतानुसार ''रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमे वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोडना चाहती है और यह सम्बन्ध यहॉ तक बढ जाता है कि दोनो मे कुछ भी अतर नही रह जाता।''[3] इनका मत अद्वैतवाद पर आधारित और सटीक है।

प्रोफेसर राधाकमल मुकर्जी ने अपने ग्रन्थ मिस्टीसिज्म थ्योरी एण्ड आर्ट'' मे कहा है कि –

''रहस्यवाद वह कला है जिसके द्वारा मनुष्य अपने अन्त समाधान (inner adjustment) के द्वारा सृष्टि को व्यष्टि रूप से पृथक–पृथक भागो मे नही समष्टि रूप से उसकी आतरिक एकता मे देखता है।''[4]

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन अपनी पुस्तक 'ईस्टर्न रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट' मे धर्म, अध्यात्म और रहस्यवाद के सम्बन्धो पर प्रकाश डालते हुए कहते है–

''प्रत्येक धर्म का इगित किन्ही बाह्य विधि–निषेधो और सान्त्वनाओ की पद्धति विशेष की ओर होता है, जबकि आध्यात्मिकता सर्वोच्च सत्ता को जानने, उससे तादाम्य स्थापित करने और जीवन के सर्वांगीण विकास की आवश्यकता की ओर सकेत करती है। आध्यात्मिकता धर्म और उसके अर्न्ततत्त्व का सार है और रहस्यवाद मे इसी पक्ष पर बल दिया गया है।''[5] डॉ० राधाकृष्णन् का यह मत रहस्यवाद अध्यात्म और धर्म की व्याख्या करता है। साथ ही साथ रहस्यवाद को धर्म से भी जोडता है।

---

[1] श्री द्वारिका प्रसाद मीतल हिन्दी साहित्य के वाद पृष्ठ 1
[2] डॉ० रामनारायण पाण्डेय भक्ति काव्य मे रहस्यवाद पृष्ठ 17
[3] डॉ० रामकुमार वर्मा कबीर का रहस्यवाद पृष्ठ 7
[4] डॉ० रामनारायण पाण्डेय भक्ति काव्य मे रहस्यवाद पृष्ठ 17
[5] डॉ० रामनारायण पाण्डेय भक्ति काव्य मे रहस्यवाद पृष्ठ 17

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन के समवर्ती दार्शनिक श्री अरविद अतिमानस की बात करते है। श्री अरविन्द, राधाकृष्णन और गॉधी की विवेचना के क्रम मे रामधारी सिह 'दिनकर' कहते है–

'जिस मानवीय विकास का अगला कदम अरविन्दअतिमानस की भूमि को मानते है, उसकी प्रक्रिया का अगला सोपान, राधाकृष्णन् के अनुसार, रहस्यवाद है। इस स्थल पर यदि गॉधी, अरविन्द और राधाकृष्णन् की तुलना करे तो गॉधी का मत यह होगा कि मनुष्य के आचार को सुधारो, जिससे वह विकास की दिशा मे आगे बढे। अरविन्द का उपदेश होगा कि मनुष्य को अति–मनुष्य मे रूपातरित करो। और राधाकृष्णन् कहेगे कि मनुष्य को शरीर के प्रलोभन से मुक्त करके आत्मा की ओर उन्मुख करो, उसे अपनी गहराइयो के साथ एकाकार होने दो।"[1]

वस्तुत गॉधी एक विचारक थे और सत्य के प्रवर्त्तक भी। सत्य की भूमि पर चलकर ही उस परम् सत्य को पाया जा सकता है। यही कारण है कि छायावादी तथा अन्य कवि गॉधी से सयम और नैतिकता ग्रहण करते है। श्री अरविन्द दार्शनिक और रहस्यवादी थे। पत के परवर्ती साहित्य पर उनका पर्याप्त प्रभाव दिखता है। राधाकृष्णन् का मत भारतीय दर्शन की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करता है और धर्म के निकट है। इससे छायावादी अशत प्रभावित थे। यद्यपि उनकी रहस्य दृष्टि धर्म विशेष से नही बॅधती।

रहस्यवाद की भारतीय परम्परा के विवेचन के क्रम मे सूफी सम्प्रदाय के साधको तथा कवियो के योगदान की भी अनदेखी नही की जा सकती। इस्लाम के प्रवर्त्तक हजरत मुहम्मद साहब मे रहस्यवादी साधना के सूत्र मिलते है। बसरा की महिला सत राबिया (दूसरी शती हिजरी) और सीरिया के सुलेमान अली दरानी मे क्रमबद्ध विकास दृष्टिगोचर होता है। ईरान के गाजी, हाफिज, जलालुद्दीन रूमी, जामी आदि कवि रहस्यवादी है। भारत मे सूफी मत तीन भागो मे विभक्त हुआ – 1 सुहरावर्दिया 2 चिश्तिया और 3 कादरिया सम्प्रदाय। सूफी साधना के भारत मे विस्तार के क्रम मे भारतीय रहस्य साधना के तत्त्वो का समावेश भी हो गया। सूफिया के अनुसार, "साधना मे अनेक सीढियॉ पार करनी होती है – प्रायश्चित, परिवर्जन, त्याग, दरिद्रता, धैर्य, ईश्वर मे विश्वास, ईश्वरेच्छा मे सतोष आदि। इनके उपरान्त आध्यत्मिक अनुभूति की भय, आशा, प्रेम, ध्यान और साक्षात्कार की दशाएँ आती है। सूफी

[1] रामधारी सिह दिनकर सस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 670

साधना मे दरिद्रता तप और पवित्रतायुक्त जीवन तथा सद्गुरू की कृपा अनिवार्य है।"[1] इनका रहस्यवाद साधनात्मक रहस्यवाद की श्रेणी मे आता है। ये प्राय ईश्वर की कल्पना सुन्दर नारी के रूप मे करते है। इनका यह मधुर भाव, रतिभाव के रूप मे छायावादी काव्य मे दृष्टिगोचर होता है।

सार रूप मे कहा जा सकता है कि भारतीय रहस्यवाद की अवधारणा मूलत अद्वैतवाद के सिद्धान्त पर आधारित है। परम् तत्त्व से एकाकार होने की स्थिति ही रहस्यवाद को जान लेना है। उस स्थिति की अभिव्यक्ति ही रहस्यवाद है। अपनी अन्त स्फुरित चेतना के द्वारा ही रहस् को जाना जा सकता है। उपनिषदो को रहस्यवाद का हृदय कहा जा सकता है। कालातर मे उसका विकास होता है। यह विकास नाथो, सिद्धो, भक्त, सत और सूफी कवियो मे लगातार परिलक्षित होता है। आधुनिक काल के रहस्यवादी कवि भी इनसे प्रभावित है। बगाल के देवेन्द्रनाथ ठाकुर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, रामकृष्ण परमहस, विवेकानन्द, अरविन्द आदि दार्शनिक विचारको के विचार तथा साहित्य से छायावादी कवि भी उर्जा ग्रहण करते है।

रहस्यवाद की पाश्चात्य अवधारणा

प्रकृति के क्रिया–कलापो को जानने की जिज्ञासा तथा इसको सचालित करने वाली शक्ति की खोज मनुष्य के विकास क्रम से ही प्रारम्भ होती है। यद्यपि इस बात पर पर्याप्त मतभेद है कि रहस्यवाद का जन्म सर्वप्रथम भारत मे हुआ या कही और? फिर भी, रहस्यवाद का प्रवर्त्तक भारत को ही मानना उचित होगा। पाश्चात्य के आदिम समाज मे रहस्यवाद का उत्कृष्ट रूप नही मिलता है। वे भूत–प्रेत तथा दैवी शक्तियो के अस्तित्व को मानते है। उनके अनुसार ये शक्तियॉ मनुष्य की चेतना पर अधिकार करके उसे शक्ति–सम्पन्न बना देती है। "मेलेसिअनो की माना और आइरोक्यूओ की ओरेण्डा नामक शक्तियॉ इसी प्रकार की है।"[2] जहॉ तक साधनो के द्वारा व्यक्ति को इन शक्तियो के सम्पर्क मे लाने और उनसे अपने को पूरित कर लेने का प्रश्न है, हम उसे आरम्भिक प्रकार का रहस्यवाद कह सकते है। इसी प्रकार साइबेरिया के शामानवादी समाजो मे ईष्ट देवता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए आदिम कर्मकाण्ड की

---

[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य काश भाग। पृष्ठ 693
[2] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य काश भाग। पृष्ठ 692

व्यवस्था है। वस्तुत आदिम समाज मे ओझा और तान्त्रिको के अस्तित्व की प्रबलता के चलते यह धारणा हुई। इसे शैशव कालीन या कर्मकाण्डी रहस्यवाद ही कहना उचित होगा।

प्राचीन यूनानी मूलत बौद्धिक ही थे। पर पाइथागोरस, अरस्तु, प्लेटो, प्लेटोनिस आदि ने अपनी बौद्धिक तेजस्विता के चलते रहस्यवाद को दार्शनिक पृष्ठाधार दिया। बाद के ईसाई सतो पर इनकी विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव पडा है।

ईसाई धर्म के प्रतिष्ठापक ईसा मसीह एक रहस्यवादी सत रहे है। "बाइबिल" मे रहस्यवादी सूत्र स्पष्ट रूप से मिलते है। ईसाई रहस्यवाद पर प्लेटोनिस और नव्य प्लेटोवादियो का प्रभाव दृष्टिगोचार होता है। डायोनिसस, एकहार्ट, होलर, सूसो, टेरेसा, दॉते, ब्लेक आदि की गणना प्रमुख ईसाई रहस्यवादियो मे होती है।

इन सबके अलावा चीन के लाओत्से के के सिद्धान्त एव जापान मे बौद्ध धर्म के सिद्धान्तो पर विकसित "जेन धर्म" आदि मे भी रहस्यवाद के पर्याप्त सूत्र बिखरे पडे है। चीन और जापान मे विकसित रहस्यवाद की भूत तथा वर्तमान परम्परा मे भारतीय रहस्यवाद से पर्याप्त प्रभाव तथा साम्य परिलक्षित होता है। प्रमुख पाश्चात्य रहस्यवादियो ने रहस्यवाद को निम्नवत् ढग से परिभाषित किया है–

डायोनिसस के अनुसार, "परमात्मा से आत्मा का अत्यन्त गुप्त वाग–विलास ही रहस्यवाद है।"[1] वे अभिव्यक्ति की आवश्यकता पर जोर नही देते है।

प्रिगल पेटीशन के मतानुसार, "रहस्यवाद की प्रतीति मानव–मस्तिष्क द्वारा अन्तिम सत्य के ग्रहण के प्रयास मे होती है। उस अन्तिम सत्य एव उच्चतम के साथ सीधे सम्बन्ध से उत्पन्न आनन्द का आस्वादन होता है। बुद्धि द्वारा चरम् सत्य को ग्रहण करना यह उसका दार्शनिक पक्ष है, ईश्वर के साथ मिलन का आनद उपभोग करना यह उसका धार्मिक पक्ष है। ईश्वर एक स्थूल पदार्थ न रहकर एक अनुभव हो जाता है।"[2] इनके अनुसार ईश्वर अनुभवजन्य है तथा वही अन्तिम सत्य है। इस अनुभव से आनन्द की प्रतीति होती है।

जारसन के कथनानुसार – "रहस्यवाद की अभिव्यक्ति उसी समय होती है, जब आत्मा प्रेम की अमूल्य निधि लिए हुए परमात्मा मे अपना विस्तार करती है। पवित्र और उमग भरे

---

[1] श्री द्वारिका प्रसाद मीतल हिन्दी साहित्य के वाद पृष्ठ 1

[2] डॉ० रामनारायण पाण्डेय भक्ति काव्य म रहस्यवाद पृष्ठ 25

प्रेम से परिचालित आत्मा का परमात्मा मे गमन ही रहस्यवाद कहलाता है।'[1] जारसन की यह व्याख्या रहस्यवाद का आधार जीवात्मा द्वारा परमात्मा को प्रेम की सार्थकता सिद्ध करती है।

एवलिन अण्डरहिल के अनुसार, 'रहस्यवाद भगवत् सत्ता के साथ एकता स्थापित करने की कला है। रहस्यवादी वह व्यक्ति है जिसने किसी न किसी सीमा तक इस एकता को प्राप्त कर लिया है अथवा जो इसमे विश्वास करता हे और जिसने इस एकता सिद्धि को अपना चरम् लक्ष्य बना लिया है।"[2]

जे० ए० विक्टर का कहना है कि,' रहस्यवाद एक परम सुन्दर और असीम सत्ता की आध्यात्मिक अनुभूति है जो व्यक्तित्वाभिमान का एक व्यापक विभूति मे पर्यवसन करके विनय का रूप देती है।"[3] इनका यह कथन रहस्यवाद को अनुभवजन्य मानता हुआ उसके व्यवहारिक पक्ष पर भी प्रकाश डालता है।

ई० केयर्ड ने धर्म के केन्द्रीभूत अनन्य रूप को रहस्यवाद माना है। "यह मानव मस्तिष्क की वह प्रवृत्ति है जिसमे आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध मे अन्य सभी सम्बन्ध अन्तर्हित हो जाते है।"[4]

विदेशी रहस्यवादी विद्वान स्पर्जियन "दार्शनिक, प्रकृतिमूलक, सौदर्यमूलक, प्रेममूलक तथा भक्ति परक"[5] आदि को रहस्यवाद का भेद बताते है। स्पर्जियन रहस्यवाद की सुस्पष्ट परिभाषा भी देते है। उनके अनुसार, "वास्तविक अर्थ मे रहस्यवादी वह है जिसको ज्ञात है कि समस्त अस्तित्व के केन्द्र मे स्थिति विषमता मे एकता है। वह रहस्यवादी ज्ञान तत्सम्बन्धी व्यक्ति के लिए सबसे अधिक पूर्ण प्रमाणो मे से एक है। क्योकि स्वय उसने उसका अनुभव किया है। सच्चा रहस्यवाद एक अनुभव है जीवन है। "इस प्रकार स्पर्जियन की यह धारणा अनेकता मे एकता की खोज बनकर रहस्यवाद को व्यवहारिक धरातल पर भी प्रतिष्ठित करती है।

अस्तु, यह कहा जा सकता है कि पाश्चात्य रहस्यवादी धारणा मूलत धर्म और दर्शन से विकसित होती है। वे बुद्धिवादी है। अत तर्क और बौद्धिकता पर रहस्यवाद को कसते

---

[1] श्री द्वारिका प्रसाद मीतल हिन्दी साहित्य क वाद पृष्ठ 1
[2] डॉ० रामनारायण पाण्डय भक्ति काव्य म रहस्यवाद पृष्ठ 12
[3] द्वारिका प्रसाद मीतल हिन्दी साहित्य के वाद पृष्ठ 2
[4] डॉ० रामनारायण पाण्डेय भक्ति काव्य मे रहस्यवाद पृष्ठ 10
[5] हिन्दी अनुशीलन सयुक्ताक मार्च–दिसम्बर 1999 पृष्ठ 9।

है। रहस्यवाद के विभिन्न रूपो–दार्शनिक, प्रकृतिमूलक, सौदर्यमूलक, प्रेममूलक, भक्तिपरक आदि की खण्डश व्यख्या उनके यहॉ दिखती है। उनके यहॉ साधनात्मक रहस्यवाद की न्यूनता है। वे रहस्यवाद की भावाभिव्यक्ति अपनी वैज्ञानिक सोच से करते है। उनकी प्रकृति तथा सौदर्य सम्बन्धी अवधारणाओ का प्रभाव रवीन्द्रनाथ ठाकुर मे काव्य पर पडता है। छायावादी कवि भी इससे न्यूनाधिक प्रभावित होते है। जिसके चलते रहस्यवाद की परम्परा मे पाश्चात्य रहस्यवादियो के प्रभाव को नकारा नही जा सकता है। रहस्यवाद को व्यवहारिक धरातल पर प्रतिष्ठित करने मे पाश्चात्य रहस्यवाद बेजोड है।

आधुनिक हिन्दी कविता मे रहस्यवाद –

पुनर्जागरण के पश्चात् की स्थिति को हिन्दी मे आधुनिक काव्य धारा की स्थिति से जोडकर देखा जा सकता है। पाश्चात्य और भारतीय सभ्यता तथा सस्कृति की टकराहट के फलस्वरूप यह स्थिति बनी। एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रणाली विकसित हुई। भारतेन्दु–काल मे धार्मिक सस्थाओ यथा–आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसॉफिकल सोसाइटी आदि के विचारो की छाप दिखती है। द्विवेदीयुगीन साहित्य सामाजिक एव राजनैतिक चेतना से सम्पन्न दिखता है। इन दोनो कालो के अधिकॉश कवियो ने ब्रज मे लिखना शुरू कर मानक हिन्दी को अपनाया। द्विवेदी युग मे भाषा का व्याकरणिक रूप तो स्थिर हो चला किन्तु काव्य भाषा के गठन की प्रक्रिया जारी थी। वस्तुत सस्कृति के सस्करण के क्रम मे बहुत से कवि अवतरित होते है। पर उस सास्कृतिक चेतना को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने का कार्य छायावादी कवि ही करते है। छायावादी कवियो के सामानातर ही अन्य कवि भी सक्रिय थे और इनका साहित्य भी अपेक्षाकृत अधिक है, किन्तु उनमे वह सूक्ष्मता नही मिलती जो छायावादी भावावेश मे हे।

भारतेन्दु और द्विवेदी कालीन कवियो मे रहस्यवाद के सम्बन्ध मे कुछ विशेष नही मिलता। भारतेन्दु कालीन भक्ति–साहित्य मे परम् तत्त्व की ओर इगित ही किया गया है। वस्तुत वे धार्मिक सस्थाओ से ही चेतना ग्रहण करते है। द्विवेदी युगीन काव्य को सामाजिक एव राजनैतिक चेतना से जोडकर देखा जा सकता है। यह नैतिकता से आबद्ध था। उपदेशात्मक

भाषा, सपाटबयानी विषय का स्थूल चित्रण ही इस काल मे दिखता है। यह स्थूलता उनके भक्ति सम्बन्धी साहित्य मे भी विद्यमान रहती है।

छायावाद के कुछ समय पूर्व ही मुकुटधर पाण्डेय, मैथली शरण गुप्त आदि के काव्य मे छायावाद की प्रवृत्तियॉ दिखने लगती है। परिष्कृत भाषा, कल्पना, चित्रमयता, गेयता आदि का स्वाभाविक विकास स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा मे विकसित होता है। जो उनकी प्रतीक शैली, अभिव्यजना प्रणाली, काव्य शैली आदि को व्यापक अर्थो मे व्याख्यायित करती है। कुछ रहस्यवादी कविताऍ भी मिलती है। इस विषय पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि, ''हिन्दी मे 'छायावाद' शब्द का जो व्यापक अर्थ रहस्यवादी रचनाओ के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओ के सम्बन्ध मे भी ग्रहण हुआ, वह इसी प्रतीक शैली के अर्थ मे।''[1] इसी आधार पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मैथलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय को छायावाद का जनक भी स्वीकार करते है।

मैथलीशरण गुप्त की 'नक्षत्र निपात' (1914 ई०), 'अनुरोध' (1915 ई०), 'पुष्पाजलि' (1917 ई०), 'स्वय आगत' (1918 ई०) एव मुकुटधर पाण्डेय की 'ऑसू'(1917 ई०), तथा 'द्वार' (1910 ई०) मे रहस्य–भावना निदर्शित होती हे। प० बदरीनारायण भट्ट तथा पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के 1915 ई० के आस–पास की कुछ कविताओ मे भी रहस्–सौन्दर्य के निदर्शन होते है। इस क्रम मे जयशकर प्रसाद का उल्लेख करना भी आवश्यक होगा। प्रसाद की सन् 1909 ई० से झरना (1918 ई०) के प्रकाशन की अवधि तक की कविताऍ लौकिकता से अलौकिकता की ओर अग्रसर दिखती है। मैथलीशरण गुप्त मे वैष्णव दर्शन की छाप दिखती है।वही मुकुटधर पाण्डेय ईश्वर से मिलन की बात करते है। द्रष्टव्य है एक उदाहरण –

''हुआ प्रकाश तमोमय मग मे,

मिला मुझे तू तत्क्षण जग मे,'[2]

वही प० बदरीनारायण भट्ट कहते है –

''दे रहा दीपक जलाकर फूल,

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 669

[2] डॉ० उदयभानु सिह (स०) छायावाद पृष्ठ 10

रोपी उज्जवल प्रभापताका अधकार हिय हूल।'[1]

सक्षेपत यह कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी कविता मे रहस्यवाद का बीज रूप मैथलीशरण गुप्त मुकुटधर पाण्डेय बदरीनाथ भट्ट पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि के काव्य मे विद्यमान है। रहस्यवादी कविता उनके यहॉ गौण रूप मे ही विद्यमान है। वस्तुत नवीन शैली दृष्टि आदि के विकास मे इनका अलग ही महत्त्व है। ये कविता को जीवन और जगत् के केन्द्र मे प्रतिष्ठित कर रहे थे। मूलत वे स्वच्छद मार्ग के अनुयायी थे। अपनी भक्ति–सम्बन्धी रचनाओ मे ये उपास्य को धर्म या क्षेत्र विशेष मे प्रतिष्ठित नही करते। जिसके चलते इनकी भक्ति–भावना सार्वभौमिकता की ओर उन्मुख है। भाषा का सजीव, मार्मिक तथा चित्रमय रूप दृष्टिगोचर होता है। रहस्यात्मक सकेत भी इनकी कविताओ मे परिलक्षित होता है। उनका यह क्रिया–व्यापार ससार के धरातल पर सम्पन्न होता है।

छायावादी रहस्यवाद –

छायावादी युग को पुनर्जागरण का अन्तिम सोपान कहा जा सकता है। विद्वानो ने इसे द्विवेदी युग के प्रति विद्रोह का भी काव्य कहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'द्वितीय उत्थान के विरूद्ध'[2] और डॉ० नगेन्द्र ने इसे द्विवेदी युग की स्थूल चेतना के प्रति विद्रोह'[3] का काव्य माना। वस्तुत पुर्नजागरण के अन्तिम उत्थान एव द्विवेदीयुगीन काव्यधारा के विरोध का काव्य पर लगभग आम सहमति है। इसी प्रकार छायावाद को रहस्यवाद का पर्याय या प्रवृत्ति विशेष मानने की भी बात चली। शुक्ल जी छायावाद को रहस्यवाद और काव्य शैली के रूप मे लेते हुए काव्य शैली की व्याख्या करते है , यथा –

''इसमे भावावेश की आकुल व्यजना, लाक्षणिक वैचित्र्य, मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण, भाषा की वक्रता, विरोध का चमत्कार कोमल पद विन्यास आदि काव्य का स्वरूप सघटित करने वाली प्रचुर सामग्री दिखाई पडी।''[4] स्पष्टत शुक्ल जी ने छायावाद का दोहरे अर्थ मे लिया है।

आचार्य नददुलारे बाजपेयी भी कुछ इसी प्रकार कहते है–

---

[1] डॉ० उदयभानु सिह (स०) छायावाद पृष्ठ 10

[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 647

[3] डॉ० नगेन्द्र सुमित्रानदन पत पृष्ठ 2

[4] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 655

"हमारी नई कविता छायावाद या रहस्यवाद कहलाती है। आधुनिक काव्य की शैली छायात्मक या रहस्यात्मक है किन्तु इसमे सामयिक प्रेरणाएँ, विचारधाराएँ और प्रगतियाँ भी कम मात्रा मे नही।"[1] निश्चय ही वे छायावाद को रहस्यवाद से भिन्न नही देखते। साथ ही साथ अन्य प्रवृत्तियो की सत्ता भी स्वीकारते है।

श्री मुकुटधर पाण्डेय ने 'श्री शारदा' सितबर 1920 अक मे छपे 'हिन्दी मे छायावाद' निबन्ध मे लिखा है –

"छायावाद के कवि भाषा के प्रयोग करने मे कुशल होते है। वे अपनी कविता के लिए विषय–वस्तु बडी दूर से ढूँढकर लाते है। उनकी कविता देवी की ऑखे सदैव ऊपर की ओर उठी रहती है। मृत्यु–लोक से उसका बहुत कम सम्बन्ध रहता है। यही छायावाद से आध्यात्मिकता तथा धर्म भावुकता का मेल होता है।"[2]

यहॉ वे नवीन पद्धति की चर्चा करते हुए छायावाद मे आध्यात्मिकता के सम्मिलन की बात करते है।

आचार्य विनय मोहन शर्मा का कथन है–

"छायावाद को मै स्वानुभूति लाक्षणिक अभिव्यक्ति मानता हूँ। अनुभूति लौकिक अलौकिक दोनो हो सकती है।"[3]

कतिपय आलोचक छायावाद की मूल वृत्ति स्वच्छन्दतावाद को स्वीकार करते है। उनके केन्द्र मे निराला है। निराला के अनुसार "भावो की मुक्ति छन्द की भी मुक्ति चाहती है। यहॉ भाषा भाव तथा छन्द तीनो स्वतत्र है।"[4] वस्तुत निराला की यह परिभाषा उनके विद्रोही चेतना के क्रम मे है। वे समस्त रूढियो का खण्डन करते चलते है।

श्री जयशकर प्रसाद छायावाद का अर्थ मोती के भीतर की तरलता से मानते हुए, "ध्वन्यात्मक, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक–विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति को छायावाद की विशेषता स्वीकार करते है।"[5]

---

[1] आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी आधुनिक साहित्य पृष्ठ 304-305
[2] हरिकृष्ण त्रिपाठी आजकल/फरवरी 1990 पृष्ठ 26
[3] आचार्य विनयमोह शर्मा अवन्तिका/जनवरी 1954
[4] श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला प्रबन्ध प्रतिमा पृष्ठ 270
[5] श्री जयशकर प्रसाद काव्य कला तथा अन्य निबध पृष्ठ 149

सुमित्रानदन पत ने इसे कवीन्द्र रवीन्द्र से प्रेरित राग वृत्ति के विकास की प्रक्रिया अन्त स्वर का प्रस्फुटन आदि से जोडते हुए उसके शैली पर विचार करते हुए कहा है –

''इसीलिए वह एक ओर निगूढ, रहस्यात्मक, भाव–प्रधान (सब्जेक्टिव) और वैयक्तिक हो गया, दूसरी ओर केवल टेकनीक और आवरण मात्र रह गया।[1]

महादेवी वर्मा इस सम्बन्ध मे कुछ दूसरे ढग से कहती है–

'मनुष्य का जीवन चक्रवात घूमता रहता है। स्वच्छन्द घूमते–घूमते थककर वह अपने लिए सहस्त्र बन्धनो का अविष्कार कर डालता है और फिर बन्धनो से उबकर उसको तोडने मे अपनी सारी शक्तियॉ लगा देता है। छायावाद के जन्म का मूल कारण भी मनुष्य के इसी स्वभाव मे छिपा हुआ है। स्वच्छन्द छन्द मे चित्रित उन मानव अनुभूतियो का नाम छाया उपयुक्त ही था और मुझे आज भी उपयुक्त ही लगता है।''[2] महादेवी की रहस्यवादी अवधारणा भी पूर्व की रहस्यवादी अवधारणाओ से अलग दिखती है।

उपरोक्त विवेचन के क्रम मे यह कहा जा सकता है कि छायावाद और रहस्यवाद एक दूसरे के पर्याय नही है। इसकी शैली रहस्यात्मक है। जिसके चलते इसे रहस्यवाद का पर्याय समझा गया। छायावादी काव्य मे रहस्यवाद, अध्यात्मवाद, मानववाद, मानवतावाद, स्वच्छदतावाद, राष्ट्रीयता की भावना आदि प्रवृत्तियॉ दृष्टिगोचर होती है। रहस्यवाद को छायावाद की एक सशक्त धारा स्वीकार करना उचित होगा। इनके रहस्यवादी काव्य मे धर्म, दर्शन और अध्यात्म का सहज समन्वय हो जाता है। अपनी नवीनता के चलते 'छायावादी रहस्यवाद' रहस्यवादी काव्य की पुरातन प्रवृत्तियो से अलग हो जाता है।

आचार्य शुक्ल ने 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका मे लिखा है –

''अद्वैतवाद मूल मे एक दार्शनिक सिद्धान्त है, कवि कल्पना या भावना नही है। वह मनुष्य के बुद्धि प्रयास या तत्त्वचितन का फल है। वह ज्ञान क्षेत्र की वस्तु है। जब उसका आधार लेकर कल्पना या भावना उठ खडी होती है, अर्थात जब उसका सचार भाव क्षेत्र मे होता है तब उच्चकोटि के भावात्मक और साधनात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। हमारे यहॉ योगमार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है।''[3]

---

[1] सुमित्रा नन्दन पत गद्यपथ पृष्ठ 56
[2] महादेवी वर्मा यामा पृष्ठ 56
[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सपा०) जायसी ग्रन्थावली पृष्ठ 118

अपनी साधनात्मक बहुलता के चलते सूफियो के रहस्यवाद को भी साधनात्मक मानना पडेगा। विश्वम्भर 'मानव' के अनुसार 'हिन्दी साहित्य मे सतो और सूफियो का रहस्यवाद साधनात्मक रहस्यवाद है, आधुनिक कवियो जैसे प्रसाद, पत, निराला, महादेवी का भावनात्मक।"[1] एक दार्शनिक तटस्थ होकर सत्य का विवेचन करता है वही अध्यात्मवादी उस सत्ता के प्रति श्रद्धाभाव ही रखता है। पर रहस्यवादी निश्चित रूप से ब्रह्म का प्रेमी होता है। छायावादी कवि भी अपने प्रिय का साक्षात्कार तीव्र अनुभूति के साथ करते है। प्रेयसी या प्रेमी पर ईश्वरत्व का आरोपण ईश्वर और जीव की प्रेमाभिव्यजना ही है। हृदय से उद्भूत यह अभिव्यक्ति रागमय ही है। आत्मा और परमात्मा की प्रणयानुभूति समस्त छायावादी काव्य मे अपने अलौकिक रूप मे विद्यमान है। कही–कही यह लौकिक अनुभूति भी है। मध्ययुगीन रहस्यवादियो की तरह ये अपनी सत्ता मिटाते नही है, बल्कि साक्षात्कार करते है– अपने को परम तत्त्व का अश मानते हुए। प्रस्तुत है छायावादी कवियो के रहस्यवाद का सक्षिप्त अवलोकन–

जयशकर प्रसाद–

जयशकर प्रसाद रहस्यवाद की भारतीय परम्परा को ही मानते है। औपनिषदिक साहित्य के आधार पर वे आगे बढते है। वे छायावाद को "वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति"[2] सबोधन देते है। यह वेदना ही आगे चलकर लौकिकता से अलौकिकता की ओ उन्मुख होती है। झरना (1918 ई०) के प्रकाशन के पूर्व तक जयशकर प्रसाद लौकिक अभिव्यक्ति ही करते है। कही–कही रहस्यात्मक सकेत मिलते है। 'झरना' मे भी कवि ने लौकिक प्रेम का आलम्बन लिया है किन्तु आध्यात्मिकता का रग दिखने लगा है। 'ऑसू' और 'लहर' मे भी यह स्थिति बनी रहती है। 'ऑसू' मे कवि की वेदना, विश्व वेदना मे परिवर्तित हो जाती है। 'लहर' मे कवि कहता है–

'सतत् व्याकुलता के विश्राम अरे ऋषियो के कानन कुज।"[3]

यह स्थिति अध्यात्मोन्मुख होने की स्थिति है। आस्था के स्वर दृढ होते है और वे पूर्णत समर्पित होकर कह उठते है–

---

[1] विश्वम्भर 'मानव सुमित्रा नदन पत पृष्ठ 115

[2] जयशकर प्रसाद काव्य कला तथा अन्य निबध पृष्ठ 143

[3] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ 340

''ले चल मुझे भुलावा देकर,

मेरे नाविक! धीरे–धीरे। [1]

प्रसाद रहस्य के प्रति औत्सुक्य भाव रखते हुए कहते है–

''वेदना विकल यह चेतन,

जड का पीडा से नर्तन,

लय–सीमा मे यह कम्पन,

अभिनयमय है परिवर्तन

चल रहा यही कब से कुढग।''[2]

उनकी जडता पीडा का कारण बनती है। मायावी ससार के छलाव पर उनकी चेतन, वेदना प्रकट करती है। इसे शकर के मायावाद से जोडकर देखा जा सकता है।

परमात्मा से मिलन के पश्चात् की स्थिति विरहजन्य होती है और ऑसू का कवि कह उठता है–

''छिप गयी कहॉ छूकर वे

मलयज की मृदुल हिलोरे।''[3]

वस्तुत प्रसाद का रहस्यवाद कामायनी मे पूर्णरूप से परिलक्षित होता है। कामायनीकार कश्मीरी शैव दर्शन की शाखा 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' से प्रभावित है। 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के सोपान –अभेदवाद, आभासवाद, स्वातन्त्र्यवाद, समरसतावाद और आनदवाद से प्रसाद के रहस्यवाद को देखा जा सकता है।

प्रारम्भ मे वे अभेद की और आभास् की स्थिति से निकलते है। पूरे सृष्टि को ब्रह्म की प्रतिमूर्ति मानते हुए अपनी स्वतन्त्र स्थिति का भी भान रखते है। तत्पश्चात् इच्छा, ज्ञान

---

[1] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ 16

[2] लहर 373

[3] लहर 373

और क्रिया का सामजस्य अनुभव करते हुए समरस हो जाते है। कामायनी के अत मे वे कहते है–

"समरस थे जड या चेतन
सुदर साकार बना था,
चेतना एक विलसती
आनद अखड घना था।"[1]

प्रसाद सृष्टि का मूलाधार आनद को मानते हुए आनद मे लीन हो जाना चाहते है। भाव, कर्म और ज्ञान लोक मे सामजस्य के पश्चात् यह स्थिति आती है।

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि प्रसाद का रहस्यवाद उपनिषदो के अद्वैतवाद और प्रत्यभिज्ञा दर्शन के विकास की नई कडी है। प्राचीन से अलग इन अर्थों मे कि समस्त छायावादियो की भॉति वह भी पूरी सृष्टि को परम् तत्त्व का प्रतिबिब मानते है। अपनी स्वतन्त्र चेतना के द्वारा उसका साक्षात्कार करते है। राग, प्रेम, सौन्दर्य, करुणा इत्यादि उनके काव्य का आधार बनते है। रहस्यवाद का व्यवहारिक पक्ष भी उनमे दिखता है। दर्शन उनकी कविता मे घुल–मिल गया है। मूलत उनका रहस्यवाद 'भावात्मक ही है। पर साधनात्मक रहस्यवाद जो अन्य छायावादियो मे नगण्य है– प्रसाद मे थोडा बहुत मिलता है। इन सब विशेषताओ के चलते प्रसाद का मूल्याकन वैश्विक परिप्रेक्ष्य मे भी होता है।

सुमित्रानदन पत

सुमित्रानदन पत शुरुआती दौर मे छायावादी काव्य की रहस्यवादी धारा से विमुख रहते है। पर अपने सौन्दर्य के प्रति आसक्ति के क्रम मे वे सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद की सर्जना करते है। वे कहते है–

"है स्वर्ण नीड मेरा भी जग उपवन मे"[2]

उनका रहस्यवाद ससार की सत्ता पर विकसित होता है। पत को प्रकृति तथा सुकुमार भावनाओ का कवि भी कहा जाता है। तीव्र भावावेश उनके प्रारम्भ की कविताओ मे दिखता है। शनै शनै वे गभीर और दर्शन के निकट होते जाते है। वे मनुष्य को सुसस्कृति

---

[1] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ 704
[2] सुमित्रानदन पत पत ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ 110

बनाने के क्रम मे रागात्मक प्रवृत्ति के विकास की बात करते है जो राग सम्बन्धी 'आदोलन से सम्भव है। आगे वे कहते है–

'इस वृत्ति के विकास से मनुष्य अपने देवत्व के समीप पहॅच जायेगा और ससार मे नर–नारी सम्बन्धी रागात्मक मान्यताओ मे प्रकारान्तर हो जायेगा।"[1]

इसी वृत्ति पर पत का रहस्यवाद विकसित होता है। उनके परवर्ती काव्य मे उनकी यह परिकल्पना साकार होती है। द्रटव्य है कुछ उदाहरण –

"नव खिलती कलियो से
जो सौन्दर्य झॉकता–
वही तत्वत शास्वत।

पत इस शास्वत सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासु भी होते है–

"विपिन रहस्यो की आख्यान,
गूढ बात है कुछ कल मल।"[2]

ये अखड सौन्दर्य के आग्रही है तथा विश्व प्रकृति मे शास्वत जीवन के रहस्य को खोजते है–

"स्वत ग्रहण कर अजर अनामय विश्व प्रकृति से,
जिसमे अन्तर्हित रहस्य शास्वत जीवन का।'[3]

वस्तुत पत का रहस्यवाद भावात्मक ही है। उनके अनुसार "भौतिक विज्ञान के विकास के कारण भू–रचना के जिस भावात्मक दर्शन का इस युग मे आविर्भाव हुआ है। उसे युग दर्शन का एक मुख्य स्तम्भ माना है।"[4]

सक्षेप मे कहा जा सकता है कि पत सनातन सत्य को व्यक्त कर रहे होते है। कवीन्द्र रवीन्द्र से अनुप्रेरित और पाश्चात्य सौदर्य से प्रभावित पत 'सत्य–शिव–सुन्दरम्' का उद्घोष करने लगते है। औपनिषदिक और मध्ययुगीन रहस्यवाद की दुर्बोधता इनमे नही है। अरविद दर्शन से प्रभावित होकर वे स्वर्गिक रूपातरण की बात कहते है। इन्होने जीवन को दर्शन से जोडकर देखने का प्रयत्न अपनी परवर्ती कृतियो मे किया है। इस प्रकार पत का

---

[1] उपरिवत् पत ग्रन्थावली खण्ड 7 पृष्ठ 141
[2] सुमित्रानदन पत पत ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ 212
[3] उपरिवत् पत ग्रन्थावली खण्ड 7 पृष्ठ 318
[4] उपरिवत् पत ग्रन्थावली खण्ड 2 पृष्ठ 79

रहस्यवाद भावात्मक ही रहता है। कही कही दार्शनिक आधार भी लेता है। परम तत्त्व का साक्षात्कार पत सौदर्य के माध्यम से करते है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला के अनुसार "रहस्य तब तक रहस्य है जब तक अच्छी तरह समझ मे न आ जाये। रहस्य जो कबीर ने लिखा है, साधारण जनो के लिए जो अध्यात्म तत्व नही समझते रहस्य है, पर कबीर की दृष्टि मे वह रहस्य न था, साधारण सत्य था। इन्द्रजाल उन्ही के लिए इन्द्रजाल है, जो इन्द्रजाल नही जानते, जानने वालो के लिए साधारण सत्य है।"[1] ऐसा उन्होने कबीर की कविता के विवेचन के क्रम मे कहा है। इसी क्रम मे वे अध्यात्म की भी व्याख्या करते है। वे कहते है–

"आध्यात्मिकता के माने ही है लघु से लघुतर होना– जडत्व से वर्जित होना। कला और कौशल के लिए यह पहली बात है कि गति अत्यन्त लघु, ललित और उचित शक्ति से भरी हो।"[2]

निश्चित तौर पर निराला रहस्य और अध्यात्म की नवीन सदर्भो मे पुर्नव्याख्या कर रहे होते है। उनके रहस्यवाद के क्रम मे जीवन अपरिहार्य तत्त्व है। निराला रामकृष्ण परमहस और विवेकानद से प्रभावित रहे है। अत उनके रहस्यवाद मे अद्वैतवाद और वेदात दर्शन का क्रमिक विकास परिलक्षित होता है। आचार्य नददुलारे बाजपेयी 'गीतिका' की समीक्षा मे कहते है कि "निराला मे पूर्ण मानवोचित सहृदयता और तन्मयता के साथ उच्च कोटि का दार्शनिक अनुबध है।"[3] अपने इन सब गुणो के चलते उन्हे 'दार्शनिक रहस्यवादी' की श्रेणी मे रक्खा जा सकता है। प्रस्तुत है निराला की रहस्य सम्बन्धी कविताओ के कुछ उदाहरण –

पचवटी प्रसग मे निराला के राम कहते है–

"व्यष्टि और समष्टि मे नही हे भेद,

---

[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला प्रबन्ध प्रतिमा पृष्ठ 168
[2] उपरिवत चाबुक पृष्ठ 68
[3] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला गीतिका पृष्ठ 19

भेद उपजाता भ्रम

माया जिसे कहते है

जिस प्रकाश के बल से

सौर ब्रह्माण्ड को उद्भासन देखते हो

उससे नही वञ्चित है एक भी मनुष्य भाई।''[1]

निराला यहॉ द्वैत और अद्वैत की बात कर रहे है। माया के आवरण के चलते हम व्यष्टि और समष्टि के भेद को नही समझ पाते। इसी कविता मे वे मनुष्य ही क्या पूरे ब्रह्माण्ड को उस परम् तत्त्व के प्रकाश का उद्भासन मानते है। आगे वे कहते है–

''व्यष्टि और समष्टि मे समाया वही एक रूप

चिद्घन आनन्द – कन्द।[2]

अपनी 'जागो फिर एक बार' शीर्षक कविता मे 'ब्रह्म हो तुम'[3] कहकर 'अह ब्रह्मास्मि' का उद्घोष ही करते है। 'बुद्ध के प्रति', 'तुम और मै, 'राम की शक्ति पूजा' आदि कविताओ मे उनकी रहस्य–भावना परिलक्षित होती है।

सक्षेपत यह कहा जा सकता है कि निराला का रहस्यवाद दार्शनिक रहस्यवाद की श्रेणी मे रखा जा सकता है। वे 'अह ब्रह्मास्मि' का उद्घोष करते है। वेदात के अद्वैतवाद को नये ढग से परिभाषित भी करते है। जीव को वे परमात्मा से पृथक नही मानते। उन्हे अपनी सत्ता का भान रहता है। मुक्ति और शक्ति की कामना का सुन्दर निदर्शन उनके काव्य मे सृजित होता है। अन्य छायावादी रहस्यवादी कवि की भॉति वे भावात्मक रहस्यवाद को ही प्रतिष्ठित करते है। वे सत्य, शिव सुन्दरम् के भी आग्रही है। ओज गुण का सौन्दर्य उनमे दिखता है और पूरी प्रकृति को वे परम् तत्त्व के प्रकाश से उद्भासित मानते है।

महादेवी की कविता मे रहस्यवाद

भावना जब रहस्योन्मुखी होकर साहित्य मे आती हे तब 'रहस्यवादी कविता' का जन्म होता है। महादेवी जी का चितन आध्यात्मिक ही है। जिससे उनकी कविता मे रहस्यवाद

---

[1] डॉ० नद किशोर नवल'(स०) निराला रचनावली भाग 1 पृष्ठ 46

[2] डॉ० नद किशोर नवल'(स०) निराला रचनावली भाग 1 पृष्ठ 46

[3] डॉ० नद किशोर नवल (स०) निराला रचनावली भाग 1 पृष्ठ 143

स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है। दर्शन तर्क का विषय है और काव्य हृदय का। काव्य दर्शन को हृदय के विषय मे रूपातरित करता है। यही कारण है कि दर्शन की अभिव्यक्ति काव्य मे सर्वश्रेष्ठ ढग से सम्भव है। वेदो, उपनिषदो से लेकर आज तक रहस्यवादी अभिव्यक्ति कविता मे ज्यादा उचित ढग से हुई है। अपनी रागात्मक चेतना के चलते सारा काव्य गेयता लिए रहता है। इसी के चलते विशुद्ध ज्ञानमार्गी साधको ने भी रहस्यवाद की अभिव्यक्ति पद्य मे ही की है। महादेवी के रहस्यवाद मे साधना के बिन्दु कम ही मिलते है। उनका रहस्यवाद भावात्मक श्रेणी का ही है।एक तरफ अद्वैतवाद की परम्परा को वे आगे बढाती है, दूसरी तरफ बौद्ध धर्म, पुनर्जागरण के प्रतिनिधियो तक से वे उत्प्रेरित होती है। रामकृष्ण परमहस और स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक विचारो तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर के साहित्य का पर्याप्त प्रभाव छायावादियो पर पडता है। महादेवी जी भी इसकी अपवाद नही है।

परम तत्त्व के झलक या साक्षात्कार के पश्चात् उससे मिलने की उत्कठा जीव को होती है। वह श्रद्धा और प्रेम भाव से समर्पित होकर विरह तथा मिलन की अनुभूति और अभिव्यक्ति करने लगता है। अनुभूति अनत प्रेम के तीव्रता की आग्रही होती है। अतएव उसके प्रकटीकरण के लिए व्यक्त या अव्यक्त प्रतीको की आवश्यकता पडती है।" ऋग्वेद की एक ऋचा इस प्रकार है 'योषा जारमिव प्रियम्' इसका आशय यही है कि ईश्वर के प्रति मानव के प्रेम का आवेग परकीया की उपपति के समान होना चाहिए। स्त्री–पुरुष के इसी आर्कषण को साहित्य मे रति भाव और साधना मे मधुर भाव कहते है। रहस्यवादी कवि इसी मधुर भाव का आश्रय स्वीकार करता है। दो, का एक, मे लय होने की क्रम – व्यवस्था मे ही इस भाव के आनद की मूल प्रेरणा निहित है, क्योकि प्रेम का प्रधान लक्षण एकाधिपत्य की कामना है (शासको की नही है साधको की) उपासनात्मक प्रेम की यही पराकाष्ठा और सर्वात्म सुमपर्ण की पूर्णतम अभिव्यक्ति इसी भाव मे सभव है।"[1] प्रेम की उच्चता और पूर्णता के बल पर ही रहस्यानुभूति सभव है। अत सभी रहस्यवादी कवि प्रेम की सत्ता स्वीकार करते है। इसी के चलते रहस्यवादी कवियो ने लौकिक प्रणयोद्गार का माध्यम ग्रहण किया। जिसके कारण बुद्धिगम्य विषय भाव–गम्य बना। महादेवी ने भी अपने काव्य मे रहस्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए 'रति भाव' अर्थात प्रणय व्यापार का आश्रय लिया है। अपनी इसी मधुरता के आरोपण के बारे मे वे कहती है–

---

[1] गगा प्रसाद पाण्डेय महीयसी महादेवी पृष्ठ 211-12

''मानवीय सम्बन्धो मे जब तक अनुराग जनित आत्म विसर्जन का भाव नही घुल जाता तब तक वे सरस नही हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नही हो जाती तब तक हृदय का अभाव दूर नही होता। इसी से इस अनेकरूपता (प्रकृति की अनेकरूपता) के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्म–निवेदन कर देना, इस काव्य का दूसरा सोपान बना, जिसे रहस्यमय रूप के कारण रहस्यवाद का नाम दिया गया है।''[1]

महादेवी जी ने अपने काव्य मे द्वैत तथा अद्वैत दोनो स्थितियो को स्वीकार किया है। उनके अनुसार, 'रहस्य भावना के लिए द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी, क्योकि एक के अभाव मे विरह की अनुभूति असम्भव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा अधिकार खो देती है।''[2] उनकी कविताओ मे विरह, क्षणिक मिलन और मिलन की इच्छा अभिव्यक्ति पाती है। करुण–भाव की बहुलता के चलते मानव कल्याण की कामना भी उनके साहित्य मे निदर्शित होता है। परमात्मा की झलक के पश्चात् समर्पण का भाव जगता है और वे चिर मिलन की अभिव्यक्ति कर उठती है–

''तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेगे नव खेल निरन्तर,
तम के अणु–अणु मे विद्युत सा–
अमिट चित्र अकित करता चल।
सजल–सजल मेरे दीपक – जल।''[3]

महादेवी अपनी अभिव्यक्ति को करुणा के माध्यम से भी व्यक्त करती है। उनका यह करुणा भाव सर्वत्र दिखाई पडता है–

''मिट–मिट कर हर सॉस लिख रही शत–शत मिलन–विरह की लेखा,
निज को खोकर निमिष ऑकते अनदेखे चरणो की रेखा।
पल भर का वह स्वप्न तुम्हारी युग–युग की पहचान बन गया।[4]

---

[1] महादेवी वर्मा साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ 94
[2] उपरिवत् पृष्ठ 106
[3] उपरिवत् सन्धिनी पृष्ठ 84
[4] उपरिवत् सन्धिनी पृष्ठ 147

उनका रहस्यवादी जीवन करुणा से उत्प्रेरित है। वे निज को खोकर, अज्ञात की झलक पाकर उससे मिलने की इच्छा करती है। उन की हर सॉस विरह को समर्पित है। महादेवी अपने आत्मिक सौन्दर्य का प्रदर्शन भी करती है। उन्हे अपनी लघुता का भान भी है–

'उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।''[1]

यहॉ आत्मा की लघुता और परमात्मा के महत्त्व का आभास भी मिलता है। वे उसके सौन्दर्य से भी प्रभावित है। अत यहॉ सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद की स्वत सृष्टि हो जाती है।

महादेवी के काव्य मे रहस्यवाद का क्रमिक और सशक्त विकास मिलता है। औत्सुक्य, प्रणयानुभूति, विरह तथा मिलन की स्थिति द्वैत तथा अद्वैत उनके काव्य मे चरमोत्कर्ष रूप मे प्रतिफलित होते है। रहस्यवाद के विभिन्न सोपानो का सुन्दर निदर्शन उनके काव्य मे होता है। प्रस्तुत है एक क्रमवार विश्लेषण –

औत्सुक्य की भावना से रहस्य–चितन का जन्म होता है। यह गुण अन्तर्मुखी और भावुक व्यक्ति के हृदय मे विशेष रूप से मिलता है। प्रारम्भ से लेकर अब तक के रहस्यवादियो मे यह भावना पाई जाती है। महादेवी जी भी इससे अछूती नही है। अभिव्यक्ति मे अन्तर अवश्य है। वे उत्सुक होकर कहती है–

''शून्यता मे निद्रा की बन,
उमड आते ज्यो स्वप्निल घन,
पूर्णता कलिका की सुकुमार,
छलक मधु मे होती साकार,
हुआ त्यो सूनेपन का भान,
प्रथम किसके उर मे अम्लान?
और किस शिल्पी ने अनजान,
विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण? '[2]

प्रथम चरण मे महादेवी जिज्ञासा की स्थिति की मार्मिक अभिव्यजना करती है। दूसरे चरण मे परमात्मा को जानने की जिज्ञासा तथा उसके द्वारा रहस्यो को जानने की उत्सुकता विद्यमान है। इसी क्रम मे वे 'विश्व प्रतिमा' की भी बात करती है। रवीन्द्रनाथ टैगोर

---

[1] उपरिवत् नीरजा पृष्ठ 101
[2] उपरिवत् सन्धिनी पृष्ठ 50

के अनुसार 'विश्व की भी एक आत्मा है।[1] तात्पर्य यह है कि ब्रह्म का साक्षात्कार करने वालो की भॉति महादेवी भी जिज्ञासु होती है। साथ ही साथ विश्व प्रतिमा का निर्माण की बात कहकर सार्वभौमिक होने का सकेत भी करती है।

महादेवी जी मे परम् तत्त्व के प्रति औत्सुक्य ओर कुतूहल मिश्रित भावना देखने को मिलती है। वे अज्ञात प्रिय की अनुभूति और अभिव्यक्ति प्राय मधुर भाव और प्रकृति सौन्दर्य का आलम्बन लेकर करती है। कवयित्री प्रिय के आने के सकेत मात्र से सिहर उठती है –

"पुलक पुलक कर, सिहर सिहर तन

आज नयन आते क्यो भर–भर?[2]

उनकी यह कुतूहल मिश्रित जिज्ञासा प्रिय से प्रेम करने लगती है और प्रणय भावना का कारण बनती है।

महादेवी रहस्यवाद की सृष्टि प्रणय–व्यापार के धरातल पर सम्पन्न करती है। विश्वम्भर 'मानव' के अनुसार "आत्मा और ब्रह्म की पारस्परिक प्रणयानुभूति को रहस्यवाद कहते है।"[3] महादेवी भी इसी रति भाव का आश्रय लेती है। वे अपनी सत्ता को सूफियो की भॉति मिटाती नही है। उनका द्वैत भाव सदा विद्यमान रहता है। आमतौर पर रहस्यवाद का आरम्भ विरह से सम्पन्न होता है। तत्पश्चात मिलन की स्थिति के उपरान्त वे अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते है। ब्रह्म से एकाकार होने की अनुभूति भी उनके काव्य मे अभिव्यक्ति पाती है। पर महादेवी के रहस्यवाद की सृष्टि सयोग से ही प्रारम्भ होती है। कबीर, जायसी आदि कवियो ने अपनी रहस्यानुभूति को प्रणय–भावना का आधार लेकर व्यक्त किया है। महादेवी की अनुभूति मे प्रकृति मादकता भरती है–

"गा तेरे ही पचम स्वर से

कुसुमित हो यह डाली–डाली।

जग ओ मुरली की मतवाली।[4]

यहॉ पर महादेवी प्रकृति का आश्रय लेकर परम् तत्त्व पर मुग्ध है। मधुमय वातावरण मे अज्ञात प्रिय जीवन मे प्रेम का प्रथम सदेश लेकर आता है।

झटक जाता था पागल बात

---

[1] रवीन्द्रनाथ टैगोर पर्सनालिटी पृष्ठ 19

[2] उपरिवत् सन्धिनी पृष्ठ 75

[3] विश्वम्भर 'मानव' महादेवी की रहस्य साधना

[4] महादेवी वर्मा नीरजा पृष्ठ 50

धूल मे तुहिन कणो के हार,

सिखाने जीवन का सगीत

तभी तुम आये थे इस पार।[1]

इसी प्रथम सगीत को सुनकर मिलने की उत्कठा प्रबल हो जाती है। प्रेम का यह अकुरण महादेवी को सासारिकता से विमुख करके आध्यात्मिकता के क्षेत्र मे प्रतिष्ठित करता है। परम् तत्त्व करुणा के सागर है और उनकी भूलो पर भी प्रेम प्रदर्शित करते है–

''भूलती थी मै सीखे राग

बिछलते थे कर बारम्बार,

तुम्हे तब आता था करुणेश?

उन्ही मेरी भूलो पर प्यार।''[2]

इस स्वप्न मिलन, प्रेम प्रदर्शन आदि मे आध्यात्मिकता का निदर्शन होता है। महादेवी मिलन बेला मे भी मृत्यु की आग्रही है–

''मेरे जीवन की जागृति,

देखो फिर भूल न जाना,

जो वे सपना बन आये

तुम चिर निद्रा बन जाना।''[3]

आशय यह है कि मिलन की स्थिति मे वे एकाकार की स्थिति चाहती है। जागृति या जीवन की स्थिति उसके साथ प्रणय–भावना प्रदर्शित करती है। इस प्राकर महादेवी की प्रणयानुभूति उच्च कोटि की सिद्ध होती है।

विरह–मिलन की स्थिति की अभिव्यक्ति उनके काव्य मे प्रचुर मात्रा मे मिलती है। चूँकि उनकी रहस्य भावना सयोग (मिलन) से प्रारम्भ होती है। अत उनकी विरह की स्थिति को प्रियतम के झलक के पश्चात् की स्थिति से जोडकर देखा जा सकता है। विरहानुभूति ही अभीष्ट को प्राप्त करने की ओर ले जाती है। डॉ० राधाकृष्णन के अनुसार, ''मानवीय प्रतिष्ठा की अनुभूति के लिए आत्मा की मर्मान्तक पीडा अत्यन्त आवश्यक है।''[4] महादेवी की वेदनाभूति

---

[1] उपरिवत् सन्धिनी पृष्ठ 33

[2] उपरिवत् सन्धिनी पृष्ठ 33

[3] महादेवी साहित्य 'नीहार पृष्ठ 38

[4] सर्वपल्ली राधाकृष्णन पूर्व और पश्चिम कुछ विचार पृष्ठ 56
अनुवादक रमेश शर्मा

उनकी रहस्य दृष्टि को उत्प्रेरित करती है। मानवीय वेदना की अभिव्यक्ति के माध्यम से वे रहस्य की सृष्टि करती है –

"चल चितवन के दूत सुना,
उनके, पल मे रहस्य की बात,
मेरे निर्निमेष पलको मे
मचा गये क्या क्या उत्पात।"[1]

वे मिलन के अनुभूति की तीव्रता भी महसूस करती है–

"देते हो तुम फेर हास मेरा निज करुणा–जल कणमय कर,
लौटाते हो अश्रु मुझे तु अपनी स्मिति के रगो से भर,
आज मरण का दूत तुम्हे छू
मेरा पाहुन प्राण बन गया।"[2]

जीवन और मृत्यु के शास्वत सम्बन्धो को समझते हुए वे मिलन की दशा की स्थिति का बयान करती है।

अस्तु, यह कहा जा सकता है कि महादेवी का विरह और मिलन उच्च्व धरातल पर भावाव्यक्त हुआ है। उनकी रहस्य– भावना मे इसके अनेक दृष्टात मिलते है।

महादेवी अद्वैत–भावना को सुन्दर और सटीक ढग से व्यक्त करती है। आत्मा शरीर की सीमाओ से मुक्त होकर ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकती है। महादेवी जी की अद्वैत–भावना द्वैत से अलग नही है–

"मै तुमसे हूँ एक–एक है
जैसे रश्मि प्रकाश।
मै तुमसे हूँ भिन्न–भिन्न ज्यो
घन से तडित् विलास।"[3]

वे आत्मा और परमात्मा की पृथकता को रश्मि ओर प्रकाश तथा घन और विद्युत के माध्यम से समझाती है।

---

[1] महादेवी साहित्य 'नीहार' पृष्ठ 38
[2] महादेवी वर्मा
[1] महादेवी वर्मा गीत पर्व पृष्ठ 86

सार रूप मे यह कहा जा सकता है कि महादेवी के काव्य मे छायावादी रहस्यवाद की सभी प्रवृत्तियॉ विद्यमान है। रहस्यवाद का भावात्मक निदर्शन उनके काव्य मे दृष्टिगोचर होता है। वेदो और उपनिषदो के रहस्यवाद का विकसित रूप उनका आधार बनता है। वे रवीन्द्र आदि से भी उत्प्रेरित होती है। अपनी रागमय चेतना के चलते मधुर भाव का आलम्बन लेकर रहस्यवाद की सृष्टि करती है। अपनी सत्ता को बरकरार रखती है। आत्मा और परमात्मा के प्रेम की अभिव्यजना लौकिक प्रतिमानो की सहायता से करती है। प्रकृति इसमे सहचरी बन कर आती है। उनके रहस्यवाद मे करुणा, वेदना आदि की भावना भी सम्मिलित है। उनकी वेदना लोकोन्तर है और यह स्थिति लोक से विमुख होने के पश्चात् सम्भव है। वे प्रणय – व्यापार के माध्यम से अलौकिकता को अभिव्यक्ति देती है। महादेवी सराचर ब्रह्माड को एक मानते हुए अपने को उसका एक अश मात्र मानती है। वे समस्त विश्व मे रागात्मकता और परम तत्त्व की झलक देखती है। रहस्यवाद उनके यहॉ जीवन दर्शन बन कर उपस्थित हुआ है। निराला और पत की अपेक्षा उनकी रहस्य–दृष्टि विकसित अवस्था मे दिखती है। जयशकर प्रसाद से वे दार्शनिक आधारो तथा नारी–भाव के चलते भिन्न सिद्ध होती है।

निष्कर्ष –

अत यह कहा जा सकता है कि भारत मे रहस्यवादियो की सम्पन्न परम्परा रही है। वेदो तथा उपनिषदो मे रहस्यवादी साधना के सूत्र मिलते है। समस्त सृष्टि से परे एक चेतन शक्ति है, जो आत्मा या ब्रह्म कहलाती है। इस पर सभी उपनिषद् एक मत है। वस्तुत उपनिषदो के अद्वैत सिद्धान्त का प्रभाव भारतीय रहस्यवादियो पर पडता है। बुद्धि तत्त्व के स्तर पर द्वैत बना रहता है। आत्मा उस आनद स्वरूप परम तत्त्व की अशी है और ब्रह्म से साक्षात्कार की स्थिति मे अद्वैत हो जाता है। बौद्ध तथा जैन दर्शन मे रहस्यवाद का व्यवहारिक पक्ष दृष्टिगोचर होता है। नाथ तथा सिद्ध साहित्य मे भी प्रचुर रहस्यवादी साहित्य मिलता है। भक्तिकाल की निगुर्ण परम्परा मे रहस्यवादी साहित्य का प्राचुर्य मिलता है। कबीर और जायसी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। कबीर के दर्शन से रवीन्द्रनाथ भी प्रभावित है और छायावादी कवि रवीन्द्रनाथ से। सूफी साधना के प्रेम तत्त्व का भी विकसित रूप छायावादी काव्य मे मिलता है। जहॉ तक पाश्चात्य परम्परा की बात है, तो वह मूलत धर्म से विकसित होती है। उनके वहॉ रहस्यवाद की खण्डश व्याख्या ही मिलती है। उनका रहस्यवाद व्यवहारिक धरातल पर विकसित

होता है। इनके तर्क और बुद्धिवाद से छायावादी कवि अवश्य प्रेरित है। ये कवि रहस्यवाद का प्रतिष्ठापन जीवन के केन्द्र मे करते है। आधुनिक हिन्दी कविता मे रहस्यवाद बीज रूप से मैथलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय, पदुमलाल पुन्नालाल बक्शी आदि की कुछ कविताओ मे मिलता है। उनके इसी रूप का विस्तार छायावादियो की रहस्य सम्बन्धी कविताओ मे मिलता है। रहस्यवाद को छायावाद की एक सशक्त धारा मानना उचित होगा। दर्शन बुद्धि का विषय है और शुष्क भी। राग तत्त्व की प्रतिष्ठा कविता मे सम्भव है, अत हृदय से नि सृत होने कारण कविता मे दर्शन की अभिव्यक्ति रागात्मक होती है। उस रागात्मक अभिव्यक्ति के लिए लौकिक तथा पारलौकिक उपादानो का आश्रय सभी रहस्यवादी कवि ग्रहण करते है। छायावादी कवि भी इससे परे नही है। सत्य, शिव तथा सुन्दरम् की प्रतिष्ठा छायावादी कवियो ने अपने काव्य मे की है। इस बिन्दु पर उसे पाश्चात्य से प्रेरित कहा जा सकता है। जयशकर प्रसाद का रहस्यवाद उपनिषदो के अद्वैत–सिद्धान्त और कश्मीरी शैव दर्शन की शाखा प्रत्यभिज्ञा दर्शन' के विकास की नई कडी है। साधनात्मक रहस्यवाद जो अन्य छायावादियो मे नगण्य है– प्रसाद मे अशत विद्यमान है। कामायनीकार प्रसाद समरसता के माध्यम से आनद की प्रतिष्ठा करते है। सुमित्रानदन पत अपनी रहस्य सम्बन्धी कविताओ मे परम तत्त्व का साक्षात्कार सौन्दर्य के माध्यम से करते है और 'सत्य–शिव – सुन्दरम' का उद्घोष भी। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का रहस्यवाद मूलत दार्शनिक है। महादेवी सही अर्थों मे रहस्यवाद को प्रतिष्ठित करती है। आधुनिक दृष्टि के कारण उनका रहस्यवाद प्राचीन रहस्यवाद से अनेक अर्थों मे भिन्न है। इनमे दार्शनिक गूढता तथा कठिन साधना लुप्त है। महादेवी के काव्य मे बौद्धिक धरातल पर हृदयस्थ भावनाओ का समुचित प्रकाशन होता है। वस्तुत बुद्धि और हृदय का सामजस्य ही महादेवी के रहस्यवाद का मूल है। अपनी सूक्ष्म सौदर्यानुभूति तथा परिष्कृत भावना से वे रहस्यानुभूति को अभिव्यक्त करती है। उनके काव्य मे परम तत्त्व प्रियतम के रूप मे विद्यमान है। अत वे सहज ही प्रणय–भावना का आश्रय लेती है। महादेवी अपने अह को विसर्जित नही करती है। उनके रहस्यवाद मे द्वैत की स्थिति विद्यमान रहती है तथा अद्वैत का आभास भी मिलता है। अस्तु, अन्य छायावादी कवियो की अपेक्षा उनकी रहस्य–दृष्टि विकसित अवस्था मे दिखती है और अपने नारी भाव के चलते भिन्नता भी। अन्य छायावादियो की तरह भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा ही महादेवी के काव्य मे होती है।

चतुर्थ अध्याय

सौन्दर्यानुभूति

सौन्दर्य

इस दृश्यमान जगत् के सम्पूर्ण पदार्थो मे उपादेयता का गुण विद्यमान है। प्राकृतिक पदार्थो मे उपादेयता के अतिरिक्त एक और भी गुण पाया जाता है, वह है उनका सौन्दर्य।''[1] मानव निर्मित वस्तुओ का भी अपना सौन्दर्य होता है। ज्ञान के विकास के साथ पदार्थो की उपयोगिता और गृहीता की चेतना के विकास के द्वारा सौन्दर्य को अधिकाधिक जाना जा सकता है। सौन्दर्य की प्रथम प्रतीति वस्तु – विशेष के रूप – बोध के साथ सम्पन्न होती है। तदुपरान्त गृहीता अपनी आतरिक चेतना की अनुभूति के रूप मे सौन्दर्य – बोध सम्पन्न करता है। मनुष्य की चेतना सौन्दर्य का निश्चय करती है और मन उसका उपभोग। अत सौन्दर्य की प्रतिष्ठा वस्तु की अपेक्षा दृष्टि मे अधिक होती है।

भूत और वर्तमान के अनुभवो के चलते मनुष्य के विचार तथा सामाजिक परिवेश दोनो बदलते रहते है। अत स्थान, काल और परिवेश के अनुसार सौन्दर्य विषयक दृष्टिकोण भी बदलता रहता है। जिसके चलते विभिन्न देशो के मनीषियो के सौन्दर्य – सम्बन्धी मतो मे पर्याप्त भिन्नता है। ''इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सौन्दर्य एक 'रूप' अथवा एक विशुद्ध' रूप या एक 'विचार' अथवा एक 'सामाजिक धारणा है। साराश यह है कि सौन्दर्य एक गुणात्मक मूल्य है, एक प्रकृत मूल्य।''[2]

परन्तु, उपरोक्त धारणा भी पूर्ण नही है सौन्दर्य का एक लोकोत्तर रूप भी है, जिसका चिन्तन क्षेत्र अध्यात्म है। छायावादियो की रहस्य– सम्बन्धी कविताओ मे यह रूप अपनी चरम् सीमा पर प्रकट होकर सौन्दर्यमूलक रहस्यवाद की सृष्टि करता है। सौन्दर्य की अनुभूति आनददायक होती है जिसे सौन्दर्यानुभूति कहा जाता है।

सौन्दर्य की भारतीय अवधारणा

भारत मे पश्चिमी देशो की भॉति सौन्दर्यशास्त्र की व्यवस्थित परम्परा का विकास नही मिलता। प्राचीन भारतीय सस्कृति आध्यात्मिक दृष्टिकोण को ही लेकर चलती है।

---

[1] श्यामसुन्दर दास साहित्यालोचन पृष्ठ 16
[2] डॉ० रमश कुतल मघ अयाता सादर्य जिज्ञासा पृष्ठ 6

अत सौन्दर्य के लोकोत्तर पक्ष पर ही अधिक विचार हुआ। फिर भी भारतीय विचारको, कलाकारो एव कवियो ने प्रकृति के गोचर रूप का भी साक्षात्कार किया। उनकी कला–सृष्टि मे सौन्दर्य के सकेत अवश्य मिलते है।

वेदो तथा उपनिषदो मे सुन्दर के कई पर्यायवाची शब्द मिलते है।' सुन्दर तथा सौन्दर्य के सन्दर्भ मे वैदिक साहित्य मे जिन शब्दो का प्रयोग हुआ है, उनमे – रूप, रुचिर, वल्गु, प्रिय, पेशस्, भद्र, मधुर आदि प्रमुख है"[1] निश्चित रूप से प्राचीन भारतीय मनीषी इस शब्द से अनभिज्ञ नही थे। उपनिषदकार आत्म – विद्या के महत्त्व का प्रतिपादन करते है। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार, "वैदिक कवि जहॉ सौन्दर्य के लौकिक और दिव्य, ऐन्द्रिय और आत्मिक दोनो रूपो का रसिक था, वहॉ उपनिषद् के कवि की दृष्टि केवल आत्मा के सौन्दर्य के प्रति ही उन्मुख थी– उसने अपनी कृतियो को प्रकृति के वैभव से समेट कर आत्मा के ऐश्वर्य पर ही केन्द्रित कर रखा था। उपनिषद् मे सौन्दर्य के जिस रूप का वर्णन है, उसके दो लक्षण है– प्रकाश और आनन्द।'[2] इसी आधार पर रस को स्व–प्रकाशानन्द भी कहा गया है।

पौराणिक ग्रन्थो, वाल्मीकि रामायण एव महाभारत मे जीवन, धर्म और आध्यात्मिक तत्त्वो के विवेचन के क्रम मे सौन्दर्य विषयक धारणाओ पर प्रकाश पडता है। पौराणिक साहित्य मे यह धार्मिक और आध्यात्मिक कथाओ के माध्यम से व्यक्त हुआ है। रामायण काल मे 'मानव–सौन्दर्य' की प्रतिष्ठा होती है। वाल्मीकि रामायण मे 'शोक' को महत्त्व दिया गया। राम का शोक आनन्द को उदात्त, तीव्र और स्पष्ट धरातल पर स्थापित करता है।" आनन्द की अनुभूति मे राम का 'उदात्त शोक' उसका तत्व है और सौन्दर्य मे 'करुणा' को उचित स्थान देना रामायण का महत्व है।"[3] राम का जीवन सामजस्य का प्रतीक भी है। वाल्मीकि रामायण मे सुन्दर के लिए प्रयुक्त शब्दो मे – "रमणीय, रम्य, सुभग, शोभन, शोभित, शुभदर्शन, चारु, चारुदर्शन, रुचिर, अभिराम, प्रियदर्शन आदि"[4] प्रमुख है। वस्तुत रामायण मे "मन गोचर सौन्दर्य अथवा भाव – सौन्दर्य"[5] का वैभव मिलता है। जिसके चलते 'शोक' और 'करुणा' की प्रतिष्ठा हुई। रामायण मे रहस्य–दर्शन की सृष्टि कम ही हुई है।

---

[1] डॉ० नगन्द्र भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका पृष्ठ 33

[2] उपरिवत् पृष्ठ 35

[3] डॉ० हरिद्वारी लाल शर्मा सौन्दर्य शास्त्र पृष्ठ 26

[4] डॉ० गोविन्द पाल सिह महादेवी के काव्य मे सौन्दर्य भावना पृष्ठ 18

[5] डॉ० नगेन्द्र भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका पृष्ठ 40

महाभारत काल मे सुन्दर का प्रयोग कम ही मिलता है। उसकी जगह 'रम्य, रुचिर, सुरूप, दृश्य, चारु, कान्त, प्रियदर्शन, मनोरम, मनोज्ञ, सुभग आदि''[1] शब्द प्रयुक्त हुए है। दर्शनीय, शोभन, सुन्दर आदि शब्द सौन्दर्य के गोचर रूप को प्रस्तुत करते है। मनोहर, मनोज्ञ, रुचिर, कान्त आदि शब्द भाव– सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करते है। श्रीमद्भगवद् गीता मे ईश्वर के विराट् सौन्दर्य का दर्शन अर्जुन करते है। वस्तुत '' महाभारत मे जीवन के जटिल सघर्ष से श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व मे जो सामजस्य उत्पन्न होता है, उससे शान्ति' अथवा 'शान्त रस' की अनुभूति का जन्म होता है।'[2] शान्ति की खोज मे साधक ओर ऋषि भी रहते है। शान्त रस सौन्दर्य चेतना का महत्वपूर्ण अश कहा जा सकता है। इस प्रकार आदिम कालीन स्वच्छन्दता, नैतिकता और विराट् दार्शनिक दृष्टिकोण का सामन्जस्य महाभारत मे व्यक्त हुआ है। स्पष्टत महाभारतकालीन दृष्टिकोण मे सौन्दर्य की अनुभूति के लिए ऐन्द्रिय चेतना मे सामजस्य और चित्तवृत्ति का शान्त होना आवश्यक है।

सस्कृत के कवियो का सौन्दर्य – वर्णन उत्कृष्ट है। इनमे कालिदास का स्थान सर्वोपरि है। डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार, ''महाकाव्य – युग का परवर्ती अभिजात – सस्कृत – काव्य सौन्दर्य का अक्षय कोश है, जिसमे उसके समृद्ध वर्णन के अतिरिक्त तत्वचितन के सम्बन्ध मे भी अनेक मार्मिक सकेत मिलते है। सौन्दर्य के स्वरूप के विषय मे 'क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदैव रूप रमणीयताया' आदि सूक्तियॉ, निर्मित के सन्दर्भ मे कालिदास के 'चित्रे निवेश्य परिकल्पित सत्वयोग', 'रूपोच्चयन मनसा विधिना कृता नु' आदि प्रसिद्ध छन्द और अनुभूति के सम्बन्ध मे कालिदास, भवभूति आदि के कथन – करयित्री प्रतिभा के उद्गीथ होने के कारण भारतीय – दर्शन की अमूल्य सम्पत्ति है।[3] इस प्रकार कालिदास, भवभूति, भारवि, बाण, माघ आदि कवियो मे सौदर्य की एक समृद्ध परम्परा निदर्शित होती है। इन कवियो ने रूप–सौन्दर्य मे नैसर्गिकता को महत्त्व दिया।

पाश्चात्य दार्शनिको ने सौन्दर्य के व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप पर विचार किया है। भारतीय दर्शन– परम्परा मे मनीषियो का ध्यान सौन्दर्य के रसास्वादन अर्थात आनन्द पर ही केन्द्रित रहा है। फिर भी, भारतीय – दर्शन मे सौन्दर्य – सिद्धान्त के सूत्र मिल जाते है। भक्तिकाल मे सोन्दर्य का धार्मिक स्वरूप मिलता है। 'भक्ति –साहित्य मे दिव्य – सौन्दर्य की

---

[1] डॉ० गोविन्द पाल सिह महादेवी के काव्य मे सोन्दर्य - भावना पृष्ठ 18

[2] डॉ० हरिद्वारी लाल शर्मा सौन्दर्यशास्त्र पृष्ठ 27

[3] डॉ० नगेन्द्र भारतीय सोन्दर्य शास्त्र की भूमिका पृष्ठ 53

प्रकल्पना की गई है। भगवान् का त्रैलोक्य – सुन्दर स्वरूप विश्व – सौन्दर्य का सार– सर्वस्व है और वह सौन्दर्य चिन्मय रति का विषय है। वैदिक साहित्य मे भी ईश्वर के स्वरूप को विश्व–सौन्दर्य का प्रतीक और उद्गम माना गया है, किन्तु वह दिव्य– सौन्दर्य अमूर्त्त है प्रतीकात्मक है।"[1] वस्तुत भक्ति साहित्य मे दिव्य सौन्दर्य को मानवीय रूप मे प्रतिष्ठित किया गया। इस धार्मिक सौन्दर्य को भारतीय सौन्दर्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण अग कहा जा सकता है। रीतिकालीन साहित्य मे श्रृगार रस प्रमुख था और नारी सौन्दर्य को महत्त्व दिया गया। भक्ति और रीतिकाल मे चित्र, मूर्ति आदि कलाओ के माध्यम से सौन्दर्य की प्रतिष्ठा हुई ।

भारतीय सौन्दर्य शास्त्र का विकसित रूप काव्य शास्त्र मे मिलता है। यहॉ एक स्वतन्त्र – शास्त्र के रूप मे सौन्दर्यशास्त्र का विकास नही मिलता है। इनकी सौन्दर्य विषयक धारणा पाश्चात्य परम्परा से भिन्न है। भारतीय काव्य–शास्त्र के केन्द्र मे रस है। रस के आन्तरिक पक्ष को रस एव ध्वनि– सिद्धान्त मे प्रमुखता मिली है। रीति और अलकार – सिद्धान्त मे रस के वस्तुनिष्ठ रूप को प्रधानता दी गई है। कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त मे दोनो रूपो का प्रतिपादन है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य – सिद्धान्त मे काव्य – सौन्दर्य को औचित्य के आधार पर निर्देशित किया है।

अलकार को काव्य का सौन्दर्य मानने वाले आचार्य वर्ग को अलकार – सम्प्रदाय के नाम से पुकारा गया। इनकी दृष्टि काव्य के बाह्य सौन्दर्य पर ही रही। भामह के अनुसार अलकार ही काव्य का प्राणतत्व है।[2] वामन ने सौन्दर्यमलकार'[3] कहकर सौन्दर्य को अलकार का पर्यायवाची माना। दण्डी ने 'काव्य शोभाकरान् धर्मानऽलकरान् प्रचक्षते'[4] कहकर अलकार को काव्य की शोभा का विधायक धर्म माना। रीति – सम्प्रदाय के आचार्य वामन ने रीति को विशिष्ट पद रचना (विशिष्ट पद रचना रीति)[5] कहा। "यह विशिष्टता गुणो पर आधारित है, जैसा कि रीति –सिद्धान्त के प्रवर्त्तक वामन (9 श ई० मध्य) का मत है। इस प्रकार रीति गुणो से सम्बन्धित है। रीति का दूसरा सम्बन्ध पद रचना से है, जो कि समास पर निर्भर

---

[1] डॉ० नगेन्द्र भारतीय सौन्दर्य शास्त्र की भूमिका पृष्ठ 196
[2] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 9 पृष्ठ 56
[3] वामन काव्यालकार सूत्र – वृत्ति 1-1-2
[4] दण्डी काव्यादर्श 2-1
[5] वामन काव्यालकार

है।"[1] तात्पर्य यह है कि वामन 'विशिष्ट पद रचना' कहकर रूपगत सौन्दर्य तथा गुणो के विवेचन मे आन्तरिक सौन्दर्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते है।

कुन्तक (10-11 श० ई०) ने अपने ग्रन्थ 'वक्रोक्तिजीवित' मे वक्रोक्ति सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की। इन्होने "इसके अर्न्तगत प्रचलित सभी काव्य– सिद्धान्तो का समाहार किया है और साथ ही समस्त काव्यागो – वर्ण – चमत्कार, शब्द– सौन्दर्य, विषय–वस्तु की रमणीयता, अप्रस्तुत–विधान, प्रबन्ध–कल्पना आदि को उचित स्थान दिया है।" इस प्रकार कुन्तक के वक्रोक्ति सिद्धान्त मे काव्य के बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य का प्रतिपादन हुआ है।

ध्वनि – सम्प्रदाय का प्रथम ज्ञात ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' (857 ई०) है। इस सम्प्रदाय को विकसित करने मे अभिनवगुप्त (980-1020 ई०) का विशेष स्थान है। 'ध्वन्यालोक मे काव्य की परिभाषा देते हुए कहा गया है कि, "जहॉ अर्थ अपने को अथवा शब्द अपने अर्थ को गुणीभूत करके इस (प्रतीयमान) को अभिव्यक्त करते है, उस काव्य विशेष को विद्वान लोग ध्वनि (काव्य) कहते है।"[2] वस्तुत इस सम्प्रदाय के आचार्यो ने प्रतीयमान अर्थ के द्वारा काव्य मे बाह्य की जगह अन्त सौन्दर्य के महत्त्व का प्रतिपादन किया। "वाच्य के अर्न्तगत अलकारादि का समावेश होता है और प्रतीयमान अर्थ के अर्न्तगत ध्वनि का। प्रतीयमान अर्थ की सिद्धि काव्य मे वस्तुस्थिति का अवलोकन करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को हो सकती है। किसी सुन्दरी के शरीर मे जिस प्रकार प्रत्येक अग तथा अवयव से भिन्न लावण्य की पृथक सत्ता विद्यमान रहती है।"[3] इस प्रकार ध्वनि काव्यागो से पृथक् उसका लावण्य अथवा सौन्दर्य ही है जो काव्य का आन्तरिक तत्व है।[4]

भारतीय काव्य– शास्त्र का रस–सिद्धान्त मे भी सौन्दर्य पर बल है। यहॉ सौन्दर्य आस्वाद रूप मे भावनिष्ठ है। इस मत के प्रवर्त्तक भरत मुनि है। भरत का 'नाट्यशास्त्र' (3श० ई०) इसका प्रथम ग्रन्थ है। भरत के "विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्ररसनिष्पत्ति" सूत्र के

---

[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 9 पृष्ठ 717

[2] यत्रार्थ शब्दो वा तमर्थमुपर्सजनीकृतस्वार्थौ।
व्यक्त काव्य विशेष स ध्वनिरिति सूरिभि कथित ।।
– विश्वेश्वर हिन्दी ध्वन्यालोक पृष्ठ 53

[3] आचार्य बलदेव उपाध्याय भारतीय साहित्य शास्त्र पृष्ठ 212

[4] "प्रतीयमान पुनरन्यदेव वस्त्वरित वाणीषु महाकवीनाम।
यत तत प्रसिद्धावयवातिरिक्त विभाति लावण्यमिवागनासु।।
– विश्वेश्वर हिन्दी ध्वन्यालोक पृष्ठ 19

अनुसार विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव के सयोग से रस की निष्पत्ति होती है।[1] इनका विवेचन नाट्य – सौन्दर्य के केन्द्र मे है। अभिनवगुप्त ने भरत के आस्वाद्य रस (रस्यते आस्वाद्यते इति रस)[2] को आस्वाद रूप मे परिभाषित किया। अत अभिनव गुप्त की स्थापना से "रस और रसानुभूति, सौन्दर्य और सौन्दर्यानुभूति का भेद मिट जाता हे, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि रस–सिद्धान्त मे विभाव का स्थान महत्त्वपूर्ण है। काव्य वर्णन या नाट्याभिनय मे विभाव की वस्तुगत सत्ता निर्विवाद है।"[3] श्रृगार रस को सर्वोपरि स्थान मिला। इसका आलम्बन मूर्तिमान सौन्दर्य होता है। रति या प्रेम के वर्णन मे इसका सक्रिय योग रहता है। मानवीय– सौन्दर्य को नख – शिख वर्णन के द्वारा दर्शाया जाता है। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत ऋतु वर्णन भी आता है। वस्तुत नायिका – भेद, रूप– सौन्दर्य की विविध छवियो का अकन ही है। प्रेम भाव– सौन्दर्य का निरूपण करता है।

क्षेमेन्द्र औचित्य के आधार पर काव्य सौन्दर्य को निर्देशित करते है। "जो वस्तु जिसके सदृश्य है, जिससे उसका मेल मिले, उसे कहते है उचित और उचित का ही भाव होता है– औचित्य।"[4] इस प्रकार क्षेमेन्द्र सामजस्य और सगति को सौन्दर्य का आधार तत्त्व मानते है। औचित्य की व्यापकता बाह्य और आन्तरिक दोनो सौन्दर्यो के निरूपण के कारण है। इसी कारण आचार्य क्षेमेन्द्र ने उसे 'चत्मात्कारिण' तथा 'रसजीवितभूतस्य' कहा है।[5]

सस्कृत काव्य – शास्त्र की तरह हिन्दी समीक्षा जगत् मे भी सौन्दर्य के स्वरूप पर विचार हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी सौन्दर्य की वस्तुनिष्ठ सत्ता को प्रधान मानते है। "कल्पना या सभावना को वे मानसिक रूपविधान कहते है।"[6] वे मन को 'रूप – गति का सघात'[7] मानते है। उनका मत है कि "जैसे वीर कर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नही, वैसे ही

---

[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 9 पृष्ठ 518

[2] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 9 पृष्ठ 518

[3] डॉ० नगेन्द्र भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका पृष्ठ 99

[4] उचित प्राहुराचार्या सदृश किल यस्य यत।
उचितस्य च यो भाव, तदौचित्य प्रचक्षते।
– क्षेमेन्द्र औचित्य विचारचर्चा कारिका 7

[5] 'औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारूर्वणे।
रसजीवितभूतस्य विचार कुरूतेऽधुना ।
– क्षेमेन्द्र औचित्य विचारचर्चा कारिका 3

[6] डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी हिन्दी आलोचना पृष्ठ 62

[7] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रस मीमासा पृष्ठ 24

सुन्दर वस्तु से पृथक् सौन्दर्य कोई पदार्थ नही।"[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सौन्दर्य की वस्तु सत्ता रूप– रग मे ही नही देखते बल्कि कर्म और मनोवृत्ति मे भी देखते है। उनके अनुसार, कविता केवल वस्तुओ के ही रग– रूप के सौन्दर्य की छटा नही दिखाती, प्रत्युत कर्म और मनोवृत्ति के सौन्दर्य के भी अत्यन्त मार्मिक दृश्य सामने रखती है।"[2] डॉ० रामविलास शर्मा सौन्दर्य को स्थूलता तक सीमित न करते हुए उसके सूक्ष्म भावात्मक पक्ष को भी स्वीकार करते है। 'सौन्दर्य की उपयोगिता शीर्षक निबध मे वे कहते है –

'साहित्य की विषय – वस्तु की दूसरी विशेषता यह है कि उसमे विचार ही नही होते, यथार्थ जीवन का चित्र ही नही होता, जीवन ओर विचारो के प्रति मनुष्य की भावना, उसकी रागात्मक प्रतिक्रिया भी होती है। विज्ञान और दर्शन का काम मनुष्य की भावनाओ को जगाना, उसका परिष्कार करना, उसकी पुष्टि करना नही होता, यह काम मुख्यत साहित्य का है। कला और साहित्य की सरसता का सबसे बडा कारण उसका यह भावनामूलक स्वभाव है।"[3] वस्तुत उनके चितन के केन्द्र मे मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र है। उनके अनुसार –

'सौन्दर्य की कसौटी है मनुष्य का व्यवहार। इस व्यवहार से आप बचकर नही निकल सकते और सौन्दर्य की कसौटी व्यवहार है, इसीलिए वह आपकी व्यक्तिगत इच्छा – अनिच्छा पर निर्भर नही है, वरन् उसकी वस्तुगत सत्ता है।'[4]

डॉ० रामविलास शर्मा की उपर्युक्त धारणाएँ सोदर्य को रागात्मक भावना और सामाजिकता से जोडकर देखती है।

महात्मा गॉधी के दर्शन मे हमे प्राचीन भारतीय मनीषियो के साथ–साथ रस्किन और टाल्सटॉय के विचारो की छाप मिलती है। आधुनिक युग के कुछ कवियो–लेखको मे भी उनका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। छायावादी पत पर भी इनकी थोडी–बहुत छाप देखी जा सकती है। गॉधी सत्य के द्वारा सौन्दर्य को देखते थे। वे इस सत्य का सामजस्य, नीति, हितकारी और उपयोगिता से करते है। उनके मतानुसार "सत्य ही ऊॅची–से–ऊॅची कला और

---

[1] उपरिवत चिन्तामणि भाग 9 पृष्ठ 164
[2] उपरिवत चिन्तामणि भाग 9 पृष्ठ 166

[3] डॉ० रामविलास शर्मा निबन्धमणि पृष्ठ 66
[4] उपरिवत उपरिवत पृष्ठ 61

श्रेष्ठ सौन्दर्य है वह नीति, हितकारी और उपयोगिता से भिन्न नही हो सकता।"[1] वस्तुत गॉधी दर्शन नीतिशास्त्र की परिधि मे है – सौदर्यशास्त्र की परिधि मे नही। पत का गॉधी से विछोह और अरविन्द की ओर आकर्षण इसी के चलते हुआ।

आधुनिक भारतीय अध्यात्मवादी चिन्तको ने सोन्दर्य के स्वरूप के विवेचन के क्रम मे आत्मगत आनन्द पक्ष को प्रधानता दी है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, "सौन्दर्य आत्मा का वह आनद है जो पूर्णतया रूपान्वित तथा व्यवस्थित है। जहॉ आत्मा अभिव्यक्त नही होती, जहॉ आत्मा की लय अपने आपको प्रकट नही करती, वही कुरूपता होती है।"[2] आगे श्री अरविन्द वास्तविक सौदर्य–दृष्टा योगी या ऋषि को ही मानते है। उनके अनुसार "ऋषि या योगी ऐसे गम्भीरतर सौदर्य एव आनन्द का रसास्वाद कर सकता है जिसे कवि ऊँची से ऊँची उडान भर कर भी अपनी कल्पना मे नही ला सकता।"[3] वस्तुत उनका दृष्टिकोण आत्मस्थ होकर प्रत्येक पदार्थ मे निहित अन्त सौन्दर्य के दर्शन करता है। डॉ० हरवश सिह शास्त्री सौदर्य को 'स्थूल या सूक्ष्म जगह मे आत्मा की अभिव्यक्ति'[4] मानते है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर सौन्दर्य को कला का साधन मानते है–साध्य नही। उनके अनुसार, "कला का प्रमुख लक्ष्य तो व्यक्तित्व का प्रकाशन है जिसके लिए उसे चित्र एव सगीत की भाषा का प्रयोग करना पडता है।"[5] रवीन्द्रनाथ टैगोर पौर्वात्य एव पाश्चात्य सौन्दर्य सम्बन्धी धारणाओ मे अन्तर भी स्पष्ट करते है–

"पूर्व के कलाकारो ने विशेष रूप से चीन और जापान मे वस्तुओ मे उनकी आत्मा का दर्शन किया है और वे इसमे (वस्तुओ की आत्मा के अस्तित्व मे) विश्वास करते है। पश्चित मनुष्य की आत्मा मे विश्वास कर सकता है, परन्तु वह वस्तुत यह विश्वास नही करता कि विश्व की भी एक आत्मा है परन्तु पूर्व इसमे (विश्वात्मा मे) विश्वास करता है और मनुष्य जाति को पूर्व का सम्पूर्ण योगदान इसी आदर्श मे ओत–प्रोत है।"[6] सहज ही बोधगम्य है कि वे

---

[1] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य काश भाग 1 पृष्ठ 221
[2] नलिनीकात गुप्त प्रकाश की ओर पृष्ठ 32-33
[3] श्री अरविन्द श्री अरविन्द के पत्र भाग 1 पृष्ठ 325
[4] डॉ० हरवश सिह शास्त्री सौन्दर्य-विज्ञान पृष्ठ 122
[5] पर्सनालिटी (Personality) रवीन्द्रनाथ टैगोर पृष्ठ 19
[6] उपरिवत उपरिवत पृष्ठ 24

वस्तु के बाह्य स्वरूप के अतिरिक्त एक आन्तरिक स्वरूप भी मानते है जो वस्तु की आत्मा है। साथ ही साथ विश्व के सारे पदार्थो मे आत्मा के अस्तित्व का दर्शन करते है।

छायावादी कवि जयशकर प्रसाद 'ऑसू' की वेदना से निकलकर कामायनी मे आनद की प्रतिष्ठा करते है। 'उज्जवल वरदान चेतना का'[1] कह कर वे रूपगत सौदर्य को चेतना से जोडते है। आगे 'समरस थे जड या चेतन'[2] कहकर विश्व के समस्त पदार्थो मे आतरिक अनुरूपता एव सामजस्य देखते हे।

'सत्य शिव सुन्दर'कला और साहित्य का आदर्श वाक्य माना जाता है। यह एक भारतीय सूक्ति जान पडता है। परन्तु ऐसा है नही। भारतीय परम्परा मे इसकी सभावना पहले से मिलती है। महाभारत के अनुसार सत्य वही है जो प्राणियो के अत्यन्त हित मे हो।[3] मनु सत्य और प्रिय सत्य बोलने की बात करते है।[4] गीता सत्य प्रिय और हितपूर्ण बात बोलने को कहती है।[5] वात्स्यायन के न्याय भाष्य मे 'सत्य प्रिय हित' का उल्लेख है।[6] इसी 'सत्य प्रिय हित' की तुलना 'सत्य शिव सुन्दर' के परिपेक्ष्य मे की जाती है। वस्तुत विक्टर कूॅसा ने सन् 1818 ई० मे अपने प्रसिद्ध व्याख्यान "द ट्रू, द ब्यूटीफुल एड द गुड" (सत्य, सुन्दर और शिव) द्वारा इस त्रिक का विशेष रूप से प्रचार किया था। उसका व्याख्यान 1837 ई० मे प्रकाशित हुआ।[7] अग्रेजी के कवि कीट्स ने लिखा है– सौन्दर्य ही सत्य है, सत्य ही सौन्दर्य है–यही सब कुछ है जो तुझे इस ससार मे जानने की आवश्यकता है।"[8] इस प्रकार अफलातून से एलेक्जेण्डर बाउमगार्टेन तक की परम्परा को विक्टर कूॅसा ने व्यवस्थित किया। कीट्स के कथन से आधुनिक भारतीय कलाकार एव साहित्यकार प्रेरित हुए। भारत मे महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने इसे

---

[1] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ

[2] उपरिवत उपरिवत् पृष्ठ 704

[3] यद् भूतहितमत्यन्तमेतत सत्य मत मम'
– (महाभारत शान्तिपर्व 326-13 287 19)

[4] सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् न ब्रूयात सत्यमप्रियतम।
प्रिय च नानृत ब्रूयात् एष धर्म सनातन।
– (मनुस्मृति 4 138)

[5] "अनुद्वेगकर वाक्य सत्य प्रियहित च यत्'
– (गीता 17 15)

[6] वात्स्यायन न्यायभाष्य (1 1 2)

[7] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृष्ठ 876

[8] डॉ० गोविन्द पाल सिह महादेवी के काव्य मे सौन्दर्य–भावना पृष्ठ 43

सर्वप्रथम 'सत्य शिव सुन्दर का रूप दिया। वस्तुत प्रत्यक्ष मे जो सौन्दर्य है वही चिन्तन मे सत्य और कर्म मे शिव है। समस्त छायावादी इस धारणा से प्रभावित दिखते है।

इस सम्पूर्ण विवेचन के अत मे कहा जा सकता है कि भारत मे सौन्दर्य शास्त्र का अभिधान अधिक प्राचीन नही है। वैदिक–साहित्य, उपनिषद्, सस्कृत वाङ्मय, पौराणिक ग्रन्थो, अभिजात–सस्कृत–काव्य, भारतीय दर्शन, भक्ति–साहित्य और काव्य–शास्त्र मे न्यूनाधिक रूप मे सौन्दर्य का विवेचन मिलता है। काव्य–शास्त्र मे परम् तत्त्व 'सौन्दर्य' नही 'रस' है। अलकारवादियो ने बाह्य–सौन्दर्य को प्रधानता दी। जगन्नाथ ने 'रमणीय' के अर्थ मे इसकी महत्ता प्रतिपादित की। दर्शन तथा उसके आधार वेद और उपनिषद् मे आध्यात्मिक व्याख्या ही हुई। पौराणिक ग्रन्थो मे मानवीय गुणो को महत्त्व दिया गया। सस्कृत के परवर्ती काव्य मे तथा रीतिकाल मे रूप–सौन्दर्य को स्थापित किया गया। आधुनिक काल मे सौन्दर्य सम्बन्धी धारणा प्रबल हुई। आधुनिक काल विशेषकर छायावाद युग मे सौन्दर्य की प्रतिष्ठा लोक और लोकोत्तर दोनो धरातलो पर हुई। रवीन्द्रनाथ भी यही काम बगाल मे कर रहे थे। सौन्दर्य के वस्तुगत, रूपगत, भावगत और आध्यात्मिक स्वरूप पर विचार हुआ। प्रकृति, विचार, समाज और दर्शन इस सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण मे समाहित हो गये। छायावादियो का आध्यात्मिक दृष्टिकोण उनकी रहस्यवादी कविताओ मे सौन्दयमूलक रहस्यवाद की सृष्टि भी करता है।

सौन्दर्य की पाश्चात्य अवधारणा

पाश्चात्य शब्द 'एस्थेटिक्स को हिन्दी मे सौन्दर्य शास्त्र का सम्बोधन प्राप्त हुआ। ''पाश्चात्य साहित्य मे पहले 'एस्थेटिक्स' शब्द ही प्रचलित था, 'एस्थेटिक्स' नही।''[1] अपनी महत्वपूर्ण कृति 'एस्थेटिका मे ''सौन्दर्यशास्त्री बामगार्टेन ने सबसे पहले सौदर्यबोध शास्त्र या 'ऐस्थेटिक्स' (यूनानी aesthetkes, प्रत्यक्ष) शब्द को आधुनिक अर्थो मे मजूर करके टकसाली बनाया।''[2] जर्मन दार्शनिक एलेक्जेण्डर बाउमगार्टेन (सन 1714-62 ई०) के पूर्व भी 'सौन्दर्य–चिन्तन' की परम्परा मिलती है जो लगभग 500 ई० पू० से शुरू होती है। 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार, ' 'एस्थेटिक्स का शाब्दिक अर्थ है (साथ ही

---

[1] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 3

[2] डॉ० रमेश कुतल मेघ अथातो सौदर्यजिज्ञासा पृष्ठ 46-47

प्रारम्भ मे प्रचलित अर्थ) है ऐन्द्रिय प्रत्यक्षो का ज्ञान के माध्यम की दृष्टि से किया गया अध्ययन। किन्तु बाद मे 'एस्थेटिक्स उस शास्त्र को कहा जाने लगा, जो ऐन्द्रिय बोध से प्राप्त सौन्दर्य–भावन के मनोरम आनन्द का विश्लेषण करता है।[1] सौन्दर्य की पाश्चात्य अवधारणा के विवेचन के क्रम मे पाश्चात्य की सौन्दर्य परम्परा को तीन भागो मे बॉटा जा सकता है–

1 प्राचीन काल (दूसरी शती पूर्व) 2 मध्य काल (दूसरी शती से सोलहवी शती तक) और 3 आधुनिक काल (सत्रहवी शती से अब तक–)

1. प्राचीन काल (दूसरी शती पूर्व)

प्राचीनकालीन चिन्तको मे सुकरात, प्लेटो, अरस्तु सिसरो और लौजाइनस आदि प्रमुख है। सुकरात वस्तु की सुन्दरता उसकी उपयोगिता मे मानते है। सुकरात के अनुसार, एक गोबर से भरी हुई टोकरी भी उपयोगी होने के कारण सुन्दर कहला सकती है और सुनहरी ढाल भी अनुपयोगी होने के कारण बुरी हो सकती हे।"[2] सुकरात का दृष्टिकोण उपयोगितावादी है।

प्लेटो ने सौन्दर्य को आतरिक तत्त्व मानते हुए उसे दार्शनिक आधार प्रदान किया। प्लेटो का कथन है कि "यदि कोई वस्तु सुन्दर है तो वह किसी अन्य कारण से नही, सिवाय इसके कि वह पूर्ण और निरपेक्ष सौन्दर्य का अश हे।"[3] साथ ही साथ वे कला को 'अनुकृति की अनुकृति'[4] घोषित करते है। अत उनकी दृष्टि मे कलाओ मे उस निरपेक्ष सौन्दर्य का पूर्ण प्रत्यक्षीकरण असम्भव है।

अरस्तु के अनुसार "कला हमारा अहित नही करती बल्कि वह हमारे अशुद्ध मनोभावो का विरेचन करती है।"[5] अरस्तु ने सौन्दर्य के लिए तीन आवश्यक गुणो को अनिवार्य माना है– 'व्यवस्था, समता और स्पष्टता।'[6] वे सौन्दर्य को शिवत्व और आनद से जोडते हे।

---

[1] इन साइकलोपीडिया ब्रिटानिका पृष्ठ 3
[2] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्य शास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 22
[3] डॉ० गोविन्द पाल सिह महादेवी के काव्य मे सौन्दर्य – भावना पृष्ठ 10
[4] डॉ० बच्चन सिह आलोचक और आलोचना पृष्ठ 5
[5] डॉ० राजेन्द्र प्रताप सिह सौन्दर्य शास्त्र की पाश्चात्य परम्परा पृष्ठ 52
[6] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दीसाहित्य कोश भाग 9 पृष्ठ 887

उनके मतानुसार ''सौन्दर्य वह शिव है जो कि शिव होने के कारण आनन्दप्रद है।''[1] वस्तुत अरस्तु सौन्दर्य को आन्तरिक तत्त्व मानते हुए उसे रूप और नैतिकता से जोडते है। उनकी यह नैतिकता धार्मिक ही है।

थियोफेरेस्ट और स्टोइक्स ने अरस्तू द्वारा प्रतिपादित व्यवस्था, समता और स्पष्टता को आगे बढाने का प्रयास किया। थियोफेरेस्ट ने सौन्दर्य के लिए चार आवश्यक गुण माने है – 'स्पष्टता, शुद्धता, औचित्य और अलकरण।'[2] स्टोइक्स दोष न होना, स्वच्छता, सक्षिप्तता, उपयुक्तता और ग्रम्यता से मुक्ति[3] को काव्य की शैली के रूप मे प्रतिष्ठित करता है।

होरेस विषय, रूप और कवि पर तथा सिसरो शिल्प और शैली पर विचार करते है। होरेस उपयुक्त विषय के चुनाव पर जोर देते हुए रूप तत्त्व के अर्न्तगत 'आवयिक अन्वति, शब्द प्रयोग (डिक्शन), छन्द, औचित्य आदि'[4] की स्पष्ट व्याख्या करते है। आगे वे कहते है कि 'कवि को उक्ति के प्रति ईमानदार होना चाहिए।'[5] होरेस काव्य मे औचित्य और सामजस्य पर बल देते है। असगति तथा असम्बद्धता काव्य मे नही होना चाहिए। वस्तुत अपने ग्रन्थ 'आर्स पोइतिका' के माध्यम से वे अरस्तु के सिद्धान्तो को ही दोहराते है। वे कुछ मौलिक स्थापनाएँ भी करते है। सिसरो सौन्दर्य को 'पुरूष सौन्दर्य और स्त्री सौन्दर्य'[6] मे बॉटते है। उनके अनुसार–''शारीरिक अगो का निश्चित अनुपात जब रगो की एक निश्चित अनुकूलता के साथ प्रस्तुत हो तो उसे सौन्दर्य कहा जाता है।''[7] इस प्रकार वे रूप सौन्दर्य को प्रधानता देते है। वे अनुपात और सम्बद्धता को सौन्दर्य का अनिवार्य तत्त्व मानते है। इस काल के प्लूटार्क आदि विचारको ने भी अरस्तू की विचारधारा को ही आधार माना है।

काव्य मे उदात्त तत्त्व (पेरिइप्सुस) का लेखक लोगिनुस (लाजाइनस) था 'जो ईसा की पहली शताब्दी मे विद्यमान था।'[8] काव्य मे उदात्त तत्त्व पर उनके विचार सौन्दर्य शास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उन्होने औदात्य के पॉच स्रोतो का उल्लेख किया है– (I) विचारो

---

[1] डॉ० गोविन्द पाल सिह महादेवी के काव्य मे सौन्दर्य – भावना पृष्ठ 10
[2] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्य शास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 23
[3] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्य शास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 23
[4] डॉ० बच्चन सिह आलोचक और आलोचना पृष्ठ 19
[5] डॉ० बच्चन सिह आलोचक और आलोचना पृष्ठ 20
[6] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्य शास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 23
[7] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्य शास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 23
[8] डॉ० बच्चन सिह आलोचना और आलोचना पृष्ठ 21

की महत्ता (II) भावो की उद्दाम अभिव्यक्ति (III) समुचित अलकार योजना (IV) अभिव्यक्ति की उत्कृष्टता, और (V) गरिमामय रचना–विधान।[1] प्रथम दो का सम्बन्ध नैसर्गिक प्रतिभा से और शेष तीन कला के व्यापार है। इस प्रकार लोगिनुस (लाजाइनस) ने सौन्दर्य शास्त्र को औदात्त का सिद्धान्त दिया। कालातर मे उदात्त को सौन्दर्यशास्त्र का प्रमुख अग माना गया।

इस प्रकार दूसरी शती पूर्व के सौन्दर्य–चिन्तको ने सौन्दर्यशास्त्र की परम्परा को विकसित किया। इस परम्परा मे आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र की हल्की अनुगूॅज भी सूनाई पडती है।

2. मध्य काल (दूसरी शती से सोलहवी शती तक)

मध्यकाल के सौन्दर्य–चिन्तको मे प्लोटिनस, सैट आगस्टाइन, टामस एक्विनस, अलबर्टी, ड्यूरर, सर फिलिप सिडनी आदि प्रमुख है। प्लोटिनस ने इस मान्यता का विरोध किया कि सौन्दर्य का सार सामजस्य या समरूपता है।[2] वे कल्पना को सृजन का आधार मानते है। प्लाटिनस का कथन है कि 'सौन्दर्य एक प्रकार का प्रकाश है जो स्वय सुडौलता की अपेक्षा वस्तुओ की सुडौलता से परे क्रिया करता है इसी मे उसका आर्कषण है। अधिक सजीव मूर्तियॉ अधिक सुन्दरन क्यो होती है जबकि दूसरी अधिक सुडौल हो सकती है।"[3] प्लोटिनस के अनुसार सौन्दर्य वस्तुओ का वह गुण है जिससे आत्मा उस सत्ता के समान ही स्वय को पहचानती है।[4] इस प्रकार अपने आध्यत्मिक विचारो के साथ वे रूपवादी भी सिद्ध होते है।

सैट आगस्टाइन सौन्दर्य को आतरिक तत्त्व ही मानते है। उन्होने कहा है कि सौदर्य अगो के समानुपात और विशेष रगो की अनुकूलता मे निहित है।[5] आगे उन्होने "धार्मिक दृष्टि से बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा शिव के सौन्दर्य को ही सच्चा सौदर्य माना है।"[6] वस्तुत वे अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से सौन्दर्य–सम्बन्धी अवधारणाऍ प्रस्तुत करते है।

---

[1] डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त साहित्य का वैज्ञानिक अध्यय। पृष्ठ 50
[2] के०से० पाण्डेय वेर्स्टन एस्थेटिक पृष्ठ 158
[3] डॉ० गोविन्द पाल सिह महादेवी के काव्य मे सौन्दर्य भावना पृष्ठ 12
[4] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्य शास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 24
[5] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्य शास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 24
[6] डॉ० गोविन्द पाल सिह महादेवी के काव्य मे सौन्दर्य भावना पृष्ठ 10

टॉमस एक्विनस के चिन्तन पर प्लोटिनस की छाप दिखती है। "उन्होने सौन्दर्य की तीन अनिवार्य शर्ते मानी है– (1) पूर्णता (11) अनुपात, और (111) स्पष्टता।"[1] उनके यहाँ सौन्दर्य का उद्देश्य प्रसन्न करना [2] हे। वे सौन्दर्य–बोध के दो मार्गों की व्याख्या करते है– '(1) श्रवणेन्द्रिय और (11) चक्षुरिन्द्रिय।'[3] इस प्रकार वे पूर्वाग्रहो से पूर्णत मुक्त न होते हुए भी कुछ सशोधन प्रस्तुत करते है।

अलबर्टी ने "समरूपता ओर सादृश्य को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया।"[4] एक्विनस की तरह वे कला का उद्देश्य प्रसन्न करना ही मानते है। यद्यपि उनके विचार पूर्ण मौलिक नही है तथापि महत्त्वपूर्ण अवश्य है। ड्यूटर ने प्रतिभा–सिद्धान्त पर बल दिया है। उनके अनुसार प्रतिभा दैवी वरदान है पर कला–सृजन मे प्रतिभा के अतिरिक्त अध्ययन एव निरीक्षण की शक्तियो का भी योग रहता है। अत वे प्रतिभा पर अधिक जोर देते है।

सर फिलिप सिडनी के अनुसार 'कवि केवल प्रकृति की अनुकृति नही करता अपितु उससे भी श्रेष्ठ या नई वस्तु बनाता है। कविता का माध्यम अनुकरण व कल्पना होते हुए भी वह सर्वथा हवाई किला नही होती। कविता का उद्देश्य प्रसन्न करना और सिखाना है।"[5] अस्तु, सिडनी के विचार भी महत्वपूर्ण सिद्ध होते है।

इस प्रकार प्राचीन काल के सौन्दर्य चिन्तको की तरह मध्य काल को विचारको ने भी सौन्दर्य सम्बन्धी छिटफुट अवधारणाएँ प्रस्तुत की।

3. आधुनिक काल (सत्रहवी शती से अब तक–)

आधुनिक काल के बाउमगार्टन–पूर्व के चिन्तको मे बेकन, डेकार्ते, बोइलो, हाब्स, लॉक, लाइबनीज, शेफ्टबरी, एडिसन, बर्कले, बर्क, रेनाल्ड आदि प्रमुख रहे है। तदुपरान्त बाउमगार्टेन, लेसिग, हर्डर, काण्ट, हीगेल, शापनहावर, लात्ज, नीत्शे, टालस्टाय, बोसाके, थियोडोर लिप्स और क्रोचे आदि महत्वपूर्ण सौन्दर्य–चिन्तक रहे है। आधुनिक काल की सौन्दर्य

---

[1] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 24-25
[2] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 25
[3] डॉ० राजेन्द्र प्रताप सिह सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य परम्परा पृष्ठ 64-65
[4] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 25
[5] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 25

परम्परा को दो भागो मे बॉटा जा सकता है– (1) बाउमगार्टेन–पूर्व के सौन्दर्य–चिन्तक और (2) बाउमगार्टेन के बाद के सौन्दर्य–चिन्तक

(i). बाउमगार्टेन–पूर्व के सौन्दर्य–चिन्तक

बेकन आधुनिक काल के प्रमुख सौन्दर्य चिन्तक रहे है। बुद्धिवादी दार्शनिक बेकन मस्तिष्क को तीन भागो मे विभक्त करते है– स्मृति, कल्पना और विवेक। उन्होने "इन तीनो का सम्बन्ध क्रमश इतिहास, काव्य और दर्शन शास्त्र से माना।[1] आगे वे कहते है कि" सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ अश वह है, जिसे कोई चित्र पूर्णत अभिव्यक्ति न दे पाये। कोई भी ऐसा भव्य सौन्दर्य नही जो कि अनुपात मे वैचित्र्य न रखता हो।[2] अस्तु, बेकन ने सौन्दर्य की मौलिक–परिभाषा दी है।

रेने देकार्ते के अनुसार "सौन्दर्य प्रतिक्रिया के अनुरूप सवेदना अथवा उत्तेजना की अनुभूति मे सन्निहित रहता है।"[3] उन्होने आनद के तीन प्रकार माने है – (1) ऐन्द्रिक आनन्द, (11) काल्पनिक आनन्द और (111) बौद्धिक आनद।[4] वे सौन्दर्यानुभूति को बौद्धिक आनद से भिन्न मानते है। देकार्ते के अनुसार 'सौन्दर्यानुभूति बौद्धिक आनन्द है, जिसमे कल्पनाजन्य भावानुभूति मिश्रित होती है।[5] इस प्रकार वे सौन्दर्य को विचार, उत्तेजना, अनुभव, कल्पना आदि से मिश्रित करते है। कुल मिलाकर उनका दृष्टिकोण बुद्धिवादी ही है। देकार्ते की तरह बोइलो आदि ने भी विचार किया। जिस प्रकार देकार्त ने कलात्मक आनन्द मे सवेग के मिश्रण को स्वीकार किया था, उसी प्रकार बोइलो ने भी सवेग को काव्य का सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व माना।'[6]

हाब्स काव्य–सृजन मे कल्पना और विवेक के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कल्पना पर जोर देते है। उनके मतानुसार कल्पना के कारण ही काव्य मे औदात्य का सचार होता है।[7] शिव अशिव और क्षुद्र पर विचार करते है। "किसी भी मनुष्य की इच्छा या कामना

---

[1] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 26
[2] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 26
[3] डॉ० उषा गगाधर राव साजापुरकर हिन्दी रीति काव्य मे सौन्दर्यबोध पृष्ठ 29
[4] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 26
[5] के०सी० पाण्डेय वेस्टर्न एस्थेटिक्स पृष्ठ 177
[6] डॉ० निर्मला जैन रस–सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र पृष्ठ 52
[7] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 26

का सम्बन्ध हाब्स ने शिव से माना है। घृणा या अरुचि की वस्तु को वे अशुभ तथा तिरस्कार योग्य वस्तु को क्षुद्र मानते है।"[1]

अनुभववादी दार्शनिको मे जॉन लॉक के विचारो का अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। "उनके अनुसार सौन्दर्य रगो ओर आकारो का ऐसा सयोजन है जिससे दर्शक को सुख की अनुभूति होती है।'[2] उन्होने प्रतिपादित किया कि विचार दो प्रकार के होते है-सरल और मिश्रित।"[3] उन्होने इस सौन्दर्य का सम्बन्ध मिश्रित रूप से माना है।[4] कल्पना के चलते सौन्दर्यानुभूति 'सुखद भ्रम' उत्पन्न करती है। अत "लॉक सोन्दर्यानुभूति को सुखद मानते हुए उसे भ्रान्ति रूप मे देखते है।'[5] अत लॉक ने सौन्दर्य का सम्बन्ध मिश्रित विचार को माना जो एक जटिल प्रत्यय है।

लाइबनीज ने सौन्दर्य-अनुभूति के विभिन्न स्तर- 'ऐन्द्रियक, भावात्मक, बौद्धिक एव आध्यात्मिक माने।"[6] स्पष्टत सौन्दर्यानुभूति का प्रथम सोपान ऐन्द्रिय अनुभूति ही है। दूसरे सोपान अनुभूति के पश्चात् गृहीता बौद्धिक रूप मे सौन्दर्य को ग्रहण करता है। तीसरे सोपान मे बौद्धिक रूप के ग्रहण के पश्चात् अन्तर्दृष्टि की ओर उन्मुख होना है। चौथे सोपान पर सार्वभौमिकता की अनुभूति होती है। वस्तुत यहॉ लाइबनीज रहस्योन्मुखी हो चले है।

शेफ्टबरी को अनुभववादी परम्परा का दार्शनिक माना जाता है। उन्होने 'एक आतरिक इन्द्रिय की कल्पना की है, जिसे वे सौन्दर्यानुभूति का साधन मानते है। इस आतरिक इन्द्रिय को शिक्षा आदि के द्वारा शिक्षित और विकसित किया जा सकता है। वे सौन्दर्य एव शिवम् को एक ही मानते है।"[7] अत वे अनुभववादी सिद्ध होते है। उन्ह अनुभववादी सम्प्रदाय का प्रवर्त्तक भी स्वीकार किया जाता है।

---

[1] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 26
[2] डॉ० निर्मला जैन रस-सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र पृष्ठ 53
[3] डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त रस-सिद्धान्त का पुनर्विवेचन पृष्ठ 127
[4] के०सी० पाण्डेय वेस्टर्न एस्थेटिक्स पृष्ठ 230-31
[5] के०सी० पाण्डेय वेस्टर्न एस्थेटिक्स पृष्ठ 230-31
[6] के०सी० पाण्डेय वेस्टर्न एस्थेटिक्स पृष्ठ 283
[7] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 27

बर्कले सौन्दर्य को इन्द्रियाभूत न मानकर तर्क मिश्रित इन्द्रियानुभूति ही स्वीकार करते है। ''उनके कथानुसार सौन्दर्य समन्विति, सामजस्य एव वस्तु के उपभोग का ही दृष्टि रूप है।''[1] अस्तु, उनकी सौन्दर्य–विषयक अवधारणा महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

बर्क की दृष्टि मे सौन्दर्य से अभिप्राय शरीर के उन गुणो से है जिनके कारण प्रेम या कुछ ऐसी ही भावना उत्पन्न होती है।'[2] वस्तुत वे लाजाइनस के उदात्त तत्त्व की अवधारणा की अनुभूतिपरक व्याख्या करके पूर्ण बनाते है। बर्क ने सौन्दर्य की सात विशिष्टताएँ तुलनात्मक रूप से लघुता, कोमलता, अवयवो मे विभिन्नता पारस्परिक सुसम्बद्धता, मसृणता, उज्ज्वलता और दीप्ति मानी हे।[3]

रेनाल्ड के 'विचार मे सभी प्रकार की कलाएँ मस्तिष्क की दो शक्तियो – कल्पना और सवेदना से सम्बद्ध होती हे।[4] वे अनुपात और समरूपता पर भी जोर देते है।

सार रूप मे यह कहा जा सकता है कि बाउमगार्टेन–पूर्व के आधुनिक कालीन–चिन्तको ने सौन्दर्य–सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ प्रस्तुत की।

(ii). बाउमगार्टेन के बाद के सौन्दर्य–चिन्तक

बाउमगार्टेन के ग्रन्थ 'ऐस्थेटिका' (1950 ई०) से सौन्दर्यशास्त्र की स्थापना एक स्वतत्र शास्त्र के रूप मे हुई। बाउमगार्टेन ने सौन्दर्य शास्त्र का ''अर्थ प्रस्तुत किया–'इन्द्रिया भूत परक विज्ञान' अथवा 'अज्ञात का प्रच्छन्न विज्ञान', 'भावात्मक ज्ञान', 'वह परिचायात्मक विज्ञान जो शब्दो के माध्यम से समुपस्थित न किया जा सके ।'[5] इस प्रकार उन्होने ऐन्द्रियबोध, भावात्मक सवेग से सौन्दर्य को जोडा। बाउमगार्टेन का महत्त्व सोन्दर्यशास्त्र को व्यवस्थित करने के कारण है।

जी० ई० लेसिग कला का उद्देश्य आनन्दपरक मानते है। ''उनके अनुसार काव्य कला और चित्रकला–देनो के माध्यम या गुण पर्याप्त भिन्न हे, जहॉ चित्रकला मे अनुकृति का

---

[1] के०सी० पाण्डेय वेस्टर्न एस्थेटिक्स पृष्ठ 249
[2] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 28
[3] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 28
[4] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 28
[5] डॉ० उषा गगाधर राव साजापुरकर हिन्दी रीति काव्य मे सोन्दर्यबोध पृष्ठ 84

माध्यम आकार और रग है, वहॉ काव्य का माध्यम ध्वनियॉ है।[1] लेसिग की इन कसौटियो पर ही कलाओ का सुव्यवस्थित वर्गीकरण सम्भव हो सका।

हर्डर ने चाक्षुष, श्रवण और स्पर्शेन्द्रिय को सोन्दर्य–बोध का आधार बनाया। उनके शब्दो मे–"पूर्ण सौन्दर्य–बोध अच्छी प्रकार से सन्तुलित और सहानुभूतिपूर्ण आत्मा का सहज विकास है।"[2] उनकी सौन्दर्य–सम्बन्धी अवधारणाऍ ऐन्द्रिक, बौद्धिक, एव आत्मिक धरातल पर विकसित हुई है।

काण्ट सौन्दर्यशास्त्र को दर्शन से जोडते है। वे मूलत दार्शनिक ही थे। उन्होने अनुभववादी और बुद्धिवादी दोनो धााराओ मे समन्वय का प्रयास किया। 'उनके अनुसार शुद्ध सौन्दर्य रूपात्मक होता है और आनुषगिक सौन्दर्य मे अर्थ तथा प्रयोजन का भी योग होता है।"[3] वस्तुत वे 'शुद्धरूप' को ही महत्त्व देते है।

हेगेल ने सौन्दर्यशास्त्र का विवेचन युगबोध के आधार पर किया। "युगो का विभाजन करते हुए हेगेल ने पहली अवस्था प्रतीकात्मक कला की मानी, दूसरी क्लासिक कला की और तीसरी अवस्था रोमाण्टिक कला की।"[4] हेगेल कलागत सौन्दर्य को 'ऐन्द्रिय जगत् के माध्यम से प्रकाशित होने वाला परम तत्त्व'[5] मानते है। वे 'सोन्दर्यानुभूति को अभिज्ञानात्मक'[6] कहते है। अस्तु, वे रोमाण्टिक कला को ही महत्त्व देते है।

शापनहावर के अनुसार "सौन्दर्यानुभूति बौद्धिक अनुभूति है, यह अनुभवातीत अनुभव है।"[7] वस्तुत शापनहावर ने सौन्दर्यानुभूति की बौद्धिक और आध्यात्मिक व्याख्या ही की है।

हरमन लात्ज ने "सौन्दर्य के तीन आधार–ऐन्द्रिय सामजस्य, सवेदना का आनन्द और चिन्तनात्मक सोन्दर्य माने हे।[1] इस प्रकार वे सोन्दर्य को आत्मा को आनन्द देने वाली भावना ही स्वीकार करते है।

---

[1] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 28
[2] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 28
[3] निर्मला जैन रस–सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र पृष्ठ 54
[4] निर्मला जैन रस–सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र पृष्ठ 55
[5] के०सी० पाण्डेय वेर्स्टन एस्थेटिक्स पृष्ठ 394
[6] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 29
[7] के०सी० पाण्डेय वेर्स्टन एस्थेटिक्स पृष्ठ 478

नीत्शे के अनुसार – कला एक उन्नत जीवन की कल्पनाओ और कामनाओ के द्वारा हमारी पाशविक वृत्तियो की उत्तेजित कर देती है।"[2] वे सोन्दर्य को भ्रममूलक मानते है। इनकी विचारधारा अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित है।

टॉलस्टाय के अनुसार "कलात्मक सृजन ऐसी मानसिक क्रिया है, जो अस्पष्ट भावनाओ या विचारो को इतना स्पष्ट रूप प्रदान कर देती है कि ये भावनाएँ दूसरे व्यक्तियो तक सम्प्रेषित हो जाती है।"[3] इस प्रकार वे सम्प्रेषण–सिद्धान्त को प्रतिपादित करते है। वे कला को नैतिक और आनन्ददायक मानते है।

बोसाके की 'सौन्दर्यशास्त्र का इतिहास एक महत्वपूर्ण कृति है। सौन्दर्य की परिभाषा देते हुए वे कहते है– "सुन्दर वह हे जिसमे चारित्र्य या वैशिष्ट्रयमूलक प्रकाश रहता है। वह ऐन्द्रिय या कल्पना–रूप मे प्रकाशित, वस्तु–धर्म है। उसे प्रकाशित होने के लिए कोई माध्यम चाहिए। अभिव्यक्त सौन्दर्य मे सार्वजनीन अथवा अमूर्त्त व्यजनात्मकता सनिहित रहती है।"[4] थियोडोर लिप्स ने सौन्दर्य के क्षेत्र मे समानुभूति के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया, लिप्स के अनुसार–"प्रत्येक सौन्दर्यमूलक वस्तु जीवित सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है, इसीलिए वे हमारे मनोभावो के अनुरूप सह–सयोजन करने मे सहायक होती हे।"[5] अस्तु, लिप्स का विवेचन मनोविज्ञान की परिधि मे सम्पन्न होता है।

क्रोचे कला मे वस्तु या भाव के आधार पर विवेचन नही करते। "वस्तुगत भेदो का सम्बन्ध वे जीवन से मानते है और भागवत भेदो का सम्बन्ध मनोविज्ञान से।"[6] कला–विवेचन मे इसको निरर्थक मानते है। क्रोचे अभिव्यजना को कल्पना का पर्याय मानते है। क्रोचे के अनुसार "सौन्दर्य का बुद्धि या नैतिकता से कोई सम्बन्ध नही। अभिव्यजना ही सौन्दर्य है, असफल अभिव्यजना अभिव्यजना ही नही है। अभिव्यजना या तो होती है या नही। अत अभिव्यजना ही सौन्दर्य है। सौन्दर्य परिवेश मे न होकर मानसिक कल्पना का प्रत्यक्षीकरण है।'[7] वे सहजानुभूति ज्ञान से कला के सम्बन्ध को व्याख्यायित करते है। 'सौन्दर्यात्मक सृजन का

---

[1] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 29
[2] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 29
[3] परमजीत सिह पाहवा सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम पृष्ठ 30
[4] शिवबालक राय काव्य मे सौन्दर्य और उदात्त तत्व पृष्ठ 15
[5] डॉ० राजेन्द्र प्रताप सिह सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य परम्परा पृष्ठ 147
[6] निर्मला जैन रस–सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र पृष्ठ 56
[7] डॉ० हरिकृष्ण पुरोहित आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव पृष्ठ 271

कार्य क्रोचे ने चार अवस्थाओ मे होने वाला माना है– प्रभाव, अभिव्यजना, सुखवारी साहचर्य था सौन्दर्यात्मक तथ्य का ध्वनि या स्वर के रूप मे परिवर्तन।"[1] अस्तु, क्रोचे के 'अभिव्यजनावाद' को सौन्दर्य के क्षेत्र मे प्रमुख देन माना जा सकता है।

क्रोचे की मान्यताओ से पश्चिम मे जिस कलावाद का जन्म हुआ, उसका अनुसरण बाद मे रोजन फ्राई, क्लाइव बेल, ए० सी० ब्रेडले, वाल्टर पेटर और आर० जीव कॉलिगवुड प्रभृति चिन्तको ने किया।[2] बेलिस्की, काडवैल, प्लेखानोव आदि मार्क्सवादी विचारक है। इनका सौन्दर्य सम्बन्धी दृष्टिकोण सामाजिक है। प्लेखनोव के अनुसार 'किसी कलाकृति का आनदोपभोग अपने प्रकार के उपयोगितापूर्ण चित्रण के आनदोपभोग मे है।[3] वस्तुत मार्क्सवादियो की सौन्दर्य सम्बन्धी विवेचना जीवन और समाज के सापेक्ष है।

प्रकृतिवादी विचारको मे आइ० ए० रिचर्ड्स के अनुसार "जीवनानुभव की अपेक्षा अधिक जटिल और सश्लिष्ट अनुभूति होती हे।"[4] वस्तुत रिचर्ड्स ने सौन्दर्यानुभूति के विस्तृत परिवेश के अर्न्तगत सीमाकित करने का कार्य किया। जान ड्यूई के अनुसार "सौन्दर्यानुभूति साधारण अनुभवो का उत्तर विकास और चारुवर सघटना है।[5] इनका विवेचन रिचड्र्स की ही परम्परा को आगे बढाता है। सूजन लेगर का फिलासफी इन ए न्यू की (1942) आदि ग्रन्थ भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। पर इस विवेचन को छायावादी समय सीमा तक ही समेटना उचित होगा।

सार रूप मे यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य की पाश्चात्य चितन परम्परा मे एक निरतरता मिलती है। यह निरतरता सतत् प्रवाहशील है। प्रथमत उनका विवेचन वस्तु, रूप और चेतना के आधार पर मिलता है। उन्नीसवी शताब्दी तक आते – आते सौन्दर्यशास्त्र पूर्णत प्रतिष्ठित हो चला था। धर्म दर्शन के अतिरिक्त विज्ञान, मनोविज्ञान, समाज–विज्ञान आदि के प्रभाव मे उनका चितन विकसित होता रहा है। अपनी विविधता ओर मानव विज्ञान के नजदीक होने के कारण उनका सौदर्य चितन आज भी आर्कषण का केन्द्र है। अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के चलते वे तर्क– विर्तक के केन्द्र मे अपने चिन्तन का विकास सम्पन्न करते है। अस्तु, यह

---

[1] डॉ० चन्द्रकला सौन्दर्य शास्त्र स्वरूप एव विकास पृष्ठ 141
[2] निर्मला जैन रस–सिद्धान्त और सोन्दर्यशास्त्र पृष्ठ 56
[3] डॉ० गोविन्द पाल सिह महादेवी के काव्य मे सौन्दर्य भावना पृष्ठ 14
[4] निर्मला जैन रस–सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र पृष्ठ 58
[5] निर्मला जैन रस–सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र पृष्ठ 58

कहा जा सकता है कि उनका चितन विविधता और सर्वागीणता के चलते महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

आधुनिक हिन्दी कविता मे सौन्दर्यानुभूति

पुनर्जागरण के पश्चात् और भारतेन्दु युग से आधुनिक हिन्दी कविता का उदय माना जा सकता है। भारतेन्दु पूर्व के कवियो मे भक्ति और श्रृगार आदि की प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इनकी काव्य भाषा मुख्यत ब्रज ही रही। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भाषा को ब्रज भाषा, हिन्दी बोलियो तथा उर्दू–फारसी के अत्यधिक प्रभाव से मुक्त किया। उस युग के साहित्यकारो ने भाषा को परिष्कृत एव शिष्ट रूप दिया। जिसके फलस्वरूप वह नवीन युग के सदेशो को आत्मसात् और प्रसारित कर सकी। भाव की दृष्टि से साहित्य को भक्ति श्रृगार और नीति की जकडन से मुक्त किया गया। इनकी विचारधारा पश्चिम के भौतिकतावादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रभावित है। पर ईसाई धर्म प्रचार के विरूद्ध स्वरक्षात्मक प्रवृत्ति भी देखी जा सकती है। धार्मिक सस्थाओ के चलते उनकी धार्मिक–भावना भी प्रबल थी। यद्यपि यह भावना रूढियो से मुक्त थी। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रताप नारायण मिश्र, जगमोहन सिह, अम्बिकादत्त व्यास और रायकृष्ण दास इस युग के प्रमुख कवियो मे से है। श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, अयोध्या सिह उपाध्याय 'हरिऔध आदि का भी आगमन हो चुका था। द्विवेदी युग मे मानक हिन्दी प्रतिष्ठित हो चुकी थी। भारतेन्दु युग जहाँ धार्मिक चेतना से वही द्विवेदी युग सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना से सम्पन्न दिखता है। डॉ० रामकुमार वर्मा के मतानुसार प० महावीर प्रसाद द्विवेदी के सतत् प्रयत्नो से खडी बोली कविता ने इतनी शक्ति सग्रह की कि वह अब आन्तरिक सघर्षों और मानसिक द्वन्दो को प्रकट करने मे समर्थ हो सकी ओर छायावाद को सच्ची अभिव्यक्ति दे सकी।"[1] द्विवेदीयुगीन कवियो मे मैथलीशरण गुप्त, गोपाल शरण सिह, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही', लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि प्रमुख है। श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त और हरिऔध की तरह रामनरेश त्रिपाठी मुकुटधर पाण्डेय, नाथूराम शर्मा 'शकर' आदि अपना रास्ता बदल चुके थे। इन्ही की नई दृष्टि का अवलम्बन लेकर छायावाद प्रतिष्ठित हुआ। अत आधुनिक हिन्दी कविता मे सौन्दर्यानुभूति के विवेचन के क्रम मे इन्ही को

---

[1] डॉ० राम कुमार वर्मा साहित्य चिन्तन पृष्ठ 125

लेकर चलना उचित होगा। हरिऔध के प्रकृति – सौन्दर्य को प्रिय प्रवास' मे देखा जा सकता है। द्रष्टव्य है एक उदाहरण –

दिवस का अवसान समीप था।

गगन था कुछ लोहित हो चला।।

तरु शिखा पर थी अब राजती।

कमलिनी – कुल– वल्लभ की प्रभा।।[1]

इस उत्कृष्ट सौन्दर्य – वर्णन मे छायावाद के सौन्दर्य चेतना की ध्वनि मिलती है। मैथलीशरण गुप्त मातृभूमि ' कविता मे राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत है और ईश वदना की जगह राष्ट वदना करते है– "नीलाबरा परिधान हरित पट सुन्दर है ।"[2]

यहॉ इनके वर्ण और भाव – विन्यास को प्रसाद के आरम्भिक काव्य से जोडकर देखा जा सकता है।

वस्तुत मैथलीशरण गुप्त वैष्णव दर्शन की युगानुकूल प्रगतिशीलता से स्पदित होते है। साकेत मे जहॉ नारी की प्रतिष्ठा हुई है वही राम के चरित्र के आलोक मे गॉधी के चितन को पुष्ट करते है। 'यशोधरा मे यही कार्य वे बुद्ध के चरित्र के माध्यम से करते है। धर्म के आडम्बरो पर प्रहार कर ईश्वर को दीन–दुखियो मे खोजना उनकी 'स्वयमागत' कविता का विषय है। मुकुटधर पाण्डेय 'दीन हीन के अश्रुनीर' तथा 'पतितो के परिताप पीर' मे ईश्वर के दर्शन करते है।"[3] हरिऔध के 'प्रियप्रवास' के कृष्ण आधुनिक नायक है जो कर्मयोगी है। वे राष्ट्र और मानवता के उत्थान मे समर्पित है। प्रियप्रवास' की राधा युग के पीडितो की पुकार से द्रवित होती है। कवि कहता है –

वे छाया थी सुजन सिर की शासिका थी खलो की

कगालो की परम निधि थी ओषधी पीडितो की

दोनो की थी भगिनी जननि थी आश्रितो की

---

[1] डॉ० नगेन्द्र (स०) हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 501

[2] डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी प्रसाद–निराला–अज्ञेय पृष्ठ 12

[3] डॉ० हरिकृष्ण पुरोहित आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव पृष्ठ 74

अराध्या थी ब्रज अवनि की विश्व की प्रेमिका थी।[1]

विश्व– प्रेम मानव– प्रेम की भूमिका यहॉ मिलती है। आगे चलकर छायावादी भी विश्वात्मा के दर्शन प्रकृति मे करते है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार नय ढग की रचनाएँ सवत 1970-71 से ही निकलने लगी थी जिनमे से कुछ के अन्दर रहस्यभावना रहती है।[2] उनका यह कथन मैथलीशरण गुप्त मुकुटधर पाण्डेय प० बदरीनाथ भटट ओर पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के केन्द्र मे है। अपने वर्ण – विन्यास प्रतीकात्मकता प्रकृति – वर्णन सगीतात्मकता आदि दृष्टि से उनका काव्य छायावाद के आगमन का सकेत देता है। मेथलीशरण गुप्त के पुष्पाजलि (1917 ई०) तथा अनुरोध (1915 ई०) आदि एव मुकुटधर पाण्डय की ऑसू (1917 ई०) तथा द्वार (1910 ई०) मे रहस्य के साथ सौन्दर्य के निदर्शन होते है। प० बदरीनाथ भटट पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि की कुछ कविताओ मे भी नूतनता का समावेश है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 'ये कवि जगत और जीवन के विस्तृत क्षेत्र के बीच नयी कविता का सचार चाहते थे। ये प्रकृति के साधारण असाधारण सब रूपो पर प्रेम–दृष्टि डालकर, उसके सच्चे सकेतो को परखकर, भाषा को अधिक चित्रमय सजीव ओर मार्मिक रूप देकर कविता का एक अकृत्रिम स्वच्छन्द मार्ग निकाल रहे थे। भक्ति क्षेत्र मे उपास्य की एक देशीय या धर्म विशेष मे प्रतिष्ठित भावना के स्थान पर सार्वभौम भावना की आर बढ रहे थे जिसमे सुन्दर रहस्यात्मक सकेत भी रहते थे। अत हिन्दी कविता की नयी धारा का प्रवर्त्तक इन्ही को विशेषत श्री मैथलीशरण गुप्त और मुकुटधर पाण्डेय को समझना चाहिए।[3] वस्तुत शुक्ल के कथन का आशय यह है कि छायावादी ढग की कविताओ का प्रारम्भ इन्ही से होता है। यह अवश्य है कि परिवर्तन और सशोधन से छायावादियो की सोन्दर्यानुभूति उत्कृष्टतम रूप मे सामने आई।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता हे कि भारतेन्दु ओर द्विवेदी युग मे क्रमश धार्मिक भावना तथा सामाजिक ओर राजनेतिक भावना उत्कृष्टम रूप मे थी। छायावाद और स्वच्छन्दतावाद का विकास साथ–साथ होता है। छायावाद मे रहस्यवाद की भावना प्रबल रहती

---

[1] डॉ० हरिकृष्ण पुरोहित आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव पृष्ठ 77
[2] डॉ० उदयभानु सिह (स०) छायावाद पृष्ठ 10
[3] डॉ० उदयभानु सिह (स०) छायावाद पृष्ठ 11

है और स्वच्छन्दतावाद मे सास्कृतिक तथा राष्ट्रीय चेतना आदि की। कविता स्थूलता से सूक्ष्मता तथा बधन से मुक्ति की ओर अग्रसर होती है। प्रकृति–चित्रण भाषा शैली आदि का भी विकास दिखता है। सौन्दर्यानुभूति के उपकरण – प्रकृति, मानव, दर्शन, कल्पना, प्रतीक, बिम्ब आदि मे भी नैरन्तर्य विकास परिलक्षित होता हे। इस प्रकार छायावाद की पूर्वपीठिका का निर्धारण इस काल मे सम्पन्न होता है।

छायावादी सौन्दर्यानुभूति

समस्त छायावादी काव्य मे रहस्यवाद, अभिव्यजनावाद, स्वच्छदतावाद, अध्यात्मवाद और प्रकृतिवाद आदि धाराएॅ प्रवाहित है। उनकी सोन्दर्यानुभूति प्रखर है। सौन्दर्य के प्रति ये कवि सहज और सचेत है। सौन्दर्य – दृष्टि की प्रचुर विविधता के चलते इनका काव्य समृद्ध होता है। वस्तुत ' कविता का सम्बन्ध अन्तर्जगत से है और वह कल्पना और भावो की ऐसी सहज अभिव्यक्ति है जो मानव–जीवन के अनेक भागो के आरोहवरोहो का सौन्दर्य अनुभूति के धरातल पर स्पष्ट कर देती है।'[1] छायावादियो की सौन्दर्यानुभूति हृदय की राग–वृत्ति से परिचालित होती है तथा राग–विराग, सयोग–वियोग आदि धरातलो पर सम्पन्न होती है। अत उनके काव्य मे मनुष्य के भावात्मक सवेगो को पर्याप्त प्रतिष्ठा मिली है। प्रकृति मे परिव्याप्त समस्त पदार्थो का अपना एक सौन्दर्य है जिसका कर्ता अपरोक्ष सत्ता है। काव्य का सौन्दर्य मानवीय सृष्टि है और उसका कर्ता परोक्ष (कवि) है। कवि प्रकृति तथा मानव के बाह्यान्तर सौन्दर्य से प्रेरित होकर काव्य – सृजन करता है। काव्य मे सौन्दर्य, काव्य से भिन्न कोई वस्तु नही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सुन्दर और असुन्दर पर अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए है – ''काव्य मे सुन्दर और कुरूप – ये दो ही पक्ष हे। अन्य शब्द जैसे, पाप–पुण्य, शुभ–अशुभ, मगल–अमगल ओर उपयोगी–अनुपयोगी इत्यादि काव्य – क्षेत्र से बाहर के है।'[2] वस्तुत जब सौन्दर्य अनुपातिक न हो, उसका प्रकटन ईर्ष्या ओर द्वेष से हो और वस्तुवाद की अतिशयता हो तब असुन्दर की सृष्टि होती है। सुन्दर तथा असुन्दर के प्रतीक युग–परिवर्तन के साथ परिवर्तित होते रहते है। छायावादियो का सौन्दर्य–बोध राग–वृत्ति से सचालित है। अत

---

[1] डॉ० रामकुमार वर्मा साहित्य चिन्तन पृष्ठ 9

[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि भाग 1 पृष्ठ 167

इनके काव्य मे जीवन के नित्य और शाश्वत स्वरूप के निदर्शन होते है। ये कवि प्रकृति तथा मानव मे सौन्दर्य की खोज और काव्य मे उसकी लयात्मक सृष्टि करने मे सफल सिद्ध हुए है। रहस्य और अध्यात्म को छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति कहा जा सकता है। अत लोक और लोकोत्तर दोनो धरातलो पर इनकी सौन्दर्यानुभूति दृष्टिगोचर होती है। प्रस्तुत है प्रसाद, पत, निराला और महादेवी की सौन्दर्यानुभूति का क्रमवार विवेचन –

जयशकर प्रसाद

जयशकर प्रसाद के काव्य मे छायावाद की समस्त प्रवृत्तियॉ पूर्णता के साथ विद्यमान है। प्रसाद के काव्य मे छायावादी काव्य–पद्धति का निरतर विकास दृष्टिगोचर होता है। उनके गद्य साहित्य तथा काव्य की भूमिकाओ से उनके साहित्यिक दृष्टिकोण को समझा जा सकता है। प्रसाद के साहित्य मे सौन्दर्य–सम्बन्धी अवधारणाऍ विद्यमान है। जिससे उनके साहित्यिक दृष्टिकोण को समझा तथा परखा जा सकता है। 'समुद–सन्तरण' शीर्षक कहानी मे प्रसाद ने सुन्दर और कुरूप की निर्णय–क्षमता को सौन्दर्य–विवेचना अथवा सौन्दर्य–विवेक नाम दिया है।[1] वे भारतीय तथा पाश्चात्य सौन्दर्यानुभूति पर विचार करते हुए कहते है–

"ग्रीस द्वारा प्रचलित पश्चिमी सौन्दर्यानुभूति बाह्य को, मूर्त्त की विशेषता देकर उसकी सीमा मे ही पूर्ण बनाने की चेष्टा करती है और भारतीय विचारधारा ज्ञानात्मक होने के कारण मूर्त्त और अमूर्त्त का भेद हटाते हुए बाह्य और आभ्यन्तर का एकीकरण करने का प्रयत्न करती है।"[2]

इस बाह्य और आभ्यन्तर का एकीकृत रूप उनके काव्य मे निदर्शित होता है। प्रसाद के अनुसार "सस्कृति सौन्दर्य–बोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है।"[3] इस प्रकार प्रसाद ने सौन्दर्य के प्रति सास्कृतिकदृष्टि विकसित की। उनका भारतीय सस्कृति के प्रति झुकाव, सोन्दर्य के प्रति अनुरागमयी दृष्टिकोण ओर शेव दर्शन से नि सृत आनन्दवाद ने उनके चिन्तन को पुष्ट किया। प्रसाद सौन्दर्य के मानसिक पक्ष को महत्त्व देते हे। 'ककाल' उपन्यास का पात्र मगलदेव कहता है–

---

[1] जयशकर प्रसाद आकाशदीप पृष्ठ 106
[2] उपरिवत काव्य कला तथा अ य निबध पृष्ठ 36
[3] उपरिवत उपरिवत पृष्ठ 28

सभ्यता सौन्दर्य की जिज्ञासा है। शारीरिक ओर आलकारिक सौन्दर्य प्राथमिक है, चरम सौन्दर्य मानसिक है।'[1]

मानसिक सौन्दर्य को प्रधानता देने के चलते प्रसाद सोन्दर्य की आध्यात्मिक प्रतिष्ठा करते है। वे सुन्दरता मे परम तत्त्व को देखते है। प्रसाद ऐन्द्रिय सीमाओ मे बॅधे सत्य को क्षणभगुर और परम् तत्त्व के सौन्दर्य को शाश्वत मानते है–

क्षणभगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मत, देखो देखो।

उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र मे छाई है।[2]

उनकी यह सौन्दर्यानुभूति विशेष प्रकार के मानसिक धरातल पर सम्पन्न होती है। साथ ही साथ विश्वात्मा की छवि प्रकृति के प्रत्येक अश मे देखते है।

प्रसाद के व्यक्तित्व की आन्तरिक सरचना मे अवस्थित राग–विराग के द्वैत से परिचित होकर उनके सौन्दर्य–दृष्टि को समझा जा सकता है। प्रसाद की उत्कृष्ट कल्पना उनकी सौन्दर्यानुभूति मे सहायिका बनती है। उनका दार्शनिक दृष्टिकोण उनके सौन्दर्य को लोकोत्तर धरातल पर प्रतिष्ठित करता है। उनकी सौन्दर्य–दृष्टि क्रमश विकसित होती है। अपनी काव्य–साधना के प्रथम चरण मे प्रसाद पर ब्रजभाषा का प्रभाव दिखता है। 'ऑसू' मे प्रणय, निराशा और विरह की तीव्रता है। ऑसू' लाक्षणिकता और प्रतीक पद्धति का सुन्दर प्रयोग हुआ हे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'ऑसू' के बारे मे कहते है–

''अभिव्यजना की प्रगल्भता और विचित्रता के भीतर प्रेम–वेदना की दिव्य विभूति का, विश्व मे उसके मगल प्रभाव का, सुख और दु ख दोनो को अपनाने की उसकी अपार शक्ति का और उसकी छाया मे सौन्दर्य और मगल के सगम का भी आभास पाया जाता है।'[3]

'ऑसू' के प्रकाशन के आठ वर्ष बाद इसका दूसरा सस्करण निकला। प्रसाद ने इसमे आध्यात्मिक प्रतीको के माध्यम से लोकोत्तर व्यजना भी रखी। 'झरना' और 'लहर' मे प्रकृति के बाह्य और आतरिक रूपो की सरस और आनदवाद की प्रतिष्ठा करते है।

[1] जयशकर प्रसाद कंकाल पृष्ठ 283
[2] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 (प्रेम पथिक) पृष्ठ 101
[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 681

प्रसाद की सौन्दर्यानुभूति प्रकृति, मानव, नारी ओर परम तत्त्व आदि का आलम्बन लेकर प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष, स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढती है। इस प्रक्रिया मे उनकी सौन्दर्यानुभूति हृदय बुद्धि और चेतना से सक्रमित होती चलती है।

प्रकृति और नारी को छायावादी सौन्दर्य–चेतना का प्रमुख आलम्बन माना जा सकता है। अपनी राग–वृत्ति के चलते प्रसाद उसमे माधुर्य और लोच भरते है। छायावादी कविता मे नारी–रूप और प्रकृति–सौन्दर्य एक–प्राण हो गये है। जैसे–

उषा की पहली लेखा कान्त, माधुरी से भीगी भर मोद,

मदभरी जैसे उठे सलज्ज, भोर की तारक–द्युति की गोद।[1]

यहॉ नारी सौन्दर्य पर प्राकृतिक उपादानो के आरोपण के कारण श्रद्धा की मासलता से अधिक उसके सम्पूर्ण सौन्दर्य का प्रभाव अन्तकरण पर अकित हो जाता है। किन्तु जहॉ प्रकृति–चित्रण का मिश्रण नही हो पाता वहॉ मासलता परिलक्षित होती है–

खुले मसृण भुजमूलो से,

वह आमत्रण सा मिलता,

उन्नत वक्षो मे आलिगन,

सुख लहरो सा तिरता।

नीचे हो उठता जो धीमे,

धीमे नि श्वासो मे,

जीवन का ज्यो ज्वार उठ रहा,

हितकर के हासो मे।[2]

---

[1] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ 457

[2] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 पृष्ठ 457

प्रसाद की सौन्दर्यानुभूति आनदवादी है। ऐसा कश्मीरी शैव दर्शन की शाखा 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' से प्रभावित होने के चलते है। वे इच्छा, कर्म और ज्ञान मे सामजस्य होने पर समरसता की अनुभूति करते है। इसी धरातल पर वे आनद की अनुभूति भी करते है। इच्छा, कर्म और ज्ञान के सम्बद्ध होते ही उनका विराट साकार होता है

शक्ति तरग प्रलय पावक सा

उस त्रिकोण मे निरूर उठा सा

श्रृग और डमरू निनाद बस

सकल विश्व मे बिखर उठा सा[1]

सक्षेपत यह कहा जा सकता है कि प्रसाद की सौन्दर्यानुभूति उनके सास्कृतिक बोध से विकसित होकर मनोमय लोक मे विचरती है। उनकी राग–वृत्ति, कल्पना और शैव धर्म का आनदवाद उनकी सौन्दर्यानुभूति को व्यापकत्व प्रदान करते है। प्रकृति मे विश्वात्मा की छवि देखने के आग्रही कवि की सौन्दर्य चेतना क्रमश प्रखर होती है। 'द्विवेदी युग' की इतिवृत्तात्मकता छोडकर, खडी बोली अपनाकर विभिन्न प्रयोगो को मुखरित करता हुआ कवि आगे बढता है। ऑसू मे वेदना को प्रतिष्ठित कर प्रसाद प्रकृति के उपादानो का आलम्बन ले रहस्य–दृष्टि विकसित कर लेते है। 'झरना' और 'लहर' की यह दृष्टि 'कामायनी' मे दार्शनिकता से ओत–प्रोत हो जाती है। इस प्रकार उनकी सौन्दर्यानुभूति लौकिक और अलौकिक धरातलो पर सम्पन्न होती है।

सुमित्रानदन पत

प्रकृति और सौन्दर्य के कवि के नाम से जाने वाले पत का काव्य विभिन्न सोपानो से गुजरता है। प्रारम्भ मे वे हरिऔध और मैथलीशरण गुप्त से प्रभावित है। तत्पश्चात् कालिदास, रवीन्द्रनाथ टैगोर, शैली, कीट्स और टेनीसन आदि से प्रभावित दिखते है। छायावाद

---

[1] प्रसाद ग्रन्थावली खण्ड 1 (कामायनी रहस्य) पृष्ठ 683

युग की समाप्ति के पश्चात् वे प्रगतिवादी हो जाते है। पुन गॉधी, श्री अरविन्द, विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहस, टॉलस्टॉय आदि की विचार धारा से टकराते है। पत जिससे जितने प्रभावित है, उसे स्वीकार भी करते है। विचारधाराओ से टकराने के क्रम मे वे अपना अस्तित्व नही भूलते। उनका कवि रूप सदैव सजग और तत्पर रहता है। पत के अनुसार "सस्कृति, सौन्दर्य–बोध आदि हमारे अन्तर्मन के सगठन है। [1] पत प्रवृत्ति मूलक सौन्दर्य–चेतना के आग्रही है। उनकी दृष्टि मे सौन्दर्य के चार तात्त्विक रूप है – नैसर्गिक सौन्दर्य, सामाजिक सौन्दर्य, मानसिक सौन्दर्य और आध्यात्मिक सौन्दर्य।[2] उनकी सौन्दर्य चेतना के विकास मे नैसर्गिक सौन्दर्य या प्रकृति सौन्दर्य का विशेष योगदान है। पत मानते है कि "वीणा–काल मे जहॉ प्राकतिक सौन्दर्य की प्रधानता है, वहॉ 'पल्लव' मे भावना के सौन्दर्य की।"[3] इस प्रकृति सौन्दर्य मे वे नारी रूप का भी मिश्रण करते है–

'उस फैली हरियाली मे

कौन अकेली खेल रही, मॉ,

वह अपनी वय वाली मे। [4]

तत्पश्चात्, पत सामाजिक सोन्दर्य की ओर अग्रसित होते है –

"ललित कला, कुत्सित कुरूप जग का जो रूप करे निर्माण,

वह दर्शन–विज्ञान, मनुजता का हो जिससे चिर कल्याण।"[5]

यहॉ कला और लोक–मगल को जोडकर कर देखते है।

सामाजिक सौन्दर्य की प्रखरता पत मे कम हे। वस्तुत प्राकृतिक सौन्दर्य के पश्चात् मानसिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य को वे प्रतिष्ठित करते है। मानसिक सौन्दर्य स्वयभू होता है जिसके चलते पत की कल्पना को विविध आयाम मिलता हे अपने मानसिक सौन्दर्य पर वे काव्यात्मक टिप्पणी करते हे –

---

[1] सुमित्रानदन पत उत्तरा पृष्ठ 16

[2] उपरिवत चिदम्बरा पृष्ठ 19

[3] उपरिवत गद्यपथ पृष्ठ 126

[4] उपरिवत आधुनिक कवि पृष्ठ 19

[5] उपरिवत युगवाणी पृष्ठ 15

"ज्यो झरते हरसिगार झर–झर

ज्यो हित फुहार कण फहर–फहर

मेरे मानस से सुन्दरता,

नि सृत होती त्यो निखर निखर। [1]

अपनी आध्यात्मिक कविताओ मे वे प्राचीन भारतीय दर्शन से लेकर अरविन्द–दर्शन तक टकराते है। वे ईश्वर और जीव को अभिन्न मानते हुए कहते है–

"वह है, वह नही, अनिर्वच,

जग उसमे, वह जग मे लय

साकार चेतना–सी वह,

जिसमे अचेत जीवाशय।"[2]

अन्य छायावादी कवियो की तरह पत की सौन्दर्य–चेतना का आधार भी प्रकृति और नारी है। पत मे सौन्दर्य के प्रति विस्मय और जिज्ञासा की अपूर्व अभिव्यक्ति हुई है –

'मधुर, मथर, मृदु, मौन।

ग्रीव तिर्यक्, चम्पक–द्युति गात,

नयन मुकुलित, नतमुख जलजात,

देह–छवि छाया मे दिन–रात,

कहॉ रहती तुम कौन?"[3]

---

[1] उपरिवत चिदम्बरा पृष्ठ 62

[2] सुमित्रानदन पत पत ग्रन्थावली भाग 1 पृष्ठ 270

[3] उपरिवत युगान्त पृष्ठ 52

यहॉ सौन्दर्य के प्रति शिशु–सुलभ जिज्ञासा और विस्मय के साथ प्रकृति पर नारी के रूप–व्यापार का आरोप भी है। नारी का यह रूप–लावण्य पूरी प्रकृति मे प्रसारित होता है–

"खोल सौरभ का मृदु कच जाल,

सूँखता होगा अनिल समोद,

सीखते होगे उड खग–बाल

तुम्ही से कलख, केलि, विनोद,

चूम लघु पद चचलता, प्राण।

फूटते होगे नवजल स्रोत,

मुकुल बनती होगी मुस्कान,

प्रिये, प्राणो की प्राण। [1]

नारी की ऑख मे पत मृदुता और कमल का नैसर्गिक सौन्दर्य देखते है–

"नील–कमल–सी है वे ऑख।

डूबे जिनके मधु मे पॉख–

मधु मे मन–मधुकर के पॉख,

निज–जलज सी है वे ऑख। [2]

यहॉ प्राकृतिक उपमान मे मानवीय सौन्दर्य समाहित है।

निष्कर्षत पत सौन्दर्य के स्रष्टा हे। वे सौन्दर्य मे ही जीते और रमते है। उनका सौन्दर्य सहज रूप से प्रसरित होता है। प्रकृति, नारी आदि का आलम्बन लेकर वे सौन्दर्य की

---

[1] उपरिवत पल्लविनी पृष्ठ 147
[2] उपरिवत पत ग्रथावली भाग1 पृष्ठ 253

सृष्टि करते है। पत की सौन्दर्य–दृष्टि व्यापक है। वे नैसर्गिक, सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य से गुजरते है। सत्य–शिव और सुन्दर का समावेश उनके काव्य मे दिखता हे। आन्तरिक और बाह्य दोनो धरातलो पर उनका सौन्दर्य–बोध सम्पन्न होता है। पत की सोन्दर्यानुभूति उनके 'अर्न्तमन का सगठन बनकर प्रस्तुत होती हे।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की कविताओ मे छायावादी और प्रगतिवादी स्तर समान रूप से मुखरित है। रूढि भजक निराला को शक्ति, पौरूष और मुक्ति का कवि भी कहा जा सकता है। जितने प्रयोग निराला ने किये उतने किसी छायावादी कवि ने नही किये। अपनी विविधता के चलते निराला की सौन्दर्य चेतना भी विभिन्न धरातलो पर स्पष्ट हुई है। निराला की कविता मे भाव, कर्म और रूप सौन्दर्य की अद्‌भुत सृष्टि हुई हे। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल सौन्दर्य के प्रसार पर दृष्टि डालते हुए कहते है–

''कवि की दृष्टि तो सौन्दर्य की ओर जाती है, चाहे वह जहॉ हो – वस्तुओ के रूप–रग मे अथवा मनुष्यो के मन, वचन तथा कर्म मे। कविता केवल वस्तुओ के रग–रूप के सौन्दर्य की छटा नही दिखाती प्रत्युत कर्म और मनोवृत्ति के सौन्दर्य के भी अत्यन्त मार्मिक दृष्टि सामने रखती है।''[1]

आचार्य शुक्ल की इस कसौटी पर निराला खरे उतरते है। यही कारण है कि डॉ० रामविलास शर्मा के वे प्रिय कवि बन जाते है। निराला के अनुसार ''सौन्दर्य की ही कल्पना ललित कला का मुख्य आधार है।[2] निराल सोन्दर्य के उचित भावन के लिए 'आशिक अनासक्ति' की अनिवार्यता पर बल देते है। विद्यापति और चण्डीदास की विवेचना के क्रम मे वे कहते है–

''कवि की यह बहुत बडी शक्ति है कि वह विषय से अपनी सत्ता को पृथक् रखकर उसका विश्लेषण भी करे, और फिर इच्छानुसार उससे मिलकर एक भी हो जाये।

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि भाग 1 पृष्ठ 166-167
[2] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला चाबुक पृष्ठ 28

विद्यापति मे कवि के ये दोनो गुण थे। वह सौन्दर्य के द्रष्टा भी जबरदस्त थे और सौन्दर्य मे तन्मय हो जाने की शक्ति भी उनमे अलोकिक थी।''[1] यह तन्मयता और तटस्थता उनके काव्य मे निदर्शित होती है। वे रूप को सौन्दर्यका चाक्षुष पक्ष मानते है। निराला काव्य मे कला और भाव दोनो पक्ष के हिमायती थे। कविता उनके लिए शास्त्र सम्मत वस्तु न होकर भावो का आरोहावरोह है। अस्तु, निराला काव्य मे सम्पूर्ण सौन्दर्य के आग्रही थे।

छायावादी निराला की सौन्दर्यानुभूति लौकिक और अलौकिक दोनो धरातनो पर सम्पन्न होती है। कही–कही यह अनुभूति घुल–मिल कर एक भी हुई है। प्रकृति और नारी के माध्यम से वे छायावादी सौन्दर्य–दृष्टि की सृष्टि करते है। प्रकृति पर मानवीकरण के द्वारा नारी के रूप–व्यापार का आरोपण उनकी विशिष्ट प्रवृत्ति है। प्रस्तुत है एक उदाहरण–

''किस अनत का नीला अचल हिला–हिला कर,

जाती हो तुम सजी मण्डलाकार?

एक रागिनी मे अपना स्वर मिला – मिलाकर,

गाती हो ये कैसे गीत उवार?

सोह रहा है हरा क्षीण कटि मे, अम्बर शेवाल,

गाती आप, आप देती सुकुमार करो से ताल।''[2]

यहॉ प्रकृति सौन्दर्य पर नारी के रूप और व्यापार का आरोप है।

निराला नारी के मासल–सौन्दर्य का भी निदर्शन करते है। अपनी 'बहू' शीर्षक कविता मे वे कहते है–

''सौन्दर्य–सरोवर की वह एक तरग,

किन्तु, नही चचल प्रवाह–उद्दाम वेग–

---

[1] उपरिवत प्रबन्ध-प्रतिमा पृष्ठ 157

[2] निराला रचनावली खण्ड1 पृष्ठ 54

सकुचित एक लज्जित गति है वह

प्रिय समीर के सग।

वह नव बसन्त की किसलय–कोमल लता,

किसी विटप के आश्रय मे मुकुलिता

और अवनता।[1]

निराला प्रेम को सृष्टि का आदि कारण मानते है। इसी प्रेम से जगत् का नाना रूपो मे विकास हुआ है। जिस प्रकार एक ही तत्त्व जल, वाष्प और मेघ मे भिन्न–भिन्न आकार ग्रहण करता है और विद्युत की माया इनका कारण बनती हे, ठीक, उसी प्रकार चेतन तत्त्व प्रेमाकर्षण मे खिचकर विभिन्न रूपो मे व्यक्त होता है। वे कहते हे–

"तत्वो के त्वक् बदल–बदल कर

वारि वाष्प ज्यो फिर बादल

विद्युत की माया उर मे तुम

उतरे जग मे मिथ्या फल।"[2]

निराला के यहॉ बसन्त का उल्लास भी नारी ओर पुरूष के मिलन के रूप मे हुआ है–

"किसलय वसना नव वय लतिका

मिली मधुर प्रिय–उर तरु पतिका

मधुप वृन्द बन्दी –

पिक स्वर नभ सरसाया।"[3]

[1] निराला परिमल पृष्ठ 134
[2] उपरिवत निराला रचनावली भाग 1 पृष्ठ 225
[3] निराला निराला रचनावली भाग 1 पृष्ठ 253

आह्लाद का यह स्वर उनकी अन्य कविताओ मे भी मुखरित होता है। इस प्रकार कवि की सौन्दर्यानुभूति के केन्द्र मे प्रकृति और मानव–जीवन दोनो है। वे नारी और पुरूष के सम्बन्धो को स्वभाविक धरातल, प्राकृतिक धरातल और रहस्यात्मक अनुभूतियो के धरातल पर व्याख्यायित करते है। निराला ने नारी के सौन्दर्य को अलौकिक सौन्दर्य का पार्थिव प्रतिबिम्ब माना है–

"सृष्टि के उर की सॉस,

तुम्ही इच्छाओ की अवसान,

तुम्ही स्वर्गिक आभास।"[1]

निराला मे नूतनता निरन्तर प्रवाहित है–

"नवगति, नवलय, ताल–छन्द–नव,

नवल कठ, नव जलद मन्त्र रव,

नव नभ के नव–विहग–वृन्द को

नव पर नव स्वर दे।'[2]

अस्तु, निराला की सौन्दर्यानुभूति नित्य, नवीन, शास्वत और सपूर्ण है। सत्य–शिव और सुन्दरम् की उपस्थित, लोक तथा लोकोत्तर आनन्द की सृष्टि, भाव और छन्द–वैविध्य, सौन्दर्यानुभूति और काव्यानुभूति मे अभिन्न सम्बन्ध, सामाजिक चेतना, अध्यात्म और दर्शन के उचित समन्वय आदि की दृष्टि से उनका काव्य विलक्षण सिद्ध होता है। निराला की सौन्दर्य चेतना परिपक्व एव पूर्ण है। प्रकृति, प्रेम, श्रृगार विषयक कविताओ मे उच्चकोटि की सौन्दर्यानुभूति दृष्टिगोचर होती है। उनका यह सौन्दर्य–बोध उच्च कोटि की दार्शनिकता से परिचालित होता है। निराला के सौन्दर्य–बोध मे निजस्विता का सस्पर्श है और समष्टिगत प्रेरक सूत्र भी उसमे सम्मूर्त्त हुए है।

---

[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला दवी (कहानी–सग्रह) पृष्ठ 116

[2] उपरिवत गीतिका पृष्ठ 3

महादेवी की कविता मे सौन्दर्यानुभूति

महादेवी वर्मा के काव्य मे छायावाद की समस्त प्रवृत्तियॉ सयमित रूप से समाहित है। छायावाद युग की समाप्ति के पश्चात् भी उससे उनका सम्बन्ध न टूट सका। उनके अन्तिम सग्रह 'अग्निरेखा' की कुछ कविताऍ इसका अपवाद अवश्य है। महादेवी के काव्य मे रहस्यानुभूति का सौन्दर्य विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। अपनी इस रहस्य–भावना के चलते वे अन्य छायावादी कवियो से भिन्न दिखती है। यद्यपि पत के काव्य मे सौन्दर्य के प्रति विशेष आग्रह दिखता है परन्तु पत और महादेवी की अनुभूति और अभिव्यक्ति मे बहुत अतर है। महादेवी का नारी होना भी अनुभूति और अभिव्यक्ति के स्तरो पर शेष कवियो से भिन्न रहने का प्रमुख कारण है। महादेवी प्रकृति के प्रत्येक कण मे परम् सुन्दर विश्वात्मा की छवि देखती है। जिसके चलते विश्व के सारे पदार्थो मे आत्मा के अस्तित्व का दर्शन करती है। महादेवी के अनुसार, 'ससार की प्रत्येक सुन्दर वस्तु उसी सीमा तक सुन्दर है। जिस सीमा तक वह जीवन के विविधता के साथ सामजस्य की स्थिति बनाये हुए है और प्रत्येक विरूप वस्तु उसी अश तक विरूप है जिस अश तक वह जीवनव्यापी सामजस्य को छिन्न – भिन्न करती है।[1] अपनी इसी मान्यता के आधार पर वह स्वर्ग तथा नरक की बात करती है ओर सामजस्यता के छिन्न –भिन्न होने के कारको को 'विरूप' की सज्ञा से विभूषित करती है। जिसके चलते कण–कण मे अखड सौन्दर्य का निदर्शन करती है। महादेवी रहस्यदृष्टि को सम्पूर्णता मानती है। उनके अनुसार, ''हमारे मूर्त और अमूर्त जगत एक दूसरे से इस प्रकार मिले हुए है कि एक का यर्थाथदर्शी दूसरे का रहस्यद्रष्टा बन कर ही पूर्णता पाता है।''[2] इसी के चलते वे सत्य को सौन्दर्य के साधन के रूप मे प्रस्तुत करती है। उनका सौन्दर्य भी चिर नवीन है।

सौन्दर्य के लोकोत्तर पक्ष की आग्रही महादेवी छायावादी कविता की प्रमुख विशेषता उसकी आध्यात्मिकता को ही मानती है। वे कहती है–

''इस युग की प्राय सब प्रतिनिधि रचनाओ मे किसी – न – किसी अश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य मे व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य पर चेतना का आरोप भी।''[3]

---

[1] महादवी वर्मा दीपशिखा पृष्ठ 20
[2] उपरिवत उपरिवत 27
[3] महादवी वर्मा आधुनिक कवि पृष्ठ 10

इस प्रकार वे छायावादी सौन्दर्य–बोध पर रहस्य का आरोपण करती है। इस सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति के विकास मे एक ऐसी स्थिति आती है, जिसमे लघु और विराट, तुच्छ और महत् – सबमे सौन्दर्य का आभास मिलता है। यह दशा मानसिक सूक्ष्मता पर आश्रित है। ऐसी स्थिति मे सौन्दर्य चेतना की अजस्त्र धारा प्रवाहित होती हे। 'सौन्दर्य– चेतना का यह मुक्त–प्रसार कभी – कभी युग–धर्म बन जाता है।"[1] वस्तुत महादेवी की सौन्दर्य चेतना का आधार मूलत आध्यात्मिक ही है। इसमे जडता नही है अपितु निरतरता है। कही – कही स्थूलता भी दृष्टिगोचर होती है। अनुभूति की गहराई जहॉ नही आ पाती, वहा स्थूलता उभरी हुई दिखाई देती है। महादेवी की सोन्दर्यानुभूति का सम्बन्ध भाव – जगत् से ही है। कल्पना यहॉ कुल मिलाकर एकाकार हो जाती है। वे बिम्ब और प्रतीको के माध्यम से अपनी बात कहती है। ध्यातव्य यह है कि उनके प्रतीक और बिम्ब प्राय आध्यात्मिक क्षेत्रो से लिए गये है। प्रकृति यहॉ सहायक बन कर उपस्थित है। यद्यपि वे प्रकृति –सौन्दर्य मे पूर्ववर्ती और समवर्ती कवियो की तुलना मे नही टिकती। फिर भी प्राकृतिक – सौन्दर्य का वैभव पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान है। उनका भावात्मक रूप से रहस्यवादी होना भी इसका प्रमुख कारण है। महादेवी जी की सौन्दर्यानुभूति को मुख्यत दो आलम्बनो की दृष्टि से विवेचित किया जा सकता है –

(1) प्रकृति – सौन्दर्य और (2) मानव सौन्दर्य

स्थूल सौन्दर्य – बोध से महादेवी को अरूचि है। इसी कारण महादेवी के सौन्दर्य – बोध के विवेचन के क्रम मे ऐन्द्रिक अथवा स्थूल चित्र नही मिलते है। 'नीरजा' की श्रृगार कर ले री सजनि!' शीर्षक कविता मे अज्ञात प्रिय से मिलने के क्रम मे प्रकृति सहचरी बन कर आती है।–

"नव क्षीर निधि की उर्म्मियो से
रजत झीने मेघ सित,
मृदु फेनमय मुक्तावली से
तैरते तारक अमित,
सखि ! सिहर उठती रश्मियो का
पहनि अवगुण्ठन अवनि!

---

[1] डॉ० कुमार विमल छायावाद का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन। पृष्ठ 103

इस पुलिन के अणु आज है

भूली हुई पहचान से,

आते चले जाते निमिष

मनुहार से, वरदान से,

अज्ञात पथ, है दूर प्रिय चल

भीगती मधु की रजनि।

श्रृगार कर ले री सजनि।''[1]

इस कविता के प्रथम चरण मे प्रिय से मिलने के उत्साह के क्रम मे वे सजती है। कविता के अन्तिम चरण मे अज्ञात पथ पर चल कर प्रिय के पास पहुँचना चाहती है। यहॉ आत्मा का परमात्मा से मिलने के क्रम मे श्रृगार करना इनका रहस्य–भाव है। पूरी कविता मे प्राकृतिक बिम्बो और प्रतीको के माध्यम से कवयित्री सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति के चित्रण मे सफल सिद्ध हुई है। प्रियतमा के रूप का आरोपण प्रकृति पर करने मे सफल है। महादेवी की यह सूक्ष्म सौन्दर्य–दृष्टि रहस्यमय भावो को आकार देती है–

''इन्द्रधनुष के रगो मे भर

धुँधले चित्र अपार,

देती रहती चिर रहस्यमय

भावो को आकार।''[2]

यहॉ उनका सूक्ष्म सौन्दर्य–बोध दृष्टिगोचर होता है। महादेवी की वेदना अज्ञात प्रिय से मिलने को आतुर है–

''तुम विद्युत बन, आओ पाहुन।

मेरी पलको मे पग धर धर।

आज नयन आते क्यो भर भर?

यहॉ वे विद्युत के माध्यम से क्षणिक मिलन की आग्रही है। 'ऑसू का मोल न लूँगी मै।' शीर्षक कविता मे महादेवी नि स्वार्थ प्रेम प्रदर्शित करती है–

'आसू का मोल न लूँगी मै।

---

[1] महादेवी वर्मा नीरजा पृष्ठ 19-20

[1] उपरिवत सांध्यगीत पृष्ठ 69

यह क्षण क्या? द्रुत मेरा स्पन्दन,

यह राज क्या? लघु मेरा दर्पण,

प्रिय तुम क्या? चिर मेरे जीवन,

मेरा सब सब मे प्रिय तुम

किससे व्यापार करूँगर मै?

ऑसू का मोल न लूँगी मै। '[1]

विरह मे बहे ऑसू का प्रतिदान वे नही चाहती। वे उस प्रिय मे और प्रिय उनमे है अर्थात अद्वेत की भावना है। यह क्षण (जीवन) का स्पन्दन मात्र हे। यहॉ अद्वैत के धरातल पर द्वैत – भावना मिट जाती है। मुख्य बात यह है कि यह सब स्व को अलग रख कर सम्पन्न होता है। अज्ञात प्रियतम पर रहस्यमय आवरण डालकर वे अपनी काव्य – सृष्टि करती है मधुरता का सौन्दर्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

महादेवी जी के अनुसार ''हमारा समस्त दृश्य–जगत् परिवर्तनशील ही नही, एक निश्चित गतिक्रम मे परिवर्तनशील है, जो अपनी निरन्तरता से एक लय युक्त आर्कषण – विकर्षण को छन्दायित करता है।''[2] अत उनका काव्य व्यष्टि और समष्टि को एक निश्चित दिशा मे प्रेरित करता है। प्रकृति महादेवी के काव्य मे प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत दोनो रूपो मे व्यक्त हुई है। 'नीहार' सग्रह की एक कविता मे पुष्प की पूरी कहानी मानवी रूप मे प्रस्तुत हुई है–

''था कली के रूप शैशव–

मे अहो सूखे सुमन,

मुस्कराता था, खिलाती,

अक मे तुझको पवन।''

यहॉ पुष्प के माध्यम से मानव जीवन के विभिन्न रूपो की झॉकी है। बाल्यकाल के पश्चात् वह क्रमश युवावस्था, वृद्धावस्था ओर अतिम अवस्था (नश्वरता) मे पहॅुच जाता है, यथा

''जिस पवन के अक मे–

ले प्यार था तुझको किया

तीव्र झोके से सुला–

---

[1] उपरिवत नीरजा पृष्ठ 71

[2] उपरिवत नीहार पृष्ठ

उसने तुझे भू पर दिया। '[1]

यामा के द्वितीय याम (रश्मि) मे सकलित रहस्य शीर्षक कविता मे वह कहती हे–

''न जिसमे स्पन्दन न विकार
न जिसका आदि न उपसहार,
सृष्टि के आदि आदि मे मौन
अकेला सोता था वह कौन?

रहस्य के प्रति एक अतिशय जिज्ञासा यहॉ विद्यमान है। वही अखड सत्य है। महादेवी यह सब क्रिया – व्यापार प्रेम की भावभूमि और विरह – मिलन के लेखा – जोखा से सम्पन्न करती है। इस विरह मे मिलन को आतुर महादेवी स्वय ही दीप की भॉति जलने लगती है। द्रष्टव्य है एक उदाहरण–

''शलभ मै शापमय वर हूँ
किसी का दीप निष्ठुर हूँ।
ताज है जलती शिखा
चिनगारियॉ श्रृंगार माला,
ज्वाल अक्षय कोष – सी
अगार मेरी रग शाला,
नाश मे जीवित किसी की साध सुन्दर हूँ।''

'नाश मे जीवित' और 'साध सुन्दर के माध्यम से पूरी कविता का निहितार्थ समझ मे आता है। यहॉ प्रिय से बिछुडन के क्रम मे इसी पर आस्था रखते हुए जीने का भाव हे। यह कहा जा सकता है कि महादेवी का भाव–सौन्दर्य भी उत्कृष्ट बन पडा है। प्रकृति के माध्यम से रूप श्रृगार भी उत्कृष्ट बन पडा हे। रूप सौन्दर्य मे प्रकृति सहयोग देती दिखती है–

तारकमय नव वेणी बन्धन
शीश फूल का शशि का नूतन
रश्मि – वलय सित घन अवगुठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी।

---

[1] उपरिवत नीहार पृष्ठ

मर्मर की सुमधुर नुपुर ध्वनि,

अलिगुजित पद्मो की किकिणि,

भर पर–गति मे अलस तरगिणि,

तरल रजत की धार बहा दे मृदुस्मित से सजनी।[1]

यहॉ शुक्लाभिसारिका मुग्धा बसन्त रजनी का सौन्दर्य द्विगुणित हो उठा है।

सार रूप मे यह कहा जा सकता है कि महादेवी की सौन्दर्यानुभूति स्थूल कम और सूक्ष्म अधिक है। महादेवी वर्मा की सौन्दर्य दृष्टि आध्यात्मिक ही है। आध्यात्मिक प्रतीको, बिम्बो, प्रकृति और कल्पना के माध्यम से वे अपने दृष्टिकोण को रखती है। सत्य ही उनका आदर्श है और सौन्दर्य इस आदर्श के निमित्त साधन बन कर उपस्थित होता है। वे प्रकृति और मानव – सौन्दर्य के अवलम्बन लेकर चलती है। मधुरमय भावना तथा मधुमय पीडा का आरोपण प्रिय (अज्ञात सत्ता) और प्रियतमा (आत्मा) के सयोग–मिलन से व्याख्यापित करती है। इस माधुर्य और लोच के चलते उनकी रहस्यानुभूति और गहरी हो गयी है। वे करुणा, दु ख – पीडा और वेदना का भी उल्लेख वे करती हे, किन्तु यह वेदना उन्हे प्रिय है। वे अपने ऑसुओ को सहेज कर चलती है। अस्तु, यह कहा जा सकता है कि महादेवी मे सौन्दर्य की सूक्ष्म अनुभूति निदर्शित होती है जो अधिकतर आध्यात्मिक ही है।

निष्कर्ष

भारत मे सौन्दर्यशास्त्र का अभिधान अधिक प्राचीन नही है। वैदिक–साहित्य, उपनिषद, सस्कृत–वाङ्गमय, पौराणिक–ग्रन्थो, अभिजात–सस्कृत–काव्य, भारतीय–दर्शन, भक्ति साहित्य और काव्य–शास्त्र मे न्यूनाधिक मात्रा मे सौन्दर्य का विवेचन मिलता है। भारतीय काव्य–शास्त्र मे सौन्दर्य की जगह रस का प्रतिष्ठापन है। पर अलकारवादियो आदि ने बाह्य–सौन्दर्य को प्रधानता दी। जगन्नाथ ने 'रमणीय के अर्थ मे इसकी महत्ता प्रतिपादित की। वेद, उपनिषद, दर्शन, भक्ति–साहित्य मे सौन्दर्य को दिव्य सोन्दर्य से जोडा गया। पौराणिक ग्रन्थो मे मानवीय गुणो को महत्त्व दिया गया। सस्कृत के परवर्ती ग्रन्थो तथा रीतिकाल मे रूप–सौन्दर्य की प्रतिष्ठा हुई। आधुनिक काल मे इसकी व्याख्या विविध धरातलो पर सम्पन्न

[1] महादेवी वर्मा यामा पृष्ठ 218

होती है। सौन्दर्य का वैश्विक दृष्टिकोण छायावाद की कविता मे विद्यमान है। पाश्चात्य मे सौन्दर्यशास्त्र की व्यवस्थित परम्परा का विकास मिलता है। यह परम्परा 500 ई० पू० से प्रारम्भ होती है। पर जर्मन दार्शनिक एलेक्जेण्डर बाउमगार्टेन (1714-62ई०) ने अपनी महत्त्वपूर्ण कृति एस्थेटिका मे सौन्दर्यबोध शास्त्र या एस्थेटिक्स को आधुनिक अर्थों मे मजूर करके टकसाली बनाया। बाउमगार्टेन पश्चातके सौन्दर्य – चिन्तको ने ऐन्द्रियबाध तथा भावात्मक सवेगो से सौन्दर्य को जोडा। ततपश्चात सौन्दर्य पर मार्क्सवादी और प्रकृतिवादी दृष्टि से विचार सभव हुआ। आधुनिक काल मे मैथलीशरण गुप्त मुकुटधर पाण्डेय प० बदरीनाथ भटट और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की कुछ कविताओ मे छायावादी सौन्दर्य चेतना के निदर्शन होते है। पौर्वात्य और पाश्चात्य परम्परा मे मूलभूत अतर यह है कि पूर्व के दार्शनिक जहॉ वस्तुओ की आत्मा के अस्तित्व मे विश्वास करते है। भारत मे महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर सत्य शिव और सुन्दरम् की परिकल्पना करते है। यह विक्टर कूसा के सन 1918 ई० मे दिए गए प्रसिद्ध व्याख्यान 'द ट्रू द ब्यूटीफुल एड द गुड का ही परिष्कृत रूप है। वस्तुत प्रत्यक्ष मे जो सौन्दर्य है वही चिन्तन मे सत्य और कर्म मे शिव है। समस्त छायावादी कति उस धारणा से अशत प्रभावित है। जयशकर प्रसाद के काव्य मे सौन्दर्य के बाह्य और आभ्यन्तर के एकीकृत रूप का भी निदर्शन होता है। उनकी सौन्दर्यानुभूति उनके सास्कृतिक बोध से विकसित होकर मनोमय लोक मे विचरण करती है। उनकी प्रकृति–चेतना कल्पना प्रतीक तथा बिम्ब राग चेतना से परिचालित है। सुमित्रानन्दन पत के काव्य मे सौन्दर्य के नैसर्गिक सामाजिक मानसिक और आध्यात्मिक रूपो का प्रकटन होता है। आन्तरिक तथा बाह्य दोनो धरातलो पर उनका सौन्दर्य – बोध सम्पन्न होता है। वस्तुत पत की सौन्दर्यानुभूति अपने सूक्ष्मतम रूपो मे उनके अन्तर्मन का सगठन बनकर प्रस्तुत होती है। वही सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला की सौन्दर्यानुभूति नित्य नवीन शाश्वत और सम्पूर्ण है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्रो का वर्णन उनके सोन्दर्य – बोध की विविधता को दर्शाता है। अपनी रहस्यवादी कविताओ मे उनका सौन्दर्य – बाध उच्चकोटि की दार्शनिकता से परिचालित होता है। निराला के सौन्दर्य–बोध मे निजस्विता का सस्पर्श है और समष्टिगत प्रेरक सूत्र भी उसमे सम्मूर्त्त हुए है। महादेवी वर्मा की सौन्दर्यानुभूति मूलत सूक्ष्म है। उनकी दृष्टि रहस्यपरक ही है। उनके काव्य मे प्रकृति, कल्पना प्रतीक तथा बिम्बो आदि उपादानो के माध्यम से सोन्दर्य की सृष्टि होती है। पर उनका आत्मिक सौन्दर्य सर्वत्र विद्यमान रहता है। सत्य ही उनका आदर्श है और सौन्दर्य इस आदर्श के निमित्त साधन बनकर प्रस्तुत होता है। महादेवी जी प्रकृति और मानव– सौन्दर्य का आश्रय भी लेती है। मधुरमय भावना तथा मधुमय पीडा का

आरोपण प्रिय (अज्ञात सत्ता) और प्रियतमा (आत्मा) के सयोग–मिलन से व्याख्यायित करती है। इस माधुर्य और लोच के चलते उनकी रहस्यानुभूति और गहरी हो गयी है। महादेवी करुणा, दु ख, पीडा तथा वेदना का भी उल्लेख करती है। पर इसका पर्यवसन सूक्ष्म रूप मे ही होता है।

पंचम अध्याय

महादेवी की सौन्दर्य चेतना के आधार तत्त्व एव उपकरण

महादेवी वर्मा के काव्य मे सौन्दर्यानुभूति और रहस्यानुभूति के आधार तत्त्व एव उपकरणो मे – प्रकृति, मानव, दर्शन, कल्पना, प्रतीक और बिम्ब ही प्रमुख है।

प्रकृति

विश्व तथा भारतीय–साहित्य को समृद्ध बनाने मे प्रकृति का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारतीय साहित्य परम्परा मे वैदिक काल से लेकर सस्कृत–साहित्य के पूर्वकाल तक के कवियो मे प्रकृति का विशेष आकर्षण देखा जा सकता है। उत्तरकालीन सस्कृत साहित्य से लेकर रीतिकाल तक के कवियो मे प्रकृति निर्वासित–सी रही। काव्य मे उसका प्रयोग उपदेशात्मक या आलकारिक रूप मे ही हुआ। अँग्रेजी–साहित्य के प्रभाव तथा वैदिक एव सस्कृत–साहित्य मे अपनी जडो को तलाशने की कोशिश के चलते आधुनिक युग मे प्रकृति–चित्रण की बहुलता मिलती है। छायावादी काव्य के पूर्व के प्रकृति–चित्रण को छायावाद की भूमिका के रूप मे देखा जा सकता है।

यथार्थ मे प्राय उपायोगितावादी दृष्टि से प्रकृति के आन्तरिक गुणो का मूल्याकन होता है और काव्य मे कल्पना का आश्रय लेकर उसके बाह्य सौन्दर्य का। वस्तुत कलाकार चाहे कवि हो अथवा चित्रकार, पहले अपने सौन्दर्य की भावना की तृप्ति करता है।"[1] प्रकृति इस सौन्दर्य–बोध मे माध्यम बन जाती है। प्रकृति–सौन्दर्य का एक रूप सौन्दर्यानुभूति से सम्बद्ध है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि "जिन तथ्यो का आभास हमे पशु–पक्षियो के रूप व्यापार या परिस्थिति मे ही मिलता हे, वे हमारे भावो के विषय वास्तव मे हो सकते है। इस प्रकार काव्य मे प्रकृति–सोन्दर्य विभिन्न रूपो मे कवियो को आकर्षित करता और उनकी सौन्दर्यानुभूति का साधक बनता है।"[2] इन भावो तथा तथ्यो की व्यजना कभी–कभी कुछ गूढ होती है जो सूक्ष्म सौन्दर्य की अनुभूति कराती है। महादेवी जी को भी छायावाद की काव्य

---

[1] डॉ० रामकुमार वर्मा चित्ररेखा पृष्ठ 1

[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि भाग 1 पृष्ठ 104

रचनाओ मे प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य मे व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास'[1] और प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य पर चेतनता का आरोप[2] दिखाई देता है।

महादेवी के काव्य मे प्रकृति के प्रति सहज आकर्षण मिलता है। अपनी वेदनानुभूति और प्रणयानुभूति मे उन्होने प्रकृति को माध्यम बनाया है। महादेवी ने प्रकृति को सचेतन सत्ता के रूप मे देखा और मानवीय भावनाओ के साथ उसका तादात्म्य भी स्थापित किया। काव्य मे प्रकृति मूलत दो रूपो मे उपस्थित होती है –

(क) प्रस्तुत

(ख) अप्रस्तुत

उपर्युक्त दोनो भेदो को निम्नवत स्पष्ट किया जा सकता है[3] –

काव्य मे प्रकृति – चित्रण
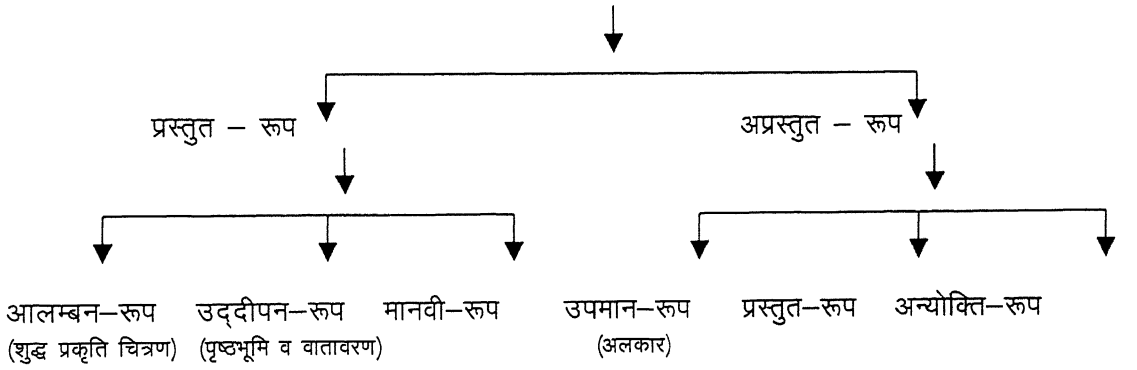
महादेवी के काव्य मे भी प्रकृति–चित्रण के उपरोक्त रूप निदर्शित होते है। अत इसे आधार बनाकर उनके प्रकृति–सौन्दर्य पर विवेचन करना उचित होगा।

1. आलम्बन–रूप

प्रकृति–चित्रण के इस रूप मे कवि भावो के आलम्बन के रूप मे प्रकृति का प्रस्तुतीकरण करता है। यहाँ प्रकृति स्वतन्त्र रूप से वर्णित होती है। महादेवी ने

---

[1] महादवी वर्मा विवचनात्मक गद्य पृष्ठ 65
[2] उपरिवत उपरिवत पृष्ठ 65
[3] डा० गणपति च द्र गुप्त महादवी नया मूल्याकन पृष्ठ 235

विशुद्ध आलम्बन रूप मे प्रकृति का चित्रण कम ही किया है। वे प्रकृति को भावो के प्रतिबिम्ब के रूप मे चित्रित करती है। महादेवी कहती है –

"जब प्रकृति की अनेकरूपता मे, परिवर्तनशील विभिन्नता मे कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके समीप हृदय मे समाया हुआ था, तब प्रकृति का एक–एक अश एक अलौकिक व्यक्तित्व लेकर जाग उठा।"[1]

वस्तुत कवयित्री प्रकृति को मानवीय भावनाओ के रग या अज्ञात प्रिय की छाया के रूप मे ही देखती है। फिर भी न्यूनाधिक मात्रा मे प्रकृति–चित्रण का स्वतन्त्र रूप भी दृष्टिगोचर होता है। वे 'सन्धिनी' की एक कविता मे रश्मि' का स्वतत्र चित्रण करते हुए कहती है –

चुभते ही तेरा अरूण बान।
बहते कन कन से फूट फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान।

इन कनक रश्मियो मे अथाह,
लेता हिलोर तम–सिन्धु जाग
बुद्‌बुद्‌ से वह चलते अपार,
उसमे विहगो के मधुर राग,
बनती प्रवाल का मृदुल कूल
जो छितिज–रेख थी कुहर–म्लान।"[2]

यहाँ सूर्य की प्रथम रश्मि के प्रस्फुटन के दृश्य का सश्लिष्ट रूप मे चित्रण है। किरणो की स्वर्णिम छटा, झरनो का गायन, समुद्र की लहरो का आरोह–अवरोह, पक्षियो का कोलाहल, कलियो का प्रस्फुटन और भ्रमरो की रागमय झकार के माध्यम से प्रकृति के आलम्बन रूप का गत्यात्मक चित्रण मूर्त्त हो उठा है। कवयित्री ने प्रभात के परिवर्तनशीन रूप का चित्रण

---

[1] महादवी वर्मा यामा (अपनी बात) पृष्ठ 6
[2] महादवी वर्मा सन्धिनी पृष्ठ 49

किया हे। पर अपनी बोद्धिकता के चलते इस कविता के अत मे प्रकृति का आलम्बन रूप क्रमश क्षीण होता चलता है, यथा

फैला अपने मृदु स्वप्न–पख,

उड गई नीद–निशि क्षितिज पार

अधखुले दृगो के कज–कोष–

पर छाया विस्मृति का खुमार

रग रहा हृदय ले अश्रु–हास

यह चतुर चितेरा सुधि–विहान। [1]

प्रस्तुत पक्तियो मे मानवीय भावनाओ के रगो को कल्पना के माध्यम से उकेरा गया है। यहॉ बौद्धिकता का भी पुट है, कितु इससे कविता के गत्यात्मक सौन्दर्य मे व्यवधान उत्पन्न नही होता।

प्रकृति के मृदुल, कोमल ओर सुन्दर रूप छायावादियो को आकर्षित करते है। महादेवी भी इसकी अपवाद नही है। बसन्त, पतझर, पावस, विभिन्न पुष्प, उषा, सन्ध्या और रात्रि के अनेक चिन्ताकर्षक चित्र कवयित्री के काव्य मे दृष्टिगोचर होते है।

नीरजा' की एक कविता मे उषा का सौन्दर्य वर्णन स्वतन्त्र रूप मे किया गया है, किन्तु इस कविता का अत मानवीकृत रूप मे होता है, यथा

''रूपसि तेरा घन केश–पाश।

श्यामल श्यामल कोमल कोमल,

लहराता सुरभित केश–पाश।

*   *   *   *

दुलरा दे ना बहला दे ना,

यह तेरा शिशु जग है उदास।

रूपसि तेरा घन–केश–पाश।[1]

इस पूरी कविता मे प्रात कालीन वातावरण का सजीव अकन हुआ है। नारी के रूप का अकन नारी की दृष्टि से किया गया है। साथ ही साथ प्रकृति को प्रेयसी के रूप मे न देखकर माता के रूप मे देखा गया हे। इस प्रकार इस कविता मे पुरूषोचित दृष्टि तथा प्रेयसी रूप का न होना खटकता है। यह भी कहा जा सकता है कि महादेवी दोनो स्तरो पर अन्य छायावादी कवियो से भिन्न हो जाती है।

महादेवी का ऋतु–वर्णन परम्परागत नही है। प्रकृति मे सौन्दर्य–बोध के कारण बसन्त और पावस ऋतु मे उनकी विशेष रूचि रही है। अन्य ऋतुओ का वर्णन नगण्य ही है। बसत का वर्णन भिन्न–भिन्न रूपो मे हुआ हे। प्रस्तुत है सुन्दर स्त्री के रूपो मे बासन्ती निशा का वर्णन –

धीरे–धीरे उतर क्षितिज से

आ बसन्त – रजनी।

*   *   *

मर्मर की सुमधुर नूपुर–ध्वनि,

अलि–गुजित पद्मो की किकिणि,

भर पद–गति मे अलस तरगिणि

तरल रजत की धार बहा दे

मृदु स्मित से रजनी।

विहँसती आ बसन्त–रजनी।'[2]

यहाँ बसन्त रजनी के हाव–भाव का उत्कृष्ट चित्रण है।

महादेवी ने वर्षाऋतु का वर्णन भी कही आलम्बन और कही भावो के तादात्म्य के रूप मे किया है। प्रस्तुत है एक उदाहरण –

---

[1] महादेवी वर्मा नीरजा पृष्ठ 29-30

[2] महादेवी वर्मा साधनी पृष्ठ 73

मिट चली घटा अधीर?

चितवन तम–श्याम रग

इन्द्रधनुष भृकुटि–भग

विद्युत् का अगराग

दीपित मृदु अग–अग

उडता नभ मे अछोर तेरा नव नील चीर।[1]

प्रस्तुत पक्तियो मे श्याम कोमल शरीर की स्वामिनी घटा रूपी नायिका के माध्यम से हृदयस्थ भावो का स्वच्छन्द प्रकाशन है।

अस्तु, महादेवी के काव्य मे प्रकृति का आलम्बन रूप कम ही हैं। कल्पना की सूक्ष्मता और मानवीय भावनाओ के आरोपण की दृष्टि से उनका प्रकृति–चित्रण महत्त्वपूर्ण है। उन्होने प्रकृति के स्थिर दृष्यो की अपेक्षा परिवर्तनशील रूप को ही महत्त्व दिया है।

2. उद्दीपन–रूप

जहॉ कवि प्रकृति का वर्णन प्रकृति–चित्रण के लिए न करके अपने मनोगत भावो को उद्दीपित करने के लिए करता है, उसे प्रकृति का 'उद्दीपन रूप' कहा जाता है। ''रस–सिद्धान्त के अनुसार भी किसी भाव के उद्दीपन के लिए तत्सम्बन्धी आलम्बन के अतिरिक्त अनुकूल परिस्थिति या वातावरण का भी होना अपेक्षित है। इस अनुकूल परिस्थिति या वातावरण को ही रस–शास्त्रीय शब्दावली मे 'उद्दीपन की सज्ञा दी गयी है।''[2] छायावादी कवियो ने भी प्रकृति को उद्दीपन रूप मे चित्रित किया है। महादेवी भी इसकी अपवाद नही है।

महादेवी की कविता मे प्रकृति का उपयोग पृष्ठभूमि और वातावरण दोनो रूपो मे हुआ है। प्राय वे अनुकूल परिस्थिति या वातावरण मे अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से करती है। 'नीहार' की एक कविता मे वे कहती है–

रजत करो की मृदुल तूलिका

---

[1] [illegible] दीप शिखा पृष्ठ 99

[2] डॉ॰ गणपति चन्द्र गुप्त महादेवी नया मूल्यांकन पृष्ठ 243

से ले तुहिन बिन्दु सुकुमार,

कलियो पर जब ऑक रहा था

करुण कथा अपनी ससार[1]

यहॉ कवयित्री का लक्ष्य करूण कथा' का वर्णन करना है। पर प्रकृति के विविध दृश्यो को करूण रूप मे प्रस्तुत करके भावनुकूल परिस्थिति तथा वातावरण की सृष्टि कर ली गई है। महादेवी ने अपनी स्वानुभूतियो के अनुरूप प्रकृति के दु खमय रूप का प्रस्तुतीकरण किया है। कवयित्री ने सुखपूर्ण अनुभूतियो का चित्रण भी मुक्त भाव से किया है–

''विधु की चॉदी की थाली

मादक मकरद भरी सी

जिसमे उजियारी राते

लुटती धुलती मिसरी सी।''[2]

प्रस्तुत पक्तियो मे सुखानुभूतियो के चित्रण के साथ–साथ प्रकृति मे भी सर्वत्र मादकता और उल्लास दृष्टिगोचर होता है।

महादेवी अपने मनोभावो की अभिव्यजना के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि एव अनुकूल वातावरण के रूप मे प्रकृति का उपयोग प्राय करती है। वे स्वानुभूतियो के अनुसार ही प्रकृति–चित्रण को विविध रगो मे चित्रित करती है। उनके प्रकृति–चित्रण मे स्वाभाविकता और सहजता का सौन्दर्य विद्यमान रहता है।

3. मानवी–रूप

प्रकृति चेतन के रूप ओर गुणो का आरोपण ही मानवीकरण का प्रमुख लक्ष्य है। भारतीय साहित्य मे प्रकृति को मानवी रूप मे देखने की परम्परा प्राचीन काल से ही रही है। इस परम्परा को विदेशी प्रभाव मानना अनुचित होगा, फिर भी छायावादी कवि स्वच्छन्दतावादी काव्य से प्रेरित अवश्य है। यद्यपि महादेवी ने जगह–जगह इसका

---

[1] महादेवी वर्मा यामा (प्रथम याम) पृष्ठ 2

[2] महादेवी वर्मा यामा (प्रथम याम) पृष्ठ 14

खडन किया है। प्रकृति के विभिन्न रूपो एव क्रिया–व्यापारो पर मानवी भावो का आरोपण जितनी सहजता, सूक्ष्मता और सजीवता से छायावादियो ने किया है, वैसा पूर्व के भारतीय साहित्य मे दृष्टिगोचर नही होता है। जहॉ तक महादेवी का प्रश्न है प्रकृति के आलम्बन रूपो मे भी मानवीय भावनाओ का आरोपण आशिक रूप से विद्यमान है। प्राय महादेवी की कविताओ मे प्रकृति के मानवी रूप का चित्रण किसी न किसी रूप मे विद्यमान है। उनकी समस्त प्रकृति सम्बन्धी कविताओ मे किसी न किसी पक्ष या अग पर मानवी रूप आरोपित अवश्य हुआ हे। नीहार की एक कविता मे पुष्प की पूरी कहानी मानवी रूप मे प्रस्तुत की गई है, यथा

"खिल गया जब पूर्ण तू–

मजुल सुकोमल पुष्पवर

लुब्ध मधु के हेतु मॅडराते

लगे आने भ्रमर। "[1]

इस पूरी कविता मे पुष्प की जीवन–गाथा पर मानवी भावो का आरोपण, मानव के शैशव, यौवन, वृद्धावस्था और मरण का मार्मिक चित्रण पुष्प के बहाने हुआ है। वैराग्य भावना पूरी कविता मे विद्यमान है। इसे गौतम बुद्ध के सयास के पूर्व की स्थितियो से भी जोडकर देखा जा सकता है। महादेवी वर्मा के द्वारा प्रकृति का विभिन्न रूपो मे चित्राकन हुआ है। प्रकृति उनके प्रणय–व्यापार का माध्यम बनती है। वह सहचरी, दूतिका, शिक्षिका, ममतामयी मॉ आदि रूपो मे आती है। महादेवी जी के रागमय हृदय का सौन्दर्य भी इन वर्णनो की उत्कृष्टता मे सहायक है।

महादेवी ने नीरजा की एक कविता मे विराट प्रकृति को भी रूप की सीमा मे बॉध लिया है। उस परम् तत्त्व को अप्सरा का रूप दिया है, यथा

लय गीत मदिर, गति ताल अमर,

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।

आलोक–तिमिर सित–असित चीर।

---

[1] महादेवी वर्मा यामा (प्रथम याम) पृष्ठ 29

सागर–गर्जन रूनझुन मॅजीर,

उडता झझा मे अलक–जाल,

मेघो मे मुखरित किकिणि–स्वर।

अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर।[1]

महादेवी के काव्य मे प्रकृति–चित्रण के सभी रूपो मे प्रकृति मानवी रूप मे प्राय उपस्थिति है। उनकी कविताओ मे प्रकृति का मानवीकरण नारी रूप मे ही अधिक हुआ है। अपनी इन कविताओ मे महादेवी रहस्य–भावना को प्रकट करने मे सफल सिद्ध हुई है। महादेवी के ये वर्णन उनके भावजगत् से प्रेरित और परिचालित है।

4. उपमान–रूप

कथ्य वस्तु की सज्जा के लिए प्रयुक्त उपकरणो को शास्त्रीय शब्दावली मे 'उपमान' कहा जाता है। काव्य जगत् मे भी प्रतिपाद्य विषय को प्रकृति की सहायता से सुसज्जित किया जाता है। कविता मे अलकरण की दृष्टि से जब प्रकृति का वर्णन होता है तो इस अलकृत रूप को उपमान–रूप मे चित्रण कहते है। इस पद्धति मे प्रकृति वर्णन की प्रधानता नही होती है। प्रकृति का प्रयोग उपमादि रूपो मे अलकार–कौशल के लिए किया जाता है। महादेवी के काव्य मे कथ्य की सज्जा या उसके अलकरण के लिए विविध प्राकृतिक उपकरणो का प्रचुर मात्रा मे प्रयोग पावस ऋतुओ से है, यथा

"पावस–घन सी उमड बिखरती,

शरद–दिशा सी नीरव घिरती,

धो लेती जग का विषाद

ढुलते लघु ऑसू – कण अपने मे।[2]

यहॉ पावस ऋतु विरह–वेदना की अभिव्यक्ति का माध्यम है। बसन्त ऋतु का प्रयोग प्रिय–मिलन के क्षणो को व्यक्त करने के लिए हुआ हे। द्रष्टव्य है एक उदाहरण–

"सिहर सिहर उठता सरिता–उर,

[1] महादेवी वर्मा नीरजा पृष्ठ 104
[2] महादेवी वर्मा नीरजा पृष्ठ 16

खुल खुल पडते सुमन सुधा–भर

मचल मचल आते पल फिर फिर

सुन प्रिय की पद–चाप हो गयी

पुलकित यह अवनी।

सिहरती आ बसन्त–रजनी।"[1]

महादेवी जी ने परम्परागत रूप मे प्रकृति का उपयोग नही किया है। प्राचीन काव्य मे प्राकृतिक उपादानो का प्रयोग प्राय उनके बाह्य रूप–रग को लेकर हुआ है। महादेवी ने प्रकृति के आन्तरिक गुणो के द्वारा विविध तथ्यो विचारो एव क्रिया–व्यापारो को स्पष्ट किया हे। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि प्रकृति के स्थूल चित्रण की अपेक्षा भाव–बोध की दृष्टि से सूक्ष्म सौन्दर्य का अकन उपमान रूप मे हुआ है। उनके काव्य मे उपमानो का अवाछित आरोपण कम ही मिलता है।

महादेवी के काव्य मे कही–कही प्रकृति उपमान से उपयोग भी बन गई है। प्रस्तुत है एक उदाहरण–

"कनक से दिन मोती सी रात,

सुनहली सॉझ गुलाबी प्रात,

मिटाता रगता बारम्बार,

कौन जग का यह चित्राधार? [2]

प्रस्तुत पक्तियो मे दिन को स्वर्ण और रात को मोती सा तथा सॉझ और प्रात काल को सुनहली तथा गुलाबी कहा गया हे। यहॉ प्राकृतिक उपादान को उपमेय रूप मे प्रस्तुत किया गया हे।

कही–कही उनके काव्य मे प्रकृति के एक दृश्य की उपमा दूसरे दृश्य से दी गयी हे–

---

[1] उपरिवत सांधिनी पृष्ठ 74

[2] महादेवी साहित्य रश्मि पृष्ठ 120

'शून्यता मे निद्रा की बन,

उमड आते ज्यो स्वप्निल घन,

पूर्णता कलिका की सुकुमार,

छलक मधु मे होती साकार,'[1]

अस्तु, महादेवी के काव्य मे विभिन्न प्राकृतिक उपादानो का प्रयोग उपमान रूप मे हुआ है। ध्यातव्य है कि शुद्ध उपमान का प्रयोग उपमान या अलकार के रूप मे प्रकृति का उपयोग प्रकृति–चित्रण के अन्य प्रकारो की तुलना मे कम ही हुआ है।

5. प्रतीक–रूप

जब किसी शब्द का प्रचलित अर्थ से भिन्न, अन्य अर्थ मे प्रयोग किया जाता है तथा वह एक साथ दो अर्थो की प्रतीति कराता है तथा शब्दावली मे प्रतीक कहा जाता है। जैसे – दीप मेरे जल अकम्पित,' मे दीपक एक ओर दीपक का अर्थ देता है तो दूसरी तरफ जीवन का। यहाँ जीवन उपमेय का दीपक उपमान स्थानापन्न हो गया है। महादेवी वर्मा ने भी प्रकृति पर रूपादि का आरोपण करते हुए अमूर्त्त भावो को मूर्त्त रूप दिया है। महादेवी के प्रकृति सम्बन्धी काव्य मे शैलीगत तथा स्वतन्त्र रूप मे प्रतीको का प्रयोग हुआ है।

महादेवी ने प्राय प्रतीको का प्रयोग आत्माभिव्यक्ति, दर्शनिक विचारो, बौद्धिक तथ्यो, प्रणय एव सौन्दर्य–भावना की अभिव्यक्ति के लिए किया है। प्रस्तुत है कतिपय उदाहरण –

''घोर तम छाया चारो ओर,

घटाये घिर आई घन–घोर,

वेग मारूत का है प्रतिकूल,

हिले जाते हे पर्वत–मूल,

कौन पहुँचा देगा उस पार।''[2]

*   *   *

''टूट गया वह दर्पण निर्मम।[1]

---

[1] महादेवी वर्मा रश्मि पृष्ठ 50

[2] महादेवी साहित्य 'नीहार पृष्ठ 57

*　　　*　　　*

"रहे खेलते ऑखमिचौनी

प्रिय! जिसके परदे मे मै 'तुम ।[2]

प्रस्तुत पक्तियो मे महादेवी ने प्रकृति के विभिन्न अगो का प्रयोग प्रतीक के रूप मे किया है। तम को अज्ञान, घटा को निराशा और सागर को ससार के अर्थ मे प्रयुक्त किया गया है। यहॉ सामान्य अर्थ और प्रतीकार्थ साथ–साथ चलते है। प्रकृति के भयानक रूप–चित्रण के द्वारा साधक की मानसिक स्थिति का निदर्शन प्रतीकात्मक रूप मे करवाया गया है। इसी प्रकार टूट गया दर्पण निर्मम कहकर दर्पण को जगत् का प्रतीक रूप माना गया है। दर्पण के माध्यम से कवयित्री सासारिक अस्थिरता का भी बोध कराती हे। इसी तरह ऑखमिचौनी के माध्यम से सासारिक मायाजाल तथा परदे के माध्यम से द्वैत का आभास करवाया गया है।

महादेवी विभिन्न ऋतुओ का चित्रण भी प्रतीक रूप मे कराती है। वे प्रकृति मे अपनी सत्ता का साक्षात्कार करती हुई उसके साथ तादात्म्य भी स्थापित करती है। द्रष्टव्य है कतिपय उदाहरण –

"प्रिय! सान्ध्य गगन

मेरा जीवन![3]

*　　　*　　　*

मै नीर भरी दु ख की बदली,'[4]

अस्तु, महादेवी के काव्य मे प्रकृति का प्रतीक रूप मे प्रयोग प्रचुर मात्रा मे हुआ है। यह उनके सौन्दर्य–चित्रण मे साधक ही रहा है। कुछ अपवादो को छोडकर प्राय ये प्रतीक मूल–भाव को स्पष्ट करने मे सहायक है।

---

[1] महादेवी वर्मा　सन्धिनी　पृष्ठ 86

[2] उपरिवत　पृष्ठ 86

[3] महादेवी वर्मा　सन्धिनी　पृष्ठ 99

[4] उपरिवत　पृष्ठ 108

6. अन्योक्ति–रूप

काव्य मे जब अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत विषय की व्यजना होती है तो इसे अन्योक्ति कहा जाता है। प्रतीक का सम्बन्ध पूरे वाक्य या प्रसग से न होकर अलग–अलग शब्दो से होता है। अन्योक्ति मे पूरा प्रसग ही दोहरे अर्थो का सूचक होता हे।

महादेवी की कविता मे जहॉ प्रकृति का मानवीकरण हुआ है, वहॉ अनेक प्रसगो मे अन्योक्ति का भी निर्वाह हुआ है।

जैसे नीहार सग्रह की पुष्प सम्बन्धी कविता मे –

कर दिया मधु ओर सोरभ

दान सारा एक दिन,

किन्तु रोता कोन है,

तेरे लिए दानी सुमन?"[1]

यहॉ पुष्प के माध्यम से कवयित्री ने एक उदार व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया है, अत इसे अन्योक्ति रूप कहा जा सकता है। एक अन्य कविता मे कवयित्री कहती है–

"न रहता भौरो का आह्वान

नही रहता फूलो का राज

कोकिला होती अन्तर्धान

चला जाता प्यारा ऋतुराज

असभव है चिर सम्मेलन

न भूलो क्षणभगुर जीवन।"[2]

प्रस्तुत पक्तियो मे वर्णित प्रकृति का उपदेशिका रूप भी अन्योक्ति रूप के अन्तर्गत ही जाता है। फूलो का झडना भौरो की गुजार और कोकिल का प्रवास सभी के माध्यम

---

[1] महादेवी वर्मा यामा पृष्ठ 30

[2] उपरिवत पृष्ठ 42

से ससार की क्षणभगुरता का उल्लेख है। इन पक्तियो मे क्षणभगुरता एव परिवर्तनशील जगत के बारे मे सदेश दिया गया है। यहॉ प्रकृति के रूप से अवलोकन कर ज्ञानार्जन किया गया है।

इस प्रकार अन्योक्ति सम्बन्धी उदाहरणो मे प्रकृति का दोहरा उपयोग दिखता हे। एक वह मानवीकृत रूप मे और दूसरी ओर अन्योक्ति के द्वारा किन्ही विशेष विचारो या भावो की अभिव्यजना मिलती हे। साथ ही साथ महादेवी के काव्य म प्रकृति के इन विविध रूपो के अतिरिक्त कुछ अन्य रूपो का भी चित्रण मिलता है। प्रकृति उनके यहॉ रहस्य, जीवन–दर्शन आदि की अभिव्यक्ति का माध्यम भी बनी है।

निष्कर्ष

महादेवी के काव्य मे प्रकृति–चित्रण के सभी प्रकार नवीनता के साथ निदर्शित होते है। प्रकृति के स्थूल सौन्दर्य की अपेक्षा सूक्ष्म सौन्दर्य को महत्त्व मिला है। प्रकृति उनके यहॉ अभिव्यक्ति के साथ–साथ अनुभूति का भी विषय है। उनके यहॉ प्रकृति के बाह्य रूप की अपेक्षा उसके आन्तरिक सत्य को अधिक महत्त्व मिला है। वे प्रकृति के स्थूल सौन्दर्य मे भी प्राय मानवीय भावनाओ और क्रिया–कलापो का साक्षात्कार करती हे।

महादेवी वर्मा के काव्य मे प्रकृति साधन बन कर आई है। उनका प्रकृति चित्रण उनके भावो ओर विचारो की अभिव्यक्ति का माध्यम है। वे प्रकृति के बाह्य रूप–सौन्दर्य की अपेक्षा उसकी आन्तरिक क्रियाओ के वर्णन मे रूचि लेती है। उन्होने प्रकृति के स्थिर और जड रूपो की अपेक्षा गत्यात्मक एव चेतन रूपो का अकन किया हे। महादेवी के काव्य मे प्रकृति और जगत् के बीच सतुलन कायम रहता हे। अस्तु, उनका प्रकृति–चित्रण 'सत्य–शिव–सुन्दरम् के लक्ष्य की पूर्ति करता दिखता है। साथ ही साथ भारतीय साहित्य की प्रकृति –चित्रण की परम्परा मे विशिष्ट स्थान प्रदान करता है।

मानव

अपनी रहस्यवादी कविताओ मे महादेवी स्वय आश्रित है। उन्होने अपने अनुभव को ही प्रेम ओर विरह के मानव से अभिव्यक्त किया हे। इसी कारण इन कविताओ मे मानव को आलम्बन मानकर रहस्याभिव्यक्ति की गुजाइश कम है। वस्तुत महादेवी की मानव सम्बन्धो की विविध स्थितियो का निरूपण उनके सस्मरणो और रेखाचित्रो मे मिलता हे। फिर भी, आत्मकेन्द्रित मानवीय सम्बन्धो के आधार पर प्रियतम से प्रेम की व्यजना ही उनकी रहस्यवादी

कविताओ मे है। इस विचार सरण को केन्द्र मे रखकर ही उनकी प्रेम–व्यजना का निरूपण किया जा सकता है।

महादेवी की कविताओ मे आत्मिक सौन्दर्य भी निदर्शित होता है। पर उनका यह आत्मिक सौन्दर्य आत्मकेन्द्रित ही अधिक है। ठीक इसी प्रकार सामाजिक सौन्दर्य भी दृष्टिगोचर होता है। 'रश्मि' सग्रह की 'दुविधा शीर्षक कविता मे कवयित्री की दुविधा लौकिकता और पारलौकिकता के बीच है–

''कह दे मॉ अब क्या देखूँ!

देखूँ खिलती कलियॉ या

प्यासे सूखे अधरो को

तेरी चिर यौवन–सुषमा

या जर्जर जीवन देखूँ!

देखूँ हिम हीरक हॅसते

हिलते नीले कमलो पर,

या मुरझाई पलको से

भरते ऑसू–कण देखूँ!''[1]

उपरलिखित पक्तियो मे महादेवी का आत्मिक सौन्दर्य बोल रहा है, जो मानवीय सौन्दर्य की करूणाजनित अवस्था से नि सृत है। कवयित्री यहॉ प्रकृति की खिलती कलियो की जगह को ओठ तथा प्रकृति की सुषमा की जगह जर्जर जीवन को देख रही है। साथ ही साथ कमलो पर ओस कण के सौन्दर्य की जगह मुरझाई पलको से गिरते हुए ऑसुओ को देख रही है। इस प्रकार महादेवी अपने आत्मिक सौन्दर्य को मानव तथा मानवता की पीडा के माध्यम से व्यक्त कर रही है। इस कविता के अत मे कवयित्री कहती है–

''तुझमे अम्लान हॅसी है

इसमे अजस्त्र ऑसू–जल

---

[1] महादवी वर्मा यामा पृष्ठ 101

तेरा वैभव देखूँ या

जीवन का क्रन्दन देखूँ।"[1]

यहॉ प्रकृति के असीम सौन्दर्य की जगह वेदना तथा अनत वैभव की जगह जीवन का क्रन्दन देखने मे कवयित्री दुविधा से ग्रस्त है। महादेवी का वेदना सौन्दर्य यहॉ मानवीय पीडा की अभिव्यक्ति कर रहा है। वेदना के आलोक का प्रसार महादेवी वर्मा आत्मीयता से करती है–

"सबकी ऑखो के ऑसू उजले,

सबके सपनो मे सत्य पला।'[2]

'नीहार' सग्रह की एक कविता मे पुष्प के माध्यम से मानव की सभी अवस्थाओ का चित्रण है–

"था कली के रूप शैशव

मे अहो सूखे सुमन,

मुस्कराता था, खिलाती

अक मे तुझको पवन।'[3]

यहॉ कली के माध्यम से मानव जीवन के शैशवावस्था का चित्रण है। इस पूरी कविता मे प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। आगे कली का विकास और पूर्णरूपेण खिलना होता है, जो किशोरावस्था और यौवनावस्था का परिचायक हे। क्रमश मानवीय क्रीडाओ और अवस्थाओ का चित्रण होता है। आगे फूल के सूख कर गिरने को मृत्यु से जोडा जा सकता है। वह पुष्प जिसने पूरा सौरभ (जीवन) दान कर दिया उसके लिए कौन रोता है। कवयित्री आगे कहती है–

"मत व्यथित हो फूल! किसको

सुख दिया ससार ने?

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 102

[2] महादेवी वर्मा [illegible] पृष्ठ 142

[3] [illegible] पृष्ठ 29

स्वार्थमय सबको बनाया –

है यहॉ करतार ने।"[1]

प्रस्तुत पक्तियो के माध्यम से कवयित्री ने जगत की निष्ठुरता का वर्णन किया हे। इसमे ससार की स्वार्थपरता का बहुत ही सुन्दर चित्रण हुआ है। इस कविता के अन्त मे महादेवी कहती है–

"विश्व मे हे फूल। तू –

सबको हृदय भाता रहा,

दान कर सर्वस्व फिर भी –

हाय हर्षाता रहा,

जब न तेरी दशा पर

दु ख हुआ ससार को,

कौन रोयेगा सुमन।

हमसे मनुज नि सार को?"[2]

उपरलिखित पक्तियो मे दानी पुष्प के माध्यम से ससार की क्षणभगुरता तथा स्वार्थपरता का चित्रण है। इस पूरी कविता मे मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओ एव दशाओ का चित्रण पुष्प के माध्यम से किया गया है। यहॉ कवयित्री का मूल लक्ष्य पुष्प के माध्यम से मानव–जीवन की विषमताओ का उद्घाटन करना है।

नीहार' सग्रह की एक अन्य कविता मे पुष्प के माध्यम से मानव के मानवीय सौन्दर्य का उद्घाटन है–

"जिसमे नही सुवास नही जो

करता सौरभ का व्यापार,

नही दख पाता जिसकी

---

[1] [illegible] 30

[2] [illegible] 30

मुस्कानो को निष्ठुर ससार।

जिसके ऑसू नही मॉगते

मधुपो से करुणा की भीख,

मदिरा का व्यवसाय नही

जिसके प्राणो ने पाया सीख।[1]

यहॉ पुन पुष्प की सुकुमारता, निरीहता और स्वाभिमानी स्वभाव को मानवी रूप मे प्रस्तुत किया गया है। वस्तुत यहॉ पुष्प के मानवीकृत रूप के माध्यम से मनुष्य के जीवन की विभिन्न स्थितियो एव विसगतियो का उद्‌घाटन हुआ है। इस कविता के अत मे कवयित्री कहती हे–

"उसी सुमन सा पल भर हॅसकर

सूने मे हो छिन्न मलीन,

झर जाने दो जीवन–माली

मुझको रहकर परिचय हीन।"[2]

प्रस्तुत पक्तियो मे जीवन माली अर्थात् अज्ञात से यह कामना की गयी है कि फूल की ही तरह ससार को आनद देती हुए परिचय हीन होकर ससार छोडना (मृत्यु को पाना) है।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि मानव सबधो की विविध स्थितियो का निरूपण महादेवी के काव्य मे कम ही है। सहज ही बोधगम्य है कि मानव को आलम्बन मानकर रहस्याभिव्यक्ति की सभावना कम ही रहती हे। साथ–साथ उनका आत्मकेन्द्रित होना भी यहॉ वाधक वनता हे। अपने आत्मकेन्द्रित मानवीय सबधो के आधार पर प्रेम की व्यजना उनकी रहस्यवादी कविताओ मे अवश्य मिलती है। फिर भी, जहॉ कही भी मानव का चित्रण है वहॉ सायास ही हुआ है। महादेवी के गद्य मे मानव सम्बन्धो की विभिन्न स्थितियो का निरूपण उत्कृष्टतम रूप म निदर्शित हाता है।

---

[1] [illegible] पृष्ठ 66

[2] [illegible] पृष्ठ 67

दर्शन

प्रकृति का अधिष्ठान क्या है? वह स्वप्रतिष्ठित हे या उसका कोई नियता है? प्रकृति मे होने वाली घटनाए यात्रिक हे अथवा इसका कोई सूत्रधार है? आदि प्रश्नो के समाधान के लिए जिस चिन्तन विशेष का जन्म हुआ हे उसे दर्शन सम्बाधन प्राप्त हुआ। दर्शन का विषय समस्त ब्रह्माण्ड है जबकि अन्य विज्ञान या शास्त्र ब्रह्माण्ड के किसी क्षेत्र विशेष को अध्ययन का आधार मानते है। अन्य विज्ञान या शास्त्र विश्व को मानकर चलते है, किन्तु दर्शन मे प्रश्न यह उठता हे कि क्या कारण है कि विश्व है? वस्तुत 'यह वह विद्या है जो प्रतीकात्मक और रहस्यात्मक चिन्तन की सीमा को पारकर उस परम सत्य को जानने का प्रयास करती है जो समस्त प्रतीको और रहस्यो का आधार है।"[1] अत दर्शन तर्क पर आधारित होने के कारण ज्ञान का सरक्षण भी करता है। पर काव्य हृदय का विषय होने के कारण बोध–वृत्ति का उन्मेषक है। ज्ञान हमारी बुद्धि को सतुष्ट कर सकता है पर हृदय को स्पर्श नही कर सकता। अत उस शाश्वत सत्य की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए गुणो का आरोपण सहना पडा। इस सम्बन्ध मे महादेवी वर्मा कहती है कि " मानवीय सम्बन्धो मे जब तक अनुराग जनित आत्म–विसर्जन का भाव नही घुल जाता तब तक वे सरस नही हो पाते और जब तक यह मधुरता सीमातीत नही हो जाती तब तक हृदय का अभाव नही दूर होता। इसी से इस अनेकरूपता के कारण पर एक मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण कर उसके निकट आत्मनिवेदन कर देना काव्य का सहज सोपान बना।"[2] महादेवी के गीत अध्यात्म के अमूर्त्त आकाश के नीचे लोक गीतो की धरती पर पले है।"[3]

अनुभूति की तीव्रता को व्यक्त करने के लिए प्रतीक की आवश्यकता होती है। इस तीव्रता को व्यक्त करने मे स्त्री–पुरूष के आर्कषण का भाव सहायक सिद्ध होता है। साहित्य मे इसे रति भाव कहते है और साधना मे इसे मधुर–भाव कहते है। महादेवी भी परम तत्त्व को प्रियतम के रूप मे रखकर काव्य मे दर्शन को अभिव्यक्ति देती हे। वैसे तो कवयित्री का दर्शन, जीवन के प्रति उसकी आस्था का दूसरा नाम है।"[4] पर यहॉ उनके रहस्य गीतो के सन्दर्भो को लेकर चलना उचित होगा। महादेवी कहती हे कि रहस्य गीता का मूलाधार भी आत्मानुभूति

---

[1] डॉ० छाट लाल त्रिपाठी ग्रीक दर्शन पृष्ठ 5
[2] श्री गगा प्रसाद पाण्डेय महीयसी महादेवी पृष्ठ 211
[3] महादेवी वर्मा दीपशिखा पृष्ठ 52
[4] उपरिवत आधुनिक काव्य' पृष्ठ 36

अखण्ड चेतन है पर वह, साधक की मिलन–विरह की मार्मिक अनुभूतियो मे इस प्रकार घुल–मिल सका कि उसकी लौकिक स्थिति भी लोक–सामान्य हो गयी।'[1] आगे वह कहती है कि रहस्य गीतो मे आनद की अभिव्यक्ति के सहारे ही हम चित् और सत् तक पहुँचते है।'[2] भारत की प्राचीन सस्कृति अध्यात्म और जीवन मे समन्वय लेकर चलती है और महादेवी वर्मा की काव्य–दृष्टि भी यही है। जहॉ तक उनकी दार्शनिक मान्यताओ का प्रश्न है, ''वह बहुत कुछ उपनिषदो एव अद्वेत वेदान्त–दर्शन पर आधारित है।'[3] कही–कही बौद्ध–दर्शन का प्रभाव हे जो न्यून ही है। पर प्राचीन दार्शनिक शब्दावली की जगह आधुनिक शब्दावली का प्रयोग, आधुनिक दृष्टिकोण एव एक विकोसोन्मुख दृष्टि उनको प्राचीन भारतीय दर्शनो से अलग भी करती है। आधुनिकता इस अर्थ मे कि महादेवी तथा अन्य छायावादी कवियो मे 'मै' की प्रतिष्ठा के प्रति सजगता है। महादेवी भी भावात्मक स्तर पर आत्मप्रसार की चेतना से युक्त होकर असीम के प्रति ह्रदय की रागात्मक अभिव्यक्ति को व्यक्त करती है। इसी के चलते ससार के प्रत्येक अणु मे उन्हे सार्वभौम सत्ता आभासित होती है। इसी को रवीन्द्रनाथ विश्व की आत्मा के रूप मे देखते है। डॉ० नामवर सिह कहते है कि ' इस सार्वभौम भावना का सम्बन्ध व्यक्तिवाद से है।'[4] इन्ही सब कारणो से महादेवी अपने मै' को तिरोहित न करते हुए शाश्वत सत्य से रागात्मक सम्बन्धो की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति करती है।

महादेवी विश्व पुरूष को प्रियतम के रूप मे देखती है। उनके काव्य मे प्रियतम से प्रणय–व्यापार की अभिव्यक्ति मिलती है। वैसे तो उनका प्रिय निर्गुण निराकार है, किन्तु उसके साथ वे मीरा की तरह रमने को तैयार नही है। महादेवी मे वेदना हे पश्चाताप का भाव नही है। उनकी विरहानुभूति आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व को जीवत करती है। साधना और भावना के सामजस्य से निर्गुण निराकार अनुभूति का विषय बनता है। जिसके चलते उनके निराकार पर सगुणता का काव्यमय आरोपण हो जाता है। अत यह निर्गुण साकार ब्रह्म महादेवी की साधना का साध्य बनकर आया है, जिसे उन्होने अद्वैत के सम्बन्धो से स्पष्ट किया है, जैसे–

''मै तुमसे हूँ एक, एक है

जैसे रश्मि प्रकाश,

---

[1] उपरिवत दीपशिखा पृष्ठ 53

[2] उपरिवत दीपशिखा पृष्ठ 53

[3] डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त महादेवी नया मूल्याकन पृष्ठ 77

[4] डॉ० नामवर सिह आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तिया पृष्ठ 66

मै तुमसे हूँ भिन्न, भिन्न ज्यो

घन से तडित – विलास [1]

कवयित्री ने यहॉ किरण और प्रकाश के माध्यम से अद्वैत को परिभाषित किया है। किरण है तो किरण का प्रकाश है अर्थात दोनो एक दूसरे के पूरक है। यही सम्बन्ध जीव ओर ब्रह्म मे है। बादल और विद्युत के प्रतीक से द्वैत की सोदाहरण व्याख्या है। बादल है और विद्युत उससे नि सृत है। ठीक उसी तरह जीव भी परमात्मा का अश है। और जब दोनो एक दूसरे के पूरक है या एक दूसरे से नि सृत है तो 'मै'' की रक्षा स्वभाविक रूप से हो जाती हे। कवयित्री अपने अस्तित्व के प्रति सजग भी हे ओर उसे यह बोध भी कि वह परम तत्त्व से भिन्न नही है–

मुझे बॉधने आते हो लघु

सीमा मे चुपचाप,

कर पाओगे भिन्न कभी क्या

ज्वाला से उत्ताप?''[2]

उनको अपनी लघुता उसी विराट का अश लगती है। इस लघुता का बोध कर वे पाश्चाताप नही करती। वे प्रश्न करती है कि क्या ज्वाला से ताप को दूर किया जा सकता है? अर्थात् अपने को उस सर्वशक्तिमान सत्ता का अश मानना उनका ध्येय है।

महादेवी की इस प्रणयानुभूति को लेकर भी बहस है। उनके इस निराकार, अलौकिक और अज्ञात के प्रति प्रेम को काम से नही जोडा जा सकता है। 'काम' स्वार्थ की भावना से परिचालित है। इसके विपरीत 'प्रेम' वासना से रहित अत्यन्त उदात्त और उदार वृत्ति है। प्रेम के स्थूल रूप का सम्बन्ध वासना या इन्द्रिय भोग से हे, किन्तु उसका पर्यवसान प्रेम के सूक्ष्म भावनात्मक रूप मे होता है यहॉ प्रिय का अह प्रिय की सत्ता मे भावनात्मक रूप से समर्पित हो जाता है। इसकी उच्चतम परिणति प्रेमी–प्रिय तथा प्रेम की त्रिपुटी के एक होने पर सम्भव होती है। महादेवी के काव्य मे अनेक स्थलो पर यह स्थिति आती है। पुन चेतना लौटने पर प्रेमी को विछोह का अनुभव होता है। यह विछोह लैकिक प्रेम से प्रतीकात्मक रूप मे तीव्रता

---

[1] महादवी वर्मा दीपशिखा पृष्ठ 53

[2] महादेवी वर्मा [illegible] पृष्ठ 106

ग्रहण करता है। इस लौकिक जगह से मोह भग होना नैराश्य को जन्म देता है और नैराश्य के बाद ही उस अज्ञात को जानने की उत्कठा प्रबल होती है। सयोग की स्थिति मे प्रेमी (जीवात्मा), प्रिय (परम–तत्त्व) से साक्षात्कार करती है। पुन विरह उत्पन्न होता है। इन सब अनुभूतियो की काव्यात्मक परिणति ही महादेवी के काव्य मे दृष्टिगोचर होती हे। महादेवी दीपशिखा की एक कविता मे कहती हे–

नूतन प्रभात मे अक्षय गति का वर दे

तन सजल घटा–सा तडित–छटा–सा उर दे

हॅस तुझे खेलने फिर जग मे पहॅुचाया।

तू धूल भरा जब आया

ओ चचल जीवन–बाल मृत्यु–जननी ने अक लगाया। [1]

प्रस्तुत पक्तियॉ 'दीपशिखा' सग्रह के पन्द्रहवी कविता की अन्तिम पक्तियॉ है। अपनी अन्तिम दो पक्तियो से कविता की शुरुआत भी होती हे। जन्म और मरण का बोध प्रारम्भ और अत मे विद्यमान है। जीवात्मा उस ब्रह्म से निकलकर ससार मे आती है और क्रमश मृत्यु–जननी के अक की ओर अग्रसर होती हे। पुनश्च वह परम– तत्त्व अक्षय गतिका वर' देकर ससार मे जीवात्मा को पहॅुचाता है। साथ–साथ यह क्रम चलता रहता है। यहॉ पुनर्जन्म के उदाहरण के माध्यम से जहॉ वे भारतीय दर्शन से प्रेरित है वही ससार की नश्वरता का बोध भी कराती है। आशय यह है कि दर्शन यहॉ विलीन हो गया है। उस अज्ञात के प्रति उन्हे विस्मय भी होता है–

''स्वर्ण–स्वप्नो का चितेरा

नीद के सूने निलय मे।

कौन तुम मेरे हृदय मे?''[2]

प्रिय को 'स्वर्ण–स्वप्नो का चितेरा' कह कर सोन्दर्य की व्यजना भी और निराशा के पश्चात् उपजे प्रश्न के प्रति जिज्ञासा भी। प्रिय के प्रति यह वेदना भाव लगातार बरकरार रहता हे। वे प्रश्न करती है–

---

[1] महादेवी वर्मा दीपशिखा पृष्ठ 90

[2] उपरिवत साधिनी पृष्ठ 77

"अलि कहाँ सदेश भेजूँ?

मै किसे सन्देश भेजूँ?"[1]

भ्रमर के माध्यम से कवयित्री सन्देश देना चाहती है। वह दुविधा से ग्रसित है। यह स्थिति विश्वात्मा से ऐक्य अनुभव करने के कारण है। इसी कविता मे वे कहती है–

नयन–पथ से स्वप्न मे मिल,

प्यास मे घुल साथ मे खिल,

प्रिय मुझी मे खो गया अब दूत को किस देश भेजूँ?'[2]

यहाँ प्रेमी, प्रिय और दोनो को जोडने वाला कारक प्रेम, ऐक्य की स्थिति तक पहुँच गये है। पर इस ऐक्य की स्थिति मे भी उनका अस्तित्व विद्यमान है और तभी वे सन्देश को कहाँ और किसे भेजने की बात करती हे। एक ओर यहाँ अद्वेत और दूसरी तरफ द्वैत की स्थिति विद्यमान है। छायावादियो का यही भाव उन्हे प्राचीन रहस्यवादी कवियो से अलग करता है। वे प्रेमी और प्रियतम की तुलना भी करती है–

"उनसे कैसे छोटा है

मेरा यह भिक्षुक जीवन

उनमे अनत करुणा है

इसमे असीम सूनापन।"[3]

विश्वात्मा की विशाल छाया जिसमे जग बालक सा सोता है"[4] से निश्चित रूपेण उनका 'भिक्षुक जीवन छोटा है। कहाँ वे करुणेश है और कहाँ इसे ससार के दु ख व्याप्त है। यदि देखा जाय तो बौद्ध दर्शन का भी हल्का सा प्रभाव है ओर अपने अस्तित्व का बोध भी। कवयित्री का लोक भी ऊँचाईयाँ ग्रहण करता है–

"तुम्हे बाँध पाती सपने मे

तो चिर जीवन--प्यास बुझा

---

[1] उपरिवत दीप–शिखा पृष्ठ 101

[2] उपरिवत पृष्ठ 101

[3] महादेवी वर्मा यामा नीहार पृष्ठ 17

[4] उपरिवत पृष्ठ 17

लेती उस छोटे क्षण अपने मे।''[1]

यहाँ कवयित्री स्वप्न मे मिलन की बात करती है। और कभी उसको अनुभव होता है –

''वह सपना बन आता जागृति मे जाता लौट।

मेरे श्रवण आज बैठे है इन पलको की ओट,

व्यर्थ मत कानो मे मधु घोल।

हठीले हौले हौले बोल। [2]

कुल मिलाकर उनके प्रेम मे एक सात्विकता तथा उदात्तता का भाव विद्यमान रहता है। यही नही उनके मिलन की सुखानुभूति मे भी यह भाव विराजमान हे–

नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय आज हो रहा कैसी उलझन।

रोम–रोम मे होता री सखि एक नया उर का–सा स्पन्दन।

पुलको से भर फूल बन गये

जितने प्राणो के छाले है।,

अलि क्या प्रिय आने वाले है? [3]

महादेवी मर्यादा कही नही तोडती। प्रेम का उदात्त भाव है परन्तु स्थूल तथा वासना का भाव नही है। महादेवी अनत राह की राही है–

''किन्तु तेरा नीरव सगीत

निरतर करता है आह्वान

यही क्या है अनन्त की राह

अरे मेरे नाविक नादान।''[4]

---

[1] उपरिवत नीरजा पृष्ठ 16
[2] उपरिवत पृष्ठ 38
[3] उपरिवत पृष्ठ 82

[1] महादेवी वर्मा नीहार

उनके बेसुध प्राणो को प्रिय का नीरव सगीत निरन्तर आह्वान करता सुनाई पड रहा है। इस अनन्त की राह पर ले चलने वाले प्रियतम को वे 'नादान नाविक से सम्बोधित करती है। महादेवी ने ब्रह्म के अविकारी रूप को प्रकृति के सादृश्य से प्रकट किया है–

"उसी नभ सा क्या वह अविकार
और परिवर्तन का आधार।"[1]

महादेवी यह जानती है कि जीव असीम ज्योति पुज का एक अश है–

तुम असीम विस्तार ज्योति के
मै तारक सुकुमार।"[2]

और चूँकि जीव ब्रह्म से अशी रूप मे पृथक हो गया है अत वह माया के बन्धन मे व्याकुल रहता है। उसका चैतन्य इस अश रूप मे जड माया से मिलकर मानव योनि मे जीता है। ससार मे व्याप्त कोलाहल का यही आधार है–

"चेतना से जडता का बधन
यही ससृति का हृत् कपन।[3]

अत इस जगत् मे चिर मिलन सभव नही हे और माया से ग्रसित होने के कारण सबको विरह सहना पडता है। यह मायायुक्त ससार परम तत्त्व मे उसी प्रकार विलीन हो जाता है जैसे प्रभात के आलोक मे नीहार–

"धुल जाता उसका प्रभात के
कुहरे सा ससार।"[4]

और अत मे कवयित्री कह उठती है–

"अलि मै कण–कण को जान चली
सबका क्रन्दन पहचान चली।[1]

---

[1] उपरिवत यामा पृष्ठ 107
[2] महादेवी साहित्य यामा पृष्ठ 103
[3] महादेवी वर्मा यामा पृष्ठ 107
[4] [illegible] पृष्ठ 103

सार रूप मे यह कहा जा सकता है कि महादेवी मूलत वेदान्त और औपनिषदिक–दर्शन से प्रभावित है। अद्वैतवाद उनकी दार्शनिक निष्पत्तियो का आधार है। कही–कही बौद्ध–दर्शन का प्रभाव भी उनके काव्य मे परिलक्षित होता है। दर्शन उनके काव्य के साधारणीकरण मे बाधक न होकर साधक हे। दर्शन को नवीन शब्दावली मे सम्प्रदाय विशेष से मुक्त होकर आत्मसात् करती है। आधुनिकता का उन्मेष उनके दर्शन को अद्वितीय बनाता है। यहॉ जो कुछ भी का अस्तित्व को विद्यमान रखते हुए। सारे ब्रह्माण्ड मे विश्वात्मा की छवि देखना और सारे प्राकृतिक अवययो तथा रागजनित सम्बन्धो के माध्यम से अभिव्यक्ति देना – उनका लक्ष्य है। रूप, अरूप लघु, गुरू आदि सभी मे उस शाश्वत एकता का अनुभव करना उनके दर्शन की काव्यत्मक परिणति मे दृष्टिगोचर होता है। महादेवी के यहॉ जो कुछ भी – जीवन मे रहकर है, पलायन कर नही।

कल्पना

सौन्दर्य के साधक तत्त्वो मे कल्पना का विशिष्ट स्थान है। यह कलाकार की सर्जनात्मक शक्ति है। इसमे सृजन–शक्ति मूल है, अत व्युत्पत्तिमूलक अर्थ मे भी इसे ''सृष्टि करना' (क्लृय+अन+आ) कहा गया है। अग्रेजी के इमेजिनेशन के इमेज (मानसिक चित्र) मे भी यही अर्थ द्योतित होता है। इमेजिनेशन शब्द कल्पना की अपेक्षा भावना से अधिक व्यक्त होता है। भारतीय आचार्यो ने इसे प्रतिभा की सज्ञा से विभूषित किया है। पाश्चात्य काव्य शास्त्र मे 'प्रतिभा' की जगह 'जीनियस' की अवधारणा है। 'सस्कृत साहित्य की कारयत्री एव भावयत्री प्रतिभा के समानान्तर ही पाश्चात्य काव्य शास्त्र मे 'क्रिएटिव जीनियस' और 'क्रिटिकल जीनियस' का प्रयोग मिलता है।''[2] कारवित्री प्रतिभा तीन प्रकार की मानी जाती है–सहजा, आहार्या और औपदेशिकी। पाश्चात्य साहित्य मे एडीसन ने कल्पना के दो भाग किए है–नैसर्गिक प्रतिभा (नेचुरल जीनियस) और कलात्मक प्रतिभा (आर्टिस्टिक जीनियस)। एडीसन के पश्चात् युग ने शैशवीय तथा अपरिपक्व प्रतिभा (इन्फेन्टिल जीनियस) ओर परिपक्व प्रतिभा (ओरिजनल जीनियस) का उल्लेख किया है। भारतीय वाङ्मय की सहज प्रतिभा' का 'नेचुरल जीनियस' से पर्याप्त साम्य है। आहार्या ओर औपदेशिकी की आर्टफुल जीनियस इन्फेण्टाइन जीनियस और

---

[1] महादेवी वर्मा सा.प.ग. पृष्ठ 155

[2] डॉ० महेन्द्रनाथ राय नव–जागरण और छायावाद पृष्ठ 205

मैकेनिकल जीनियस से साम्य रखती है। पाश्चात्य साहित्य का पोएट' और पोएटास्टर' तथा क्रिटिक और क्रिटिकास्टर' का विवेचन भावयित्री प्रतिभा के तत्त्वाभिनिवेषी, आरोचिकी, अविवेकी और सतृष्णाम्यवहारी की अर्थ–सगति को स्पष्ट करता है।'[1]

कल्पनाशील कवि या कलाकार अतर्दृष्टि से सम्पन्न होकर जीवन जगत का सूक्ष्म अनुशीलन करता है। व्यक्त मे अव्यक्त का दर्शन करने के कारण उसकी रचना मे ज्ञात वास्तविकता भी नवीन लगती हे। इस अतदर्शन से जिस नवीन सौन्दर्य की अनुभूति होती है उसे अप्रस्तुत विधायिनी कल्पना कहते हे। इसका स्थूल रूप ललित कल्पना कहा जाता हे। ललित कल्पना सौन्दर्यानुभूति के स्थान पर विस्मय और कोतुहल को जगाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने काव्य मे कल्पना की अपेक्षा भाव–बोध को अधिक महत्व दिया है। उनके अनुसार–

जब भाव की उमग ही कल्पना को प्रेरित करती है, तब कवि का मूल गुण भावुकता अर्थात् अनुभूति की तीव्रता हे। कल्पना उसकी सहयोगिनी है। पर ऐसी सहयोगिनी, जिसके बिना कवि अपनी अनुभूति को दूसरे तक पहुँचा ही नही सकता।"[2]

कल्पना के सृजन का लक्ष्य सौन्दर्यानुभूति हे या भावानुभूति, इस सम्बन्ध मे पाश्चात्य और भारतीय दृष्टिकोणो मे भिन्नता हे। पाश्चात्य दृष्टिकोण के अनुसार वस्तु और भाव का कल्पना के द्वारा सम्मूर्तन ही कला व्यापार हे ओर रूप–सौन्दर्य की अनुभूति उसका लक्ष्य। अत पाश्चात्य मनीषी कल्पना को साधन नही मानते जबकि भारतीय मनीषी उसे साधन मानते हे। वस्तुत 'कल्पना एक ऐसी मानसिक सृष्टि है, जिसमे सोन्दर्य–बोध के साथ सम्मूर्तन की क्षमता और भाबोदबोधन का गुण रहता हे।'[3]

कल्पना कवि की अनुभूति का रूप देकर अभिव्यक्ति प्रदान करती है। 'काव्य वस्तु का सारा रूप–विधान कल्पना की क्रिया से होता हे। काव्य के प्रयोजन की कल्पना वही होती हे जो हृदय की प्रेरणा से प्रवृत्त होती हे और हृदय पर प्रभाव डालती है।'[4] कल्पना के द्वारा प्रस्तुत तथा अप्रस्तुत की भी योजना होती है। यहॉ तक कि "भाषा–शैली को अधिक व्यजक मार्मिक ओर चमत्कारपूर्ण बनान मे भी कल्पना ही काम करती है। कल्पना की सहायता

---

[1] उपरिवत पृष्ठ 205-206

[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिंतामणि भाग 2 पृष्ठ 114

[3] [illegible] पृष्ठ 198

[4] [illegible] पृष्ठ [illegible]

यहाँ पर भाषा की लक्षणा और व्यजना नाम की शक्तियाँ करती है।'[1] अत कल्पना काव्य के निर्माण और रसास्वदन दोनो मे सहयोगी है। क्योकि प्रत्यक्ष रूप–विधान के उपादान से ही कल्पित रूप–विधान होता है।

महादेवी वर्मा ने अनुभूति की तुलना मे कल्पना को दूसरे स्तर पर स्थान दिया है फिर भी वे काव्य सृजन हेतु कल्पना की अनिवार्यता पर बल देती है–

'कलाकार यदि सत्य अर्थो मे कलाकार हो ता वह कल्पना को सौन्दर्यमय आकार देगा, उसमे वास्तविकता का रग भरेगा और उससे जीवन–सगीत की सुरीली लय की सृष्टि कर लेगा।"[2]

महादेवी प्रत्यक्ष ज्ञान की पृष्ठिभूमि को कल्पना के लिए आवश्यक मानती है–

मरा प्रत्यक्ष ज्ञान मेरी कल्पना के पीछे सदा हाथ बॉध कर चलता रहता है।[3]

वे कल्पना को यथार्थ से जोडती हे–

"कल्पना के सम्बन्ध मे यह स्मरण रखना उचित है कि वह स्वप्न से अधिक ठोस धरती चाहती है। प्राय परिचित और प्रिय वस्तुओ से सम्बन्ध रखने के कारण उसका विदेशी होना सहज नही। विशेषत प्रत्येक कवि और कलाकार अपने सस्कार, जीवन तथा वातावरण के प्रति इतना सजग सवेदनशील होता है कि उसकी कल्पना, उसके ज्ञान और अनुभूतियो की चित्रमय व्याख्या बन जाती है।"[4]

महादेवीकी कल्पना मे व्यवहारत विस्मय ओर जिज्ञासा का भाव अधिक मिलता हे। ऐसा उनकी अलोकिक प्रणयानुभूति के कारण हे। महादेवी जी ने कल्पना के द्वारा ही रहस्यानुभूति को सबलता एव प्रोढता प्रदान की है। अतीन्द्रिय एव अलौकिक अरूप को रूप प्रदान करने के लिए कल्पना की तीव्रता और सूक्ष्मता आवश्यक है। महादेवी के काव्य मे कल्पनाधिक्य का यही कारण हे। हृदय की वेदना, करुणा एव प्रणय भावना की अभिव्यक्ति के लिए महादेवी ने विभाव, अनुभाव तथा अप्रस्तुतो का जो रूप खडा किया है – वह समस्त व्यापार कल्पना की ही क्रीडा है। बिम्ब–विधान द्वारा भावो को मूर्त्तता प्रदान करने एव प्रतीको के

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रस–मीमासा पृष्ठ 296

[2] महादवी वर्मा क्षणदा पृष्ठ 50

[3] [illegible] [illegible] [illegible] 11

[4] [illegible] [illegible] [illegible] 92-93

माध्यम से अनुभूति की साकतिक ओर सटीक व्यजना करने की क्षमता भी महादेवी जी को अपनी उर्वर कल्पना से प्राप्त हुई है।

महादेवी की कल्पना का सौन्दर्य अपनी चित्रमयता मे बाह्य जगत के विविध रूपो का विधान करता हुआ, मूलरूप मे उनके अनुभूतिगत–सोन्दर्य को ही मूर्तिमान करता है। विभाव–पक्ष की योजना मे उनकी कल्पना अनेक सौन्दर्यमय चित्रो का इस प्रकार विधान करती हे जिससे कल्पना को प्रेरित करने वाला हृदय का भाव साकार हो उठता है, यथा

'खिल गया जब पूर्ण तू –
मजुल सुकोमल पुष्पवर।
लुब्ध मधु के हेतु
मडराते लगे आने भ्रमर।

स्निग्ध किरणे चन्द्र की –
तुझसे हॅसाती भी सदा
रात तुझ पर बारती थी
मोतियो की सपदा।''

प्रस्तुत गीत मे महादेवी वर्मा ने अपनी विधायक कल्पना से पुष्प जीवन के मार्मिक चित्र अकित किये है। यहॉ महादेवी की कल्पना पुष्प के माध्यम से मानव जीवन के मार्मिक तथ्यो का उदघाटन करती हे।

काव्य मे प्रस्तुत की भॉति अप्रस्तुत का रूप–विधान भी कल्पना ही करती है। महादेवी के काव्य मे अप्रस्तुत–योजना के भी अनेक चित्र मिलते है। प्रस्तुत भाव को साकार करने मे सर्मथ ये चित्र उनकी कल्पना वेभव का उदघोष करते हे। उद्दीपन के रूप मे जहॉ प्रकृति वर्णन हुआ है वहॉ अलकारो के माध्यम से बहुत सुन्दर चित्र अकित हुए हे। जैसे–

''विधु की चॉदी की थाली
मादक मकरद भरी सी
जिसमे उजियारी रात

लुटती–धुलती मिसरी सी।[1]

मकरद से भरी चॉदी की थाली, चन्द्रमा की शुभ्र आभा के साथ हृदय की मादकता को भी व्यजित करती है। इसी प्रकार चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से उज्ज्वल राते, चन्द्रमा रूपी थाली मे जो मिसरी सी घोलकर लुटा रही है वे हृदय की माधुर्य भावना को उद्दीप्त करने वाली है।

भाषाा की मूर्ति विधायिनी शक्ति भी कल्पना का ही व्यापार है। कल्पना का शब्द–शक्ति विषयक सौन्दर्य भी अभिधा, व्यजना और लक्षणा के माध्यम से महादेवी वर्मा के काव्य मे उपलब्ध होता है। वे कहती है–

होकर सीमाहीन, शून्य मे

मडरायेगी अभिलाषे।[2]

उनके असीम सूनेपन से भरे हुए हृदय मे अभिलाषये उत्पन्न होती है। उनकी कल्पना इन अभिलाषाओ को मडराता हुआ देखती है। अभिलाषाओ का मडराना से जो भाव उत्पन्न होता है उसकी तुलना आकाश मे पक्षियो के मडराने से की जा सकती है।

सार रूप मे यह कहा जा सकता हे कि महादवी के काव्य मे कल्पना का वैभव अपने अपार सौन्दर्य के साथ बिखरा पडा हे। विभाव–पक्ष, अप्रस्तुत–विधान, भाषा की मूर्तिमत्ता आदि के रूप मे कवयित्री की गहन अनुभूतियो के सौदर्य को उद्घाटित करने मे कल्पना एक प्रमुख साधन बनी हे। उनके काल्पनिक रूपो का आधार यह प्रत्यक्ष जगत ही है। यद्यपि प्रस्तुत की दृष्टि से उनके कल्पना–प्रणय, वेदना या करुणा के क्षेत्र से बाहर नही निकल पाई है, परन्तु इसकी व्यजना के लिए अप्रस्तुत रूप मे उनकी कल्पना प्रकृति के विविध रूपो की ओर बराबर गई है। प्रकृति के अतिरिक्त जीवन के अन्य क्षेत्रो की ओर उनकी कल्पना कम ही गई है।

प्रतीक

मानव की जिज्ञासा तथा अन्वेषण की प्रवृत्ति के कारण प्रतीक का जन्म होता हे। मानव मन जटिल तथा सश्लिष्ट प्रक्रियाओ को सगठित विचारो के रूप मे ग्रहण करता हे। इसी के चलते अस्पष्ट अनुभूतियॉ अभिव्यक्तिकरण के लिए प्रतीको का रूप सृजन करती है।

---

[1] महादेवी वर्मा गीत पर्व पृष्ठ 39
[2] [illegible] पृष्ठ 35

वस्तुत चेतनशील मानव जब अपने मनोभावो को व्यक्त करने मे असफल रहता है तब वह उन्हे प्रतीको के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास करता है। साहित्य, मनोविज्ञान, गणित ज्योतिष, विज्ञान आदि सभी मे प्रतीक अदृश्य वस्तुओ का प्रतिनिधित्व करके अनुभूति–क्षेत्र को व्यापक बनाते है। "प्रतीक का शाब्दिक अर्थ हे–अवयव अग, पता, चिन्ह, निशान। किसी पद्य के आदि या अन्त मे कुछ लिखकर या पढकर उस पूरे वाक्य का पता लगाना।"[1] वस्तुत "प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (गोचर या प्रस्तुत) वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विरूप का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती हे।"[2] प्रतीक वस्तुओ के पुन स्थापना के साथ भावो के प्रेषण का माध्यम भी होता है। महादेवी के काव्य मे भी प्रतीक मुख्यत भावो के सम्प्रेषण का माध्यम हे। महादेवी की प्रतीकात्मकता का सहज भाव केवल उनकी कविताओ मे नही अपितु उनके काव्य सग्रहो मे भी दिखाई देता हे–

नीहार – नैराश्यपूर्ण वातावरण का प्रतीक हे। दिन का प्रथम याम होने के कारण साधना की प्रारम्भिक धुँधली अवस्था का भी प्रतीक हे।

रश्मि – आशा, उल्लास–भावना तथा साधना की दिशा की स्पष्टता का प्रतीक है। यह अनुभूति के स्थान पर चितन का भी प्रतीक है।

नीरजा – नीरजा जल मे विकसित सूर्य की ओर उन्मुख रहती हे। कवयित्री भी उस परम तत्त्व की ओर उन्मुख है। अत यह जीवन की उपासना और साधना का प्रतीक है।

सान्ध्यगीत – यह साधना के विकास और विश्वास का प्रतीक है। साथ ही जीवन की विरह–निशा का भी प्रतीक है।

दीपशिखा – यह विरह–निशा को क्षण–क्षण झेलती हुई साधना का प्रतीक हे।

सधिनी – सधि बेला का प्रतीक है ओर मिलन तथा सयोग सुख को व्यक्त करती है।

प्रतीक अप्रस्तुत होने के कारण प्रस्तुत का स्थानापन्न होकर आता है तथा उसके रूप, गुण आदि की व्यजना करता है। अत प्रतीको का वर्गीकरण दो दृष्टियो से किया जा सकता हे –

---

[1] नगन्द्र नाथ बसु (स०) विश्वकाश भाग 14 पृष्ठ 546

[2] डा० धीरेन्द्र वर्मा (स०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृष्ठ 471

[3] [illegible] महादेवी [illegible] पृष्ठ 198

(अ) प्रतीयमान विषय की दृष्टि से

(ब) स्रोत की दृष्टि से

(अ) प्रतीयमान विषय की दृष्टि से

जब प्रतीयमान विषयो की दृष्टि से जिनका व्यजक या स्थानापन्न होकर प्रतीक काव्य मे आते है तब उसे प्रतीयमान विषय से सम्बन्धित प्रतीक कहा जाता है। इसे आध्यात्मिक, भावत्मक और रूपात्मक प्रतीको मे वर्गीकृत किया जा सकता है। महादेवी के काव्य मे प्रतीयमान विषयो की दृष्टि से इन्ही प्रतीको की बहुलता है।

महादेवी के काव्य का अगी भाव प्रणय भावना हे जो अपनी रहस्यात्मकता ओर अलौकिकता मे आध्यात्मिक हे। वासना के अभाव के चलते उनकी प्रणय–भावना अतीन्द्रिय लोक की वस्तु बन गई हे। महादेवी की साधना, दार्शनिकता, प्रेमानुभूति एव कला के माध्यम से ही सत्य की अभिव्यक्ति का आग्रह होने के कारण उनके काव्य मे आध्यात्मिक प्रतीको का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। उन्होने अपने काव्य मे लौकिक श्रृगार के आवरण मे आध्यात्मिकता की आशसा की है। प्रस्तुत है आत्मा और उसकी साधना की सबल अभिव्यक्ति 'दीपक प्रतीक द्वारा–

''किन उपकरणो का दीपक,

किसका जलता है तेल

किसकी वर्त्ति, कोन करता

इसका ज्वाला से मेल? [1]

महादेवी ने इस ससार की माया को दर्पण प्रतीक द्वारा व्यक्त किया है–

''रहे खेलते ओर मिचौनी

प्रिय जिसके परदे मे 'मै' तुम

टूट गया वह दर्पण निर्मम। [1]

---

[1] महादेवी साहित्य संग्रह पृष्ठ 129

महादेवी की काव्य–साधना अज्ञात प्रियतम, अनन्त रहस्य तथा मिलन और विरह की अनवरत यात्रा रही है। इसे वे पथ, पथ तथा प्राण प्रतीको के माध्यम से व्यक्त करती है–

' पथ रहने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।'[2]

महादेवी ने प्रिय, प्रियतम, निर्मोही,निष्ठुर, करुणेश आदि सम्बोधन देकर निरपेक्ष सत्ता को सापेक्ष सत्ता मे रूपातरित करने का प्रयास किया है। वे परम्परागत साधनात्मक प्रतीको को न अपनाकर मदिर, शलभ, नाव, जलजात, आरती आदि प्रतीको के माध्यम से अपने भावो को मूर्त्त करती है।

उनके भावात्मक एव मनोवैज्ञानिक प्रतीको मे भाव–प्रवणता अपनी चरम–सीमा पर है। सौन्दर्य, राग और प्रणय से परिचालित ये भाव कही विरह हे तो कही रूप, रग, ध्वनि के सश्लिष्ट रूप मे व्यजक भी। वे कहती है–

"स्वप्नलोक के फूलो से कर

अपने जीवन का निर्माण, [3]

यहॉ फूल प्रतीक का प्रयोग स्वप्निल इच्छाओ एव भावो के लिए किया गया हे। उनका यह प्रणय–व्यापार अलोकिक प्रतीत होता हे। ये स्वप्न–प्रतीक उनकी अतृप्त इच्छा को भी व्यक्त करते है–

"तुम्हे बॉधने पाती सपने मे

तो चिर जीवन प्यास बुझा लेती

उस छोटे क्षण अपने मे। [4]

यहॉ उनके अतृप्त वासना की तीव्र कसक उन्हे स्वप्न मिलन मे पूर्ण करने की उत्सुकता प्रकट करती है।

अस्तु, उनके काव्य मे मनोगत, वस्तुगत ओर सोन्दर्य गत भाव तथा विचारो के प्रतीक प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध हे।

---

[1] महादेवी वर्मा नीहार पृष्ठ 64

[2] उपरिवत गीत पर्व पृष्ठ 135

[3] उपरिवत नीहार पृष्ठ 16

[4] महादेवी वर्मा नीरजा पृष्ठ 14

जहाँ तक उनके काव्य मे रूपात्मक प्रतीको का प्रश्न है, वहाँ वे मानवीकरण की प्रवृत्ति पर आश्रित है। प्रकृति भी नारी–रूप मे चित्रित है और उन्होने इसका मानवीकरण कर दिया है, यथा–

''रूपसि, तेरा घन केशपाश।

श्यामल श्यामल कोमल–कोमल

लहराता सुरभित केशपाश।[1]

उपरिलिखित पक्तियो मे प्रकृति सुन्दरी के श्याम स्निग्ध एव सुगधित घने केशो का वर्णन है। यहाँ प्रकृति का मानवीकृत रूप निदर्शित होता हे।

(ब) स्रोत की दृष्टि से

प्रतीयमान अर्थ की व्यजना हेतु प्रतीक ग्रहण करने के लिए महादेवी की दृष्टि कभी प्रकृति तो कभी इतिहास, पुराण, सस्कृति, दर्शन, कला आदि क्षेत्रो पर जाती है। स्रोत की दृष्टि से यदि देखा जाय तो महादेवी ने प्रकृति, पौराणिक ऐतिहासिक, सास्कृतिक, तथा कला आदि के क्षेत्रो से प्रतीको को चुना है। इनके प्राकृतिक–प्रतीको को जड तथा चेतन प्रतीको मे विभाजित किया जा सकता है। जड प्रतीको का भी प्रयोग उनके काव्य मे दृष्टिगोचर होता है–

''धीरे–धीरे उतर क्षितिज से आ बसत रजनी।'[2]

यहाँ प्रकृति का चित्राकन एक भावलीन प्रेमिका के प्रतीक रूप मे है।

कली (युवती) मधुमास (योवन), मधुमदिरा (सोन्दर्य प्रेम), बात (युवक), तरणी (जीवन), पावस (विरह), तम (दु ख) आदि अवययो का प्रतीकात्मक रूप मे प्रयोग उनके काव्य मे मिलता हे।

प्रकृति के चेतन प्रतीको का प्रयोग उनके यहाँ कम ही हुआ हे। पर जहाँ भी ये प्रतीक प्रयुक्त हुए हे वहाँ उनका काव्य–वेभव उत्कृष्टतम रूप मे सामने आया हे , यथा

'मधुर पिक होले–हौले बोल

---

[1] अग्निरेखा पृष्ठ 199

[2] महादेवी साहित्य [illegible] पृष्ठ 197

हठीले हौले–हौले बोल।"[1]

*   *   *

की का प्रिय आज पिजर खोल दे।[2]

यहॉ पिक व कीर चेतन प्रतीक के रूप मे आये है। अपने काव्य मे चातक, बुलबुल, मीन, चकोर आदि चेतन प्रतीको के माध्यम से भी वे अपनी भावना को सौन्दर्यमयी आयाम प्रदान करती है।

उनके काव्य मे पौराणिक ऐतिहासिक एव सास्कृतिक स्रोतो से ग्रहीत प्रतीको को सीमित स्थान ही मिला हे। पौराणिक प्रतीको मे दीपक तथा ब्रह्म को लिया जा सकता है। महादेवी ने जीवात्मा और परमात्मा की भिन्नता को 'घन से तडित–विलास'[3] कहा है। यहॉ घन और तडित–विलास जीवात्मा तथा परमात्मा की भिन्नता को प्रकट कर रहे है।

सूर्य, शतदल, दिवा निशि सम्पुट आदि वेद तथा उपनिषदो से ग्रहीत प्रतीक हे। उन्होने कमल आदि सास्कृतिक प्रतीको का आलम्बन भी ग्रहण किया है।

इन सब के अलावा कला के क्षेत्र से भी कुछ प्रतीको को लिया गया है तथा उन्हे जीवन के विविध क्षेत्रो से ग्रहण किया गया है। यथा–

'इस जादुगरनी वीणा पर

गा लेने दो क्षण भर गायक।[4]

*   *   *

'बीन हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ।'[5]

*   *   *

"विश्व वीणा मे अपनी आज

मिला लो यह अस्फुट झकार।[1]

---

[1] महादवी वमा नीरजा पृष्ठ 35

[2] महादवी वर्मा सान्ध्यगीत पृष्ठ 62

[3] उपरिवत रश्मि पृष्ठ 57

[4] महादेवी साहित्य नीरजा पृष्ठ 225

[5] उपरिवत पृष्ठ 211

वीणा तार, झकार, राग एव गायक सगीत कला के क्षेत्र से लिये गये प्रतीक है। इसी प्रकार रेखा, रग, छाया, प्रकाश, चितेरा आदि चित्रकला से गृहीत प्रतीक है। शिल्पी, प्रतिभा, पाषाण, मूर्तिकार आदि मूर्त्तिकला के क्षेत्र से गृहीत प्रतीक हे।

महादेवी के काव्य मे दैनिक जीवन से गृहीत प्रतीको की भी पर्याप्त सख्या है। इनके प्रतीकार्थ कोष्ठक मे दिये गये है–

दीपक (आत्मा, प्रेम जीवन, प्राण, तादात्म्य आशा, वेदना, अज्ञात, प्रियतम, निर्वाणन्मुख भाव), मोती (अश्रु बिदु), तार (भाव), सुनहला प्याला (सूर्य), रजत प्याला (चन्द्रमा), झझा (बाधा), झझा (दु ख, क्लेश, तपन, सघर्ष), धूल (जगत की असारता, लघुता), प्यास (तीव्र आकॉक्षा), धूम (अस्पष्टता, उलझन) आदि उनके कतिपय प्रमुख प्रतीक है जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रो से गृहीत है।

अस्तु, महादेवी के प्रतीक उनके काव्य के शिल्प तथा भाव–सोन्दर्य मे अभिवृद्धि ही करते है। ये सभी प्रतीक उनके मनोभावो को व्यक्त करने मे सफल है। अत इनके माध्यम से सौन्दर्य तथा रहस्य की सृष्टि सुन्दर ढग से हुई है।

बिम्ब

किसी वस्तु के इन्द्रियजन्य अनुभव का हमारे हृदय पर जो प्रभाव पडता है और उससे जिस प्रकार की मानस–अभिव्यक्ति होती है, उसे 'बिम्ब कहते है। मनुष्य के मानस–पटल पर मूर्त एव अमूर्त रूप मे अनेक रूप–भाव–व्यापार अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहते हे। इन्हे आकार या इन्द्रियग्राह्यता प्रदान करने के निमित्त बिम्बो की सृष्टि होती है। साहित्य के साथ–साथ मनोविज्ञान, कला तथा सगीत आदि के क्षेत्रो मे भी इसकी उपयोगिता स्वय सिद्ध है। भाषा और चितन के मूल उपादान तो बिम्ब है ही।

कविता मे बिम्ब–विधान का स्वरूप बहुत कुछ कवि के निजी व्यक्तित्व पर निर्भर करता हे। अत कवि की सौन्दर्य चतना से सम्बद्ध सभी विशिष्टाए ओर विकृतियॉ उसके विम्ब–विधान मे दृष्टिगोचर होती हे। अत कविता मे कथ्य का सम्पूर्ण सोन्दर्य प्रदान करने मे बिम्ब–विधान ओर प्रतीक – विधान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हे। ''मोनर विलियम्स के

[1] महादेवी साहित्य [illegible] पृष्ठ 36

सस्कृत–इगलिश कोश के अनुसार भारतीय सन्दर्भो मे इस शब्द का रूपान्तरण सूर्यचन्द्र मण्डल, प्रतिच्छवि, प्रतिच्छाया, प्रतिबिम्ब अथवा प्रत्यकित रूप चित्र के अर्थ मे माना गया है।'[1] वही ब्रिटेनिका विश्वकोश के अनुसार "बिम्ब एक ऐसी चेतन स्मृति हे जो विचारो की मूल उत्तेजना के अभाव मे उन विचारो को सर्म्पूणत अथवा अशत प्रस्तुत करती है।'[2] काव्य मे अर्मूत विचार या भावना का पुनर्निमाण बिम्ब के द्वारा होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रस निष्पत्ति तथा साधारणीकरण दोनो के लिए बिम्ब की अनिवार्यता स्वीकार की हे। 'बिम्ब विधान द्वारा ही कवि हमारे हृदय मे आनन्द और सौन्दर्य की रागात्मक अनुभूति करने मे सफल होते है। सिद्ध कवि अपने भावो मे अर्थवत्ता के साथ प्राणवत्ता को लाता है। यही कारण है कि कविता मे अर्थ ग्रहण मात्र से काम नही चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित हे।"[3] अत आन्तरिक मनोभावो के चित्र होने के कारण बिम्ब की व्यापकता स्वय सिद्ध हे। वस्तुत प्राचीन भारतीय वितन मे बिम्ब पर विचार ठीक उसी तरह नही हुआ है, जिस रूप मे वह आज पश्चिमी चितन मे हो रहा है। हिन्दी मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इस पर आधुनिक ढग से विचार करते हे। बिम्ब की प्रतिष्ठा के केन्द्र मे यूरोप मे 'इमैजियम' नाम से चला काव्यान्दोलन भी है।

एजरा पाउण्ड का कहना है कि "जीवन मे बहुत – से बडे–बडे ग्रन्थो का निर्माण करने की अपेक्षा एक (सफल) बिम्ब का निर्माण अधिक श्रेयस्कर है।'[4] वड्र्सवर्थ ने बिम्ब की महत्ता को स्वीकारते हुए 'काव्य को मानव या प्रकृति का बिम्ब माना है।'[5] भाषा की सरलता चित्रमयता भावात्मकता तथा सगीतात्मकता बिम्ब का प्राणतत्व है। आध्यात्मिक कवि भी उत्कृष्ट बिम्ब विधान मे विश्वास करते है। मानसिक – अभिव्यक्तियो का पर्यवसन सहजानुभूति के रूप मे साहित्य मे होता हे। महादेवी के काव्य मे यही सहजानुभूति बिम्बो के रूप मे उभर पडी है। करुणा व्यथा, वेदना तथा एकाकीपन उनके काव्य मे सर्वत्र निदर्शित होता है। फ्रैक कारमोड ने भी बिम्ब–विधान मे कवि की वेदना तथा एकाकीपन की चर्चा जीवन की कथा व्यथा को लेकर की है।[6]

---

[1] डॉ० नगन्द्र काव्य–बिम्ब पृष्ठ 4

[2] इन्साइक्लापीडिया ब्रिटनिका खण्ड 12 पृष्ठ 103

[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि भाग 1 पृष्ठ 145

[4] डॉ० उदयभानु सिंह (स०) छायावाद पृष्ठ 133

[5] वड्र्सवर्थ इगलिश क्रिटिकल एसे पृष्ठ 14

[6] [illegible] पृष्ठ 13

छायावादियो ने बिम्ब के लिए प्राय चित्र शब्द का प्रयोग किया है और उत्कृष्ट चित्र – विधान के लिए भाव, चित्र तथा शब्द चयन की अन्विति को अनिवार्य माना है। निराला का कहना है कि 'जहॉ चित्र और भाव का समन्वय अनुकूल शब्दो के माध्यम से व्यक्त होता है, वहॉ उत्कृष्ट कविता बनती है।"[1] सुमित्रानन्दन पत ने पललव की भूमिका मे लिखा है कि कविता के लिए चित्र – भाषा की आवश्यकता पडती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हो , सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पडे, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि मे ऑखो के सामने चित्रित कर सके, जो झकार मे चित्र और चित्र मे झकार हो ।[2] अत छायावादी कविता मे प्रारम्भ से अत तक बिम्बो की प्रचुरता हे। महादेवी वर्मा की भावाभिव्यजना का सोन्दर्य उनके बिम्बो से निखरता हे। उनके काव्य – बिम्बो का निर्माण कल्पना, भाव और बुद्धि तीनो के सयोग से हुआ है' उद्भव के आधार पर बिम्ब–विधान दो तरह से सम्पन्न होता है– स्मृतिजन्य और स्वरचित और ज्ञानेन्द्रियो के आधार पर दृष्टि, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श आदि[3] महादेवी की कविता मे भी उद्भव के आधार पर स्मृतिजन्य बिम्ब और स्वरचित बिम्बो का विधान मिलता है।

स्मृतिजन्य बिम्ब मे पूर्वगामी अनुभूति की पुन सृष्टि होती है। महादेवी के काव्य मे अज्ञात प्रियतम या अन्य की स्मृति या स्वप्न अनेक स्थानो पर उपलब्ध है। द्रष्टव्य है एक उदाहरण –

किस भॉति कहूॅ केसे थे

वे जग से परिचय के दिन

मिश्री सा घुल जाता था

मन छूते ही ऑसू कन।[4]

प्रस्तुत उद्धरण मे जीवन के पूर्व परिचय का स्मृत बिम्ब दृष्टिगोचर होता है। इसकी सृष्टि कल्पना के आधार पर हुई है।

---

[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला प्रबन्ध प्रतिमा पृष्ठ 282-283
[2] पत [illegible] । पृष्ठ 160
[3] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (सं०) हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृष्ठ 431
[1] महादेवी वर्मा यामा [illegible] पृष्ठ 83

स्वचरित बिम्ब नूतन और मौलिक होते है। इसके निर्मायक घटक पूर्व के अनुभव से ही लिए जाते है। पर इनकी योजना नवीन ढग से करके कवि नूतन प्रतिमा खडा करता है। कवि की विधान चार प्रकार से होता है – 1 सयोजन 2 वियोजन, 3 वृहदीकरण ओर 4 लघ्वीकरण। इस प्रकार इनके द्वारा कवि की कल्पना स्वरचित बिम्बो का निर्माण करती है। महादेवी के काव्य मे भी स्वचरित बिम्बो का प्राचुर्य है। प्रस्तुत हे एक उदाहरण –

जिन नयनो की विपुल नीलिमा

मे मिलता नभ का आभास

जिनका सीमित उर करता था

सीमाहीनो का उपहास।

प्रस्तुत पक्तियो मे कल्पना के वृहदीकरण से बिम्ब–विधान सम्पन्न हुआ है।

महादेवी वर्मा के काव्य मे पॉचो ज्ञानेन्द्रियो के आधार पर ऐन्द्रिक बिम्बो की सृष्टि होती है। ज्ञानेन्द्रियो के आधार पर बिम्बो का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है – (क) 1 दृष्टि या रूप–सवेदन बिम्ब, 2 शब्द–सवेदन बिम्ब, 3 गन्ध–सवेदन बिम्ब, 4 रस–सवेदन बिम्ब, 5 स्पर्श–सवेदन बिम्ब। (ख) सहसवेदनात्मक बिम्ब।

बिम्ब का प्रमुख आधार दृष्टि या चक्षुरिन्द्रिय माना जाता है। अत रूपात्मकता बिम्ब का प्रधान अग है। महादेवी मे दृष्टि या रूप–सवेदन बिम्ब की प्रचुरता मिलती है, यथा

धीरे–धीरे उतर क्षितिज से

आ बसन्त – रजनी।

तारकमय नव वेणीबन्धन

शीश–फूल कर शशि का नूतन

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे

चितवन से अपनी।

पुलकती आ बसन्त रजनी।[1]

---

[1] [illegible] 73

यहाँ बसन्त–रजनी का मानवीकृत रूप निदर्शित होता है। महादेवी के कल्पना की उच्चता से परिचालित होकर दृष्टि–सवेदन बिम्ब की सृष्टि हुई है। इस बिम्ब मे रूप के साथ रग, आभा, चितवन आदि की गोचरता भी अकित हुई है।

शब्द–सवेदन बिम्बो मे ध्वनि के आधार पर बिम्बो की सृष्टि होती है। रूप या आकार इस शब्द या ध्वनि को बिम्बित करने के लिए प्रयुक्त होते है। महादेवी ने पल्लवो का बिम्ब उसकी ध्वनि विशेष को व्यक्त करने की दृष्टि से किया है –

मर्मर का मधुसगीत छेड –

देते है हिल पल्लव अजान।[1]

उपरिलिखित पक्तियो मे पल्लवो का बिम्ब कल्पना–चक्षुओ के समक्ष आते ही हवा मे हिलना और उसके कारण मर्मर–ध्वनि करते हुए पल्लवो का चित्र साकार हो जाता है।

महादेवी वर्मा के काव्य मे कही–कही गध–सवेदन बिम्ब भी दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत है एक उदाहरण –

वह सौरभ हूँ मै जो उडकर

कलिका मे लौट नही पाता

पर कलिका के नाते ही प्रिय,

किसको जग ने सौरभ जाना।[2]

सुगन्ध कली से उडकर वातावरण को सुगन्धित कर देती है, किंतु कली मे पुन समासित नही होती। पर कली के नाते ही सुगन्ध को ससार जानता है। ठीक इसी प्रकार प्रेम मे प्रेमी का महत्व प्रिय के ही कारण है। दार्शनिक दृष्टि से जीव (सौरभ) की कीर्ति परमात्मा (कली) से नि सृत होने के कारण है। यही कारण है कि महादेवी प्रियतम (अज्ञात) की रट लगाती है। रस सम्बन्ध मनुष्य की जिह्वा से है। अत कुछ अनुभूतियो की व्यजना के लिए कवियो का ध्यान आस्वाद्यता की ओर जाता हे। महादेवी ने भी रस–सवेदन बिम्बो की रचना की है –

---

[1] [illegible] पृष्ठ 49

[2] महादेवी साहित्य [illegible] पृष्ठ 56

पी पी मे चिर दुख प्यास बनी।[1]

यहाँ अतृप्ति के स्वरूप का चित्रण चिर दुख के पीने के रस–बिम्ब द्वारा किया गया है।

महादेवी के काव्य मे स्पर्श–सवेदन बिम्ब भी उपलब्ध है। शब्द और स्पर्श बिम्बो मे रूप या आकार के बिम्ब के साथ ही शब्द तथा स्पर्श के सवेदनो की अभिव्यक्ति होती है क्योकि इन दोनो मे स्वत दृष्टिगोचरता नही है। कवयित्री ने अपनी एक कविता मे पीडा से लिपटने की व्यजना भीगे वस्तु के लिपटने से की है। भीगे वस्त्र का स्पर्श शीतल एव शरीर से चिपका हुआ होता है। पीडा भी कवयित्री के भावात्मक व्यक्तित्व का अग बन गई है –

पीडा मेरे मानस से भीगे पट सी लिये ही हे।[2]

सह सवेदनात्मक बिम्बो के विधान मे शारीरिक या मानसिक–अनेक प्रकार के सवेगो, सवेदनो या अनुभूतियो का मिश्रण रहता है। अर्थात् जब कवि रूप के साथ शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श आदि अन्य सवेदनो को भी सश्लिष्ट रूप मे व्यक्त करता है, तब तक वह बिम्ब सह सवेदनात्मक या सश्लिष्ट बिम्ब कहा जाता है। अत सह सवेदनात्मक (सिनेस्थेटिक) बिम्बो मे अनेक ऐन्द्रिय बोधो का मिश्रण रहता है, यथा

वे सुध से प्राण हुए जब
छूकर उन झकारो को
उडते थे, अकुलाते थे
चुम्बन करने तारो को।[3]

प्रस्तुत पक्तियो मे स्पर्श (छूकर), ध्वनि (झकार) एव गति (उडना, अकुलाना) सवेदनाओ के एकीकरण या समीकरण द्वारा सह–सवेदनात्मक बिम्ब–विधान की सृष्टि हुई है। सश्लिष्ट बिम्बो को छायावादी कविता का उत्कृष्टतम रूप कहा जा सकता है।

[1] महादेवी साहित्य [illegible] पृष्ठ 261
[2] [illegible] पृष्ठ 38
[3] [illegible] पृष्ठ 13

महादेवी वर्मा के काव्य–बिम्बो का विषय तथा स्रोत के आधार पर निम्नवत ढग से वर्गीकरण किया जा सकता है –

1 उदात्त बिम्ब, 2 परम्परागत बिम्ब, 3 सास्कृतिक बिम्ब, 4 सामाजिक बिम्ब और 5 काव्योतर कलाओ से निर्मित बिम्ब।

महादेवी ने अपने काव्य मे प्राय छोटे–छोटे बिम्बो को रचने का काम किया है। पर कुछ उदात्त बिम्बो की सृष्टि भी हुई है। द्रष्टव्य है एक उदाहरण –

मेघ – रूँधा अजिर गीला –

टूटता – सा इन्दु कटुक

रवि झुलसता लोल पीला।[1]

प्रस्तुत काव्याश मे अमा–निशा की भयकरता से उपेत एक उदात्त बिम्ब की सृष्टि हुई है।

महादेवी ने परपरागत बिम्बो को नयी व्यजना या नयी सवेदनाओ के सन्दर्भ मे रखकर नूतन अर्थवत्ता प्रदान की है। जैस, लीलाकमल को समर्पित–तत्पर जीवन का अप्रस्तुत बनाकर नूतन सुषमा से युक्त मार्मिक बिम्ब विधान प्रस्तुत किया है, जो अद्भुत है –

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज,

खिल उठे निरूपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात।

जीवन विरह का जलजात।[2]

सस्कृत–साहित्य मे लीलाकमल के अनेक पर्याय मिलते है। पर प्राय उसका प्रयोग मेघदूत' की निम्न पक्तियो के अर्थ–सन्दर्भ मे होता है –

हस्ते लीलाकमलमलके बालमुकुन्दानुबिद्ध

नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतमाननेश्री ।

चूडापाशे नवकुरबक चारु कर्णे शिरीष

[1] [illegible] 17

[2] [illegible] 18

सीमन्ते च त्वदुपगमज यत्र नीप वधूनाम।।[1]

सस्कृति के प्रति अटूट आस्था के चलते महादेवी के काव्य मे सास्कृतिक बिम्बो का भी विधान होता है, यथा

दिग्वधुओ के घन–घूँघट के अचल होगे छोर।

यहाँ 'घूँघट' सास्कृतिक शब्द है जो ग्रामीण नववधु के बिम्ब को हमारे मानस–पटल पर उभारता है। इन बिम्बो की सृष्टि के द्वारा महादेवी अपने सास्कृतिक सौन्दर्य को अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

सामाजिक बिम्बो का विधान उनके काव्य मे कम ही मिलता है। महादेवी सामयिक परिस्थितियो से भी प्रभावित है। उनका हृदय भी वर्ग–वैषम्य को देख रहा है –

कह दे माँ क्या अब देखूँ!

देखूँ खिलती कलियाँ या

प्यासे सूखे अधरो को,

तेरी चिर यौवन – सुषमा

या जर्जर जीवन देखूँ![2]

प्रस्तुत काव्याश कवयित्री के आत्मिक सौन्दर्य की सामाजिकता के सापेक्ष सौन्दर्य–व्यजना कराता है। महादेवी ने सुखी और शोषित समाज का चित्र प्रस्तुत किया है। वह दुविधा ग्रस्त स्थित मे है। उनका मन शोषितो के पक्ष मे ही जाता है।

महादेवी साहित्य के साथ–साथ चित्रकला मे भी निपुण थी। उन्हे सगीत और मूर्तिकला से भी विशेष अनुराग था। अत काव्येतर कलाओ से निर्मित बिम्ब भी उनके काव्य–बिम्बो का आधार स्रोत बनते है। प्रस्तुत है एक उदाहरण –

भीगी अलको के छोरो से

चूती बूँदे कर विविध लास

रूपसि तेरा घन–केश–पास।[1]

---

[1] कालिदास मेघदूत पृष्ठ 49-50

[2] महादेवी वर्मा यामा सांध्य पृष्ठ 101

यहाँ नृत्य कला से सम्बन्धित शब्दावली (लास) का प्रयोग विलक्षण सौन्दर्य की सर्जना करता है।

बिम्ब और व्यजना मे पार्थक्य होते हुए भी निकटवर्ती सम्बन्ध है। व्यजनात्मक बिम्बो से अमूर्त्त भावो के मूर्त्ताभिधान मे कवि को विशेष सहायता मिलती है। अत अभिव्यजना की दृष्टि से महादेवी के काव्य–बिम्बो का निम्नवत् ढग से वर्गीकरण किया जा सकता है –

1 शब्द बिम्ब, 2 वर्ण बिम्ब, 3 व्यजना प्रधान सामाजिक बिम्ब, और 4 प्रसूत बिम्ब

शब्द बिम्ब की पूर्णता उसके सावयव रूप–विधान मे ही नही अपितु उस सप्रेषणीयता मे है जो अनुभूति को सटीक एव सार्थक अभिव्यजना प्रदान करती है, यथा

'प्राण रमा पतझार सजनि अब नयन बसी बरसात री।"[2]

प्रस्तुत काव्याश मे 'पतझार' और 'बरसात' अपनी अर्थगर्भ प्रेषणीयता से सम्पूर्ण सदर्भो को चमत्कृत कर हमारे मानस पटल पर एक मार्मिक चित्र अकित करते है। यहाँ 'पतझार' कवयित्री के जीवन की रिक्तता, सूनापन एव श्रीहीनता को व्यजित करता है। 'बरसात' शब्द कवयित्री की अश्रुपूरित वेदना को अभिव्यजित करता है।

जहाँ विशिष्ट प्रकार के वर्णो की योजना और सचयन से अर्थवान तथा व्यजक बिम्बो का निर्माण होता है, वहाँ वर्ण–बिम्ब होता है। महादेवी के वर्ण–बिम्ब उनके काव्य सौष्ठव को द्विगुणित करते है, यथा

पुलक–पुलक उर, सिहिर–सिहिर तन,

आज नयन आते क्यो भर–भर?[3]

प्रस्तुत पक्तियो मे 'पुलक–पुलक', 'सिहिर–सिहिर', 'भर–भर शब्दो की वर्ण–योजना से क्रमश रोमाचित होने, शरीर के सिहरने तथा अश्रुपूरित नेत्रो के बिम्बो को साकार करते है।

[1] [illegible] गीत पर्व पृष्ठ 33
[2] महादेवी साहित्य [illegible] पृष्ठ 230
[3] [illegible] पृ 199

महादेवी के काव्य मे व्यजना प्रधान सामाजिक बिम्बो का भी अपना अलग ही वैशिष्ट्य है, यथा

आज ऑसुओ के कोषो पर,

स्वप्न बने पहरे वाले है।

अलि क्या प्रिय आने वाले है?[1]

प्रस्तुत काव्याश मे कोषो पर पहरेदारो का अप्रस्तुत बिम्ब ऑसुओ की रक्षा के निमित्त स्वप्नो के प्रस्तुत अर्थ की विशद व्यजना कर देता है। ऑसुओ के कोष उनके हृदय मे अवस्थित पीडा के अक्षय भडार की भी व्यजना करते है। आज प्रिय के स्वप्नो मे लीन प्रेयसी रो रही है। स्वपनिल पहरेदार ऑसुओ को निकलने से रोक रहे हे। वे अलि से पूछती है कि यह प्रियतम के आगमन की सूचना तो नही है। अत यह कम–से–कम मे अधिक–से–अधिक की व्यजना हो जाती है।

महादेवी वर्मा के काव्यमे प्रसूत बिम्बो की अभिव्यजना भी मिलती है। इसमे मालोपमा या सागरूपक से सादृश्य रखने वाला केन्द्रापगामी विस्तार रहता है। इसकी अवतरणिका 'सी', 'सा', 'सम' जैसे वाचक अथवा अन्य लक्षक शब्दो को जोडकर विशद बना दी जाती है, यथा

दैव सा निष्ठुर, दु ख सा मूक

स्वप्न सा छाया सा अजान,

वेदना सा तम सा गम्भीर

कहॉ से आया वह आह्वान?[2]

प्रस्तुत काव्याश मे मालोपमा द्वारा प्रस्तुत बिम्बो की सृष्टि हुई है।

ज्ञानेन्द्रियो के अलावा गुण–धर्मों के आधार पर भी बिम्ब की सृष्टि होती है। अर्थात् कार्य–व्यापार, गति एव प्रभाव साम्य आदि को व्यक्त करने के लिए भी तदनुकूल

---

1 [illegible] 75

2 [illegible]

बिम्ब–विधान काव्य मे बराबर किया जाता है। गुण–धर्मों के आधार पर महादेवी के काव्य बिम्बो का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

(1) गत्वर बिम्ब (2) व्यापार विधायक बिम्ब और (3) प्रभाव सादृश्य बिम्ब।

गत्वर बिम्ब विधान मे गतियुक्त वस्तुओ, स्थितियो, दृश्यो का चित्राकन होताहै। विधान की दृष्टि से इन्हे सस्कृत और तात्कालिक गत्वर बिम्बो मे बॉटा जा सकता हे। महादेवी के काव्य मे भी इस प्रकार के बिम्बो की सृष्टि मिलती है, यथा

उमड आयी री दृगो मे
सजनि, कालिदी निराली।

यहॉ दृगो' मे कालिदी का उमडना तीव्र तात्कालिक गत्वर बिम्ब है।

गतिबोधकता से पृथक क्रिया – सौष्ठव पर आश्रित बिम्ब को व्यापार विधायक बिम्ब कहते है। महादेवी वर्मा के काव्य मे इन बिम्बो की सहज और सफल व्यजना हुई है–

मोम सा तन घुल चुका,

अब दीप सा मन जल चुका हे।[1]

यहॉ जलने और 'घुलने' के दो क्रिया व्यापारो से विरह की सम्पूर्ण व्याकुलता एव पीडा को चित्रित किया गया है। अत यहॉ व्यापार विधायक बिम्ब सजीव हो उठा है।

महादेवी ने अपने काव्य मे प्रस्तुत–अप्रस्तुत के प्रभाव–साम्य पर आधारित बिम्बो की सृष्टि भी की है, यथा

मै नीर भरी दुख की बदली।[2]

यहॉ नीर भरी बदली बिम्ब महादेवी के वेदना–विगलित विरही जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है।

अस्तु, महादेवी के काव्य – बिम्बो की सृष्टि कल्पना, भावना और बृद्धि के सयोग से हुई है। उनके काव्य मे ऐन्द्रिय बिम्बो का निर्माण उतनी स्वाभाविकता और सघनता से

---

[1] महादेवी साहित्य [illegible] पृष्ठ 240
[2] [illegible] पृष्ठ 111

नही हुआ है जितना कि कोमल मधुर एव वेदनाजन्य मिश्रित कल्पना से सलग्न अनुभूति को लेकर हुआ है। इनकी वर्ण्य –वस्तु आध्यात्मिक आतरिक और सूक्ष्म है। पर अपनी प्रणयानुभूति की तीव्रता के कारण महादेवी ने स्थूलता ओर लोकिकता को लेकर ऐन्द्रिक बिम्बो का निर्माण भी किया है। कही – कही उनके बिम्बो मे अस्पष्टता एव सीमितता भी झलकती है। फिर भी, बिम्ब –योजना के द्वारा उनके काव्य मे सौन्दर्य की सृष्टि स्वत हो जाती है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि प्रकृति, मानव, परम तत्त्व, दर्शन, कल्पना, प्रतीक और बिम्ब आदि उपकरणो के माध्यम से महादेवी वर्मा की सौन्दर्य चेतना परिचालित होती है। उनके काव्य मे प्रकृति – चित्रण का आधार लेकर सूक्ष्म सौन्दर्य को उद्‌घाटित किया गया है। वे प्रकृति के आन्तरिक सत्य का प्रकाशन करने मे सक्षम सिद्ध होती है। महादेवी के काव्य मे चित्रित बाह्य रूप मे भी प्राय मानवीय मनोभावो एव कार्य – व्यापार का साक्षात्कार होता है। उनके काव्य मे प्रकृति के स्थिर और जड रूपो की अपेक्षा गत्यात्मक एव चेतन रूपो का प्रतिष्ठापन होता है। यहॉ प्रकृति और जगत् के बीच सतुलन कायम है।

महादेवी वर्मा के काव्य मे मानवीय सम्बन्धो की विविध स्थितियो का अकन कम ही है। उनका आत्म केन्द्रित मानवीय सम्बन्धो के आधार पर प्रेम की व्यजना उनके काव्य मे मिलती है। फिर भी, जहॉ भी मानवीय स्थितियो का वर्णन है, वह सायास ही है। उनके गद्य मे यह स्थित नही है। वे अपनी रहस्यवादी कविताओ मे दर्शन का पर्यवसन सहज रूप से करती है। महादेवी परम तत्त्व से अपनी प्रणयानुभूति को व्याख्यायित करने के लिए दर्शन का आश्रय लेती है। उनके काव्य मे दर्शन का सत् ही मिलता है, आरोपण नही। महादेवी के दर्शन मे वेदात और उपनिषद् के अद्वैत का नवीनतम एव विकसित रूप दृष्टिगोचर होता है। जड – चेतन और लघु – गुरू आदि मे शाश्वत एकता का अनुभव उनके काव्य मे होता है। अखिल ब्रह्माण्ड मे विश्वात्मा की छवि देखना ओर प्राकृतिक अवयवो तथा रागजनित सम्बन्धो के माध्यम से अभिव्यक्ति देना – उनका साध्य है। यहॉ उनका दर्शन सर्वात्मवादी हो जाता है। महादेवी वर्मा की कल्पना – प्रणय, वेदना तथा करूणा के क्षेत्र से बाहर नही निकल पाई है। पर इसकी व्यजना के लिए प्रकृति के विविध अवयवो का दोहन अवश्य है। यद्यपि उनके काल्पनिक रूपो

का आधार प्रत्यक्ष जगत् ही है, फिर भी प्रकृति के अतिरिक्त जीवन के अन्य क्षेत्रो की ओर उनकी दृष्टि कम हो गई है। महादेवी के प्रतीक तथा बिम्ब उनके काव्य के शिल्प सौन्दर्य तथा भाव सौन्दर्य मे अभिवृद्धि ही करते है। इनके माध्यम से सौन्दर्य तथा रहस्य की सृष्टि सुन्दर ढग से हुई है। कही – कही उनकी अस्पष्टता तथा सीमितता अवरोध भी उत्पन्न करती है।

षष्ठ अध्याय

उपसंहार

सौन्दर्यानुभूति एव रहस्यवाद की पूरकता

प्रकृति और उसके व्यापारो को जानने के क्रम मे मनुष्य ने विज्ञान का आश्रय लिया। पर विज्ञान की भी एक सीमा है। दर्शन मे उसे अपनी समस्या का सूक्ष्मतर ढग से समाधान होता दिखा। उसे प्रकृति के क्रिया–कलापो के पीछे किसी अज्ञात सत्ता का आभास हुआ और वह रहस्य को जानने चल पडा। जिज्ञासा की यह भावना तथा आभास उन्ही को हुआ जो भावुक और अतमुर्खी होने के साथ लौकिकता से भी विमुख है। दर्शन सृष्टि के मूल तत्त्व तथा उसके व्यक्त रूपो के पारस्परिक सम्बन्धो का विवेचन तथा विश्लेषण करता है। इसका उत्कर्ष दो अत्यन्त भिन्न मानवीय प्रवृतियो–रहस्यवाद और विज्ञान के सयोग तथा सघर्ष का परिणाम है। विज्ञान ऐन्द्रिय ज्ञान को सभाव्य उपकरणो आदि से समर्थ बनाकर विस्तार–दृष्टि पाता है। वही दर्शन उसे साधना के द्वारा पाता है। ''इन्द्रिय शक्ति पर विज्ञान भी विश्वास नही कर सकता और दर्शन तो घोषणा ही करता है 'इन्द्रियो' को बर्हिमुख बनाया है, स्वयभू ने, अत जीव बाहर की ओर देखता है, अन्त की ओर नही।''[1] विज्ञान तथा दर्शन के विकास के साथ ही रहस्यवाद और सौन्दर्य स्पष्ट रूप से सामाने आये। सौन्दर्य को भारतीय मनीषियो ने आत्मा की प्रवृत्ति माना है। प्रेम और आनद के साथ आत्मा का सम्बन्ध जोडा जाता है। रस को काव्य सौन्दर्य माना गया और उसके विवेचन मे शैवाद्वैत, वेदात साख्य न्याय मीमासा, भक्ति–सिद्धान्त आदि का आश्रय लिया गया। पश्चिम मे तो सौन्दर्यशास्त्र की एक विकसित परम्परा ही मिलती है। सौन्दर्य की वस्तुगत, भावगत, रूपगत आदि सत्ता भी स्वीकार की गई। दर्शन का उद्देश्य अज्ञात के रहस्य को जानना है। दार्शनिको ने सौन्दर्य का तत्त्व–निरूपण भी किया है। फिर भी रहस्यवाद और सौन्दर्य को एक नही माना जा सकता। रहस्यवाद मे सत्य के व्यापक स्वरूप से परिचित हुआ जा सकता हे। वही सोन्दर्यशास्त्र की परिधि मे मूलत ऐन्द्रिय सवेदना से प्राप्त ज्ञान प्रमुख है। सौन्दर्यशास्त्र मे सौन्दर्य के स्वरूप और चेतना का धारणात्मक चितन किया जाता है। अत यह अमूर्त्त चिन्तन से भिन्न होता है। इसे रहस्यवाद का एक पहलू ही स्वीकार्य होता हे। सौन्दर्य का लोकोत्तर रूप ही महादेवी को मान्य हुआ। आत्मा और परमात्मा के अद्वैत की स्थिति मे यह आभासित नही होता, किन्तु द्वैत या उसके आभास मात्र की स्थिति मे आनद

---

[1] डॉ० बच्चूलाल अवस्थी काव्य मे रहस्यवाद पृष्ठ 105-106

की अनुभूति होती है। आत्मा का परमात्मा का अश और परमात्मा का सच्चिदानद स्वरूप होना ही जीव की ब्रह्म के प्रति आसक्ति का कारण है।

सौन्दर्य की प्रथम प्रतीति वस्तु के आकार या रूप – बोध के साथ सम्पन्न होता है और गृहीता की चेतना के सम्पर्क से अनुभूति के रूप मे पूर्णता पाता है। सौन्दर्य आत्मा की प्रवृत्ति है और सौन्दर्य बोध कलाकार या आशसक पर निर्भर करता है। जिसके चलते सबकी सौन्दर्यानुभूति अलग–अलग होती है। "साधारण सौन्दर्यानुभूति का धरातल उच्चतर होता है – उसे 'अनुत्तर' कहते है जिसके आगे कुछ नही। यह रहस्यानुभूति निश्चय उच्चकोटि की सौन्दर्यानुभूति ही है पर उसकी वृत्ति सूक्ष्मतर, व्यापक एव लौकिकता निरपेक्ष होती है।[1] स्थूल से सूक्ष्म की ओर अग्रसर होने का यह क्रम, विचित्रता और विभिन्नता से एकता की ओर उन्मुख होने का क्रम बन जाता है। सृष्टि के विभिन्न रूप–रगो के बीच एकता की खोज करने वाला मन, कभी बुद्धि और कभी हृदय का सहारा लेकर मार्ग ढूँढने लगता है। बुद्धि की प्रेरणा मनुष्य को ज्ञान के क्षेत्र मे घुमाती है और और हृदय की प्रेरणा उसके रागात्मक ततुओ को झकृत कर देती है। ऐसी स्थितियो मे बाह्य रूप आन्तरिक उल्लास का कारण बनता है। तब वह अदृश्य सत्ता से प्रेम करने लगता हे। अज्ञात सत्य के प्रति निष्ठा के चलते वह ससार की सभी वस्तुओ से रागात्मक लगाव–सा महसूस करने लगता है। रूप और कुरूप का भेद मिटाकर वह सारी प्रकृति मे सुन्दरता की अनुभूति करने लगता हे। डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित के अनुसार, "

सब रूपो मे एक ही सत्ता का आभास पाकर उसका चित्त सबके प्रति मुग्धता और आह्लाद से भर जाता है। इस रूप मे, वह सोन्दर्य के माध्यम से आनन्द की सम्प्राप्ति तो करता ही है, अखड एकता के सत्य को भी साथ ही ग्रहण करता चलता हे। रहस्यवाद और सर्वचेतनवाद की भूमिका यही है।[2] महादेवी के काव्य का आधार भी यह रहस्यवाद और सर्वचेतनवाद बनता है।

कवि या कलाकार सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति दो प्रकार से कर सकता है।" एक, वह सर्वत्र एक ही सत्ता का दर्शन या अनुभव करता हुआ केवल उस असीम और अनन्त की कल्पना मे लीन रह सकता है दूसरे, जगत् के नाना रूपो मे उसी की छवि का प्रसार देखकर व्यवहारिक धरातल पर मनुष्य की एकता और जीवन की अखण्डता का बोध कराने मे प्रवृत्ति हो सकता है।"[3] महादेवी पहली श्रेणी मे है और तुलसीदास दूसरे प्रकार से लोगमगल

---

[1] डॉ० बच्चूलाल अवस्थी काव्य म रहस्यवाद पृष्ठ 107

[2] [illegible] 172

[3] [illegible] 172

की अवधारणा की अभिव्यक्ति करते है। महादेवी वर्मा काव्य को बुद्धि के आलोक मे सवेदनाओ का सप्रेषण "[1] मानते हुए कहती है–

मानव के जितने सृजन है, कविता उसमे सबसे अधिक रहस्यमय – सृजन है, जिसमे उसके अन्त करण का सगठन करने वाले सभी अवयव मन, चित्त, बुद्धि और अहकार एक साथ सामजस्यपूर्ण स्थिति मे कार्य करते है।'[2]

महादेवी का यह सतुलन रूप और कुरूप मे सामजस्य की स्थिति मे सभव हे। महादेवी अपने साहित्य मे सामजस्य की स्थिति को साकार करती है। वे काव्य मे इस स्थिति को सहज नही मानती–

'काव्य मे गोचर–जगत तो सहज, स्वीकृति पा लेता है। पर स्थूल–जगत मे व्याप्त चेतना ओर प्रत्यक्ष सौन्दर्य मे अन्तर्हित सामजस्य की स्थिति बहुत सहज नही।"[3]

उनके विचार से रहस्य – दृष्टि विकसित करके ही इस सौन्दर्य का अनुभव किया जा सकता है। जो इस सौन्दर्य का अनुभव नही कर पाते वे सौन्दर्य के स्थूल रूप पर ही दृष्टि रखते है। जिसके चलते वे कला को कला के लिए स्वीकार करते है।

महादेवी वर्मा कला को कला के लिए नही मानती। वे कला व काव्य का लक्ष्य अखड सत्य की प्राप्ति मानती है। उनके अनुसार "सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है। एक अपनी एकता मे असीम रहता है और दूसरा अपनी एकता मे अनन्त। इसी से साधन के परिचय–स्निग्ध खण्डरूप से साध्य की विस्मय भरी अखड स्थिति मे पहॅचने का क्रम आनद की लहर–पर–लहर उठाता हुआ चलता है।"[4] इस अखण्ड की स्थिति से परिचित होना कठिन है। महादेवी अखण्ड सत्य की प्राप्ति जीवन के बीच से करती है। सौन्दर्य यहॉ साधन बन कर आया है। इस प्रकार वे अखण्ड सत्य और सौन्दर्य के सम्बन्ध पर प्रकाश डालती है। इस सौन्दर्य के द्वारा ही मनुष्य रहस्य तक पहुॅचता है। उनका प्रत्येक सौन्दर्य खण्ड, अखण्ड सौन्दर्य से जुडा है। साथ ही साथ वह आत्मिक सौन्दर्य–बोध से परिचालित हे। अपनी आत्मिक सोन्दर्य – चेतना के विकसित और सूक्ष्मतर रूप के चलते वे औरो से भिन्न स्थिति मे है। महादेवी इस स्थिति मे सामजस्य की अनुभूति करती है। विरूप इस व्यापक सामजस्य का विरोधी है। सौन्दर्य का सम्बन्ध उसी प्रकार है जिस प्रकार एक लहर का दूसरे लहर से। सम

---

[1] महादेवी वर्मा सन्धिनी पृष्ठ 7
[2] महादेवी वमा सन्धिनी पृष्ठ 7
[illegible] पृष्ठ 24
[4] [illegible] पृष्ठ 3

होने की स्थिति मे इस अखण्ड तारतम्यता को अनुभव किया जा सकता है। महादेवी का 'सौन्दर्य चिर–परिचय मे भी नवीन है पर विरूपता अति परिचय मे नितान्त साधारण बन जाती है, इसी से सौन्दर्य की रहस्यानुभूति ही अन्तहीन काव्य–पक्ष मे नये परिच्छेद जोडती रहती हे।[1] उनकी सामजस्य – दृष्टि इतनी प्रबल है कि उनके काव्य से रूप, विरूप लघु, गुरु, कोमल भयानक आदि कुछ भी नही छूटता है। वे सबमे लहरो सी तारतम्यता देखती है। पूरे ब्रह्माड मे एकता के रागात्मक सम्बन्धो का अनुभव भी करती है। अस्तु, इनके काव्य मे सौन्दर्यानुभूति एक प्रकार से रहस्यानुभूति ही है। सौन्दर्यानुभूति की लौकिक से अलौकिक रहस्यानुभूति तक की यात्रा उनका जीवन बनकर काव्य मे प्रस्फुटित हुई है।

बुद्धि रहस्य को ज्ञान के रूप मे ग्रहण करती है और हृदय प्रेम (रागात्मकता) के रूप मे। अलौकिक प्रेम व्यापार भी कला के रूप मे लौकिक धरातल पर ही फलीभूत होता है। अखण्ड चेतना से तादात्म्य बौद्धिक भी हो सकता हे। पर रहस्यानुभूति हृदय का ही विषय है।

महादेवी मे सुख–दु ख के साथ–साथ अखण्ड सत्य की अनुभूति भी है। यद्यपि उनके कहने का अपना एक अलग ही ढग है। वे सौन्दर्य के प्रति उत्सुकता का भाव रखती है। अपनी प्रेम–भावना के चलते उसमे मधुरता भी आ जाती है। वह जो अज्ञात है के प्रति आसक्ति का भाव उस (अज्ञात) सौन्दर्य के चलते है। सुख–दु ख के लौकिक रूपो के उद्घाटन मे उनकी वृत्ति नही रमती है। उनकी वेदना का यह रूप भी लोकोत्तर धरातल पर सम्पन्न होता है।

महादेवी वर्मा अपने काव्य मे क्रमश रहस्य के प्रति सहज से ऊपर उठती है। द्रष्टव्य है एक उदाहरण –

> आज किसी के मसले तारो–
>
> की वह दूरागत झकार,
>
> मुझे बुलाती है सहमी सी
>
> झझा के परदो के पार।[2] (नीहार)

यहॉ अज्ञात की झकार का आभास होता है और कवयित्री उसके प्रति औत्सुक्य के साथ आकर्षित भी होती है। वे अपने अज्ञात प्रिय के साथ ऑख मिचौनी भी खेलती है–

> ''छाया की ऑख मिचोनी
>
> मेघो का मतवालापन,

---

1 [illegible] पृष्ठ 28

2 [illegible] पृष्ठ 11

रजनी के श्याम कपोलो

पर ढरकीले श्रम के कन,[1]   (नीहार)

मेघ और रजनी इस प्रणयानुभूति मे सौन्दर्य के साधक बन कर सामने आते है। इस लौकिक प्रणय का अवलम्बन लेकर कवयित्री अपने अलौकिक प्रणयानुभूति को अभिव्यक्ति देती है। वे अमरता की इच्छुक भी नही है–

''बिखर कर कन कन मे लघु प्राण

गुनगुनाते रहते यह तान,

'अमरता है जीवन का ह्रास

मृत्यु जीवन का चरम विकास।''[2]   (रश्मि)

वे मृत्यु को जीवन का चरम् सत्य और चरम् सोपान मानती है। वे उम्र भर अपने लघु द्वारा महत् की तान सुनना ओर गुनगुनाना पसन्द करती है। इस प्रकार वे यहॉ मध्ययुगीन रहस्यवादियो से पृथक् भी सिद्ध होती है। इस पथ पर चलते हुए विस्मृत भी होती है तथा वह रहस्यमय प्रिय उन्हे सकेत भी करता है–

''तब रहस्यमय चितवन से–

छू चौका देना मेरे प्राण,

ज्यो असीम सागर करता है

भूले नाविक का आह्वान।''[3]   (रश्मि)

यहॉ उनकी रहस्यानुभूति आभासित होती है। मार्ग से विचलन की स्थिति मे अज्ञात प्रिय का सकेत उन्हे दिशा देता है। महादेवी सागर और नाविक के माध्यम से अपनी पूरी बात स्पष्ट करती है। वे इस पथ को निर्वाण मानती है–

''पथ मेरा निर्वाण बन गया।

प्रति पग रात वरदान बन गया।''[4]

यह दृढता अगाध निष्ठा और समर्पण के चलते है। आगे इसी कविता मे पल भर के मिलन को महत्त्वपूर्ण मानती है। इस कविता मे प्रकृति सहचरी बन कर आई है।

---

[1] महादेवी वर्मा यामा (प्रथम याम) पृष्ठ 14

[2] उपरिवत यामा (द्वितीय याम) पृष्ठ 83

[3] उपरिवत यामा (द्वितीय याम) पृष्ठ 85

[4] उपरिवत [illegible] पृष्ठ 116

नीहार' और रश्मि' का औत्सुक्य आगे की कृतियो मे प्रौढ रूप से सामने आता है। कवयित्री अपनी प्रणयानुभूति के माध्यम से लगातार प्रिय के सानिध्य मे रहती है–

"अपनी असीमता देखो,
लघु दर्पण मे पल भर तुम,
मै क्यो न यहॉ क्षण क्षण को
धो धोकर मुकुर बनाऊँ?
हॅसने मे छुप जाते तुम,
रोने मे वह सुधि आती,
मै क्यो न जगा अणु अणु को
हॅसना रोना सिखलाऊँ?"[1]

उस महत् को अपनी लघुता के दर्पण मे छवि देखने को कहकर कवयित्री लघु और महत् की अभेद स्थिति की ओर इगित करती है। वे वेदना मे ही पूर्णता मानती है। जिसके चलते प्रिय की ओर लगातार ध्यान लगातार लगा रहता है। यह वेदना भी मधुर टीस लिए हुए है। इस सामजस्य की स्थिति मे वे ससार के प्रत्येक अणु को सुख और दु ख मे सम रहना सिखलाना चाहती है। यहॉ सामजस्य का सौन्दर्य साकार हो उठा है। जीवन – बोध के साथ –साथ प्रकृति – बोध उनकी कृतियो मे सदा विद्यमान है। प्रकृति – बोध की यह मादकता उनकी रहस्यानुभूति को और तीव्र बना देती है। महादेवी की प्रकृति का मूल सौन्दर्याधार बाह्य प्रकृति ही है। प्रकृति चित्रण मे रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गन्ध आदि के सूक्ष्म ऐन्द्रियबोध से वे राग तथा उल्लास प्रकट करती है। निश्चय ही उनकी यह सोन्दर्यानुभूति उच्चतर धरातल पर प्रतिष्ठित हुई है। महादेवी ने सौन्दर्य के विभिन्न चित्र प्रस्तुत किये है। अधिकतर उषा, सन्ध्या और रात्रि के चित्र ही मिलते है। 'रश्मि' मे उषा का चित्रण करते हुए वे कहती है–

किसी नक्षत्र लोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात
ढुलक जो पडी ओस की बूॅद
तरल मोती सा ले मृदुगात[2]

वही 'नीरजा' मे वे इससे भिन्न चित्र प्रस्तुत करती है–

---

[1] [illegible] 110
[2] [illegible] 95

'मत अरुण घूँघट खोल री।

वृन्त बिन नभ मे खिले जो,

अश्रु बरसाते हँसे जो,

तारको के वे सुमन

मत चयन कर अनमोल री।"[1]

उपर्युक्त दोनो चित्रणो की भाव–भगिमा मे पर्याप्त विभिन्नता है। प्रथम कविता मे ओस के माध्यम से प्रात कालीन सुषमा, जागरण की गति तथा मादकता है। दूसरी कविता मे प्राकृतिक उपमानो के माध्यम से सलज्ज नायिका के यौवन मत्त रूप का चित्रण प्रभावी सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'सान्ध्यगीत' की 'ओ अरुण–वसना' या फिर 'दीपशिखा' की 'सजल है कितना सबेरा का प्रस्तुतीकरण भी विभिन्न धरातलो पर सम्पन्न हुआ है।

उषा के समान सन्ध्या के चित्र भी मोहक हे। वे अपने सौन्दर्य की व्यजना के साथ उनकी रहस्यानुभूति को प्रखरता प्रदान करते है। नीहार मे कवयित्री कहती है–

मिल जाता काले अजन मे

सन्ध्या की तारो का राग,

जब तारे फैला फैला कर

सूने मे गिनता है आकाश,

उसकी खोयी सी चाहो मे

घुटकर मूक हुई आहो मे।[2]

इस कविता मे अभिव्यक्ति और अनुभूति दोनो का सौन्दर्य निदर्शित होता है। यह चित्रण सन्ध्या ओर रात्रि के मिलाप से लेकर हुआ है। वेदना यहाँ आह बनकर आई है। वे 'सन्धिनी की पूछता क्यो शेष कितनी रात?' कविता मे कहती हे'–

पूछता क्यो शेष कितनी रात?

अमर सम्पुट मे ढला तू

छू नखो की काति चिर सकेत पर जिनके जला तू

स्निग्ध सुधि जिनकी लिये कज्जल–दिशा मे हँस चल तू

---

[1] [illegible] पृष्ठ 89

[2] [illegible] ([illegible]) [illegible] 10

परिधि बन घेरे तुझे वे उँगलियॉ अवदात।[1]

यह उहापोह (रहस्यात्मक) की स्थिति आगे स्पष्ट होती चलती है। तिमिर – वात्याचक्र, 'विद्युत –शिखा, 'ज्वालवाही खास आदि के माध्यम से उनका चित्रण परवान चढता है। तत्पश्चात् इस कविता के अन्त मे कवयित्री कह उठती है–

प्रणत लौ की आरती ले,
धूम–लेखा स्वर्ण – अक्षत नील–कुमकुम वारती ले,
मूक प्राणो मे व्यथा की स्नेह उज्जवल भारती ले
मिल अरे बढ, आ रहे यदि प्रलय झझावत।
कौन भय की बात?
पूछता क्यो शेष कितनी रात?

यहॉ विश्वास का भाव भी है

महादेवी ने यहॉ उषा – वर्णन की भॉति सान्ध्य – वर्णन की बहुलता नही मिलती है। रात्रि – वर्णन विभिन्नता और परिणाम की दृष्टि से पर्याप्त है। रात्रि के प्रति उनका खिचाव नीहार' और 'रश्मि' मे उल्लासमय है। 'नीरजा' मे कुछ अतिरिक्त उत्साह और आवेश के साथ वे अवतरित होती है। महादेवी 'सान्ध्यगीत' तथा 'दीपशिखा' मे निर्वाण की ओर अग्रसर है। 'नीहार' मे वे कहती है–

'रजनी ओढे जाती थी
झिलमिल तारो की जाली,
उसके बिखरे वैभव पर
जब रोती थी उजियाली,
शशि को छूने मचली सी
लहरो का कर कर चुम्बन,
बेसुध तम की छाया का
तटनी करती आलिङ्गन,'[2]

सम्पूर्ण कविता के हर्ष ओर विषादमय वातावरण मे मधुर सवेदना और अतर्भावो की जागृति – सी है। मिलन का मादक व्यापार उनकी प्रणयानुभूति को चरमोत्कर्ष प्रदान करता

---

[1] महादेवी वर्मा [illegible] पृष्ठ 148
[2] महादेवी वर्मा यामा प्रथम याम पृष्ठ 8

हे। रजनी सौन्दर्य की अखड प्रतिमा बन रही है। बसत द्वारा शरीर और प्रकृति मे नवीनता प्रस्फुटित होती है। शरद–जयोत्स्ना मे सराबोर रजनी–नवीनता को सहेज रही है। प्रकृति पर नारी भाव का आरोपण छायावादियो की विशेषता रही है। महादेवी जी भी इसमे पीछे नही है। डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित कहते है–

"वस्तुत महादेवी जी की कविताओ का सौन्दर्य ही इस बात मे है कि उनकी किसी भी रचना से प्रकृति और मानव –भाव को अलग–अलग करना सरल नही है। प्राकृतिक दृश्यो ने उनकी कल्पना को छेडकर जगा दिया है, उनकी रागात्मकता को रहस्य का पथ प्रदर्शित किया है।"[1] आशय यह है कि उनके यहॉ प्रकृति घुली मिली है।

दीपशिखा' मे उन्हे अपना पथ मिल चुका है। वे कहती है–

"अलि मै कण–कण को जान चली
सबका क्रन्दन पहचान चली।

जो दृग मे हीरक – जल भरते,
जो चितवन इन्द्रधनुष करते,
टूटे सपनो के मनको से
जो सूखे अधरो पर झरते।"[2]

साध्य को जानने का यह बोध उन्हे कण–कण के क्रन्दन को जानने का सकेत देता है। उनकी वेदना, विश्व वेदना मे पर्यवसित हो चली है। प्रकृति इस पूरी कविता मे अविच्छिन–भाव से साथ–साथ चलती है। अत यहॉ सौन्दर्य के माध्यम से उनकी रहस्यानुभूति फलीभूत होती है।

इस प्रकार महादेवी वर्मा का काव्य सौन्दर्य के विविध धरातलो स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, समता आदि पर फलीभूत होता है। उनकी सौन्दर्य–चेतना स्थूल से सूक्ष्मतर की ओर अग्रसर है। उनकी अराधना परम् तत्त्व के प्रति है और समस्त भाव उसको समर्पित है। उनकी रहस्य–भावना की प्रेरणा यह जगत् हे। परिपूर्णता की स्थिति मे रूप, कुरूप, लघु, महत्, कोमल, भयानक आदि मे सामजस्य की अनुभूति प्रस्फुटित हुई है। इस पूरी सृष्टि मे एकता को पा लेना ओर स्वय को उसका अग मानना उनके रहस्य–सौन्दर्य की विशेषता है। वे सुन्दर बनकर अर्थात आत्मिक–सौन्दर्य की कीमत पर अखण्ड सौन्दर्य का निदर्शन करती है। इसी सौन्दर्य को

---

[1] [illegible] 178

[2] [illegible]

वे साधन बनाकर साध्य अर्थात सत्य की प्राप्ति करती हे। जिसके चलते उनके यहॉ सोन्दर्यमूलक रहस्यवाद की सहज ही सृष्टि हो जाती है। मध्ययुगीन रहस्यवाद दृश्यमान् जगत को भुलाकर उत्पन्न होता है। जबकि वे जगत् से परे जाकर रहस्य की सृष्टि नही करती है। उनकी प्रेमानुभूति के चलते भावना का सौन्दर्य और स्पष्ट हो चलता है। उनकी वेदनाभूति, विश्ववेदना से मिलकर सौन्दर्य चेतना को विस्तृत आयाम प्रदान करती है। प्रकृति के माध्यम से उनका सौन्दर्य–बोध परिचालित है। प्रकृति यहॉ भावो की पूरकता बनकर आई है। अस्तु, यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्यानुभूति उनके काव्य मे रहस्यवाद को पूरकता प्रदान करती है।

परिशिष्ट

पुस्तक सूची

(क) महादेवी की आधार रचनाएँ

1 'नीहार', सन् 1930 ई०

2 रश्मि', सन् 1932 ई०

3 नीरजा , सन् 1935 ई०

4 'सान्ध्यगीत', सन् 1936 ई०

5 'दीपशिखा', सन् 1942 ई०

6 'सप्तपर्णा', सन् 1960 ई०

7 'हिमालय', सन् 1963 ई०

8 'सन्धिनी , सन् 1965 ई०

9 'सकल्पिता', सवत् 2025

10 'यामा'

11 गीतपर्व , सन् 1970 ई०

12 'परिक्रमा', सन् 1974 ई०

13 'मेरी प्रिय कविताएँ', सन् 1982 ई०

14 दीपगीत , सन् 1983 ई०

15 'नीलाम्बरा' सन 1983 ई०

16 आत्मिका', सन् 1983 ई०

17 प्रथम आयाम', सन् 1984 ई०

18 अतीत के चलचित्र', सन् 1941 ई०

19 श्रृखला की कड़ियॉ', सन् 1942 ई०

20 'विवेचनात्मक गद्य', सन् 1944 ई०

21 स्मृति की रेखाएँ', सन् 1945 ई०

22 'पथ के साथी', सन् 1956 ई०

23 'क्षणदा', सन् 1956 ई०

24 साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध', सन् 1962 ई०

25 'मेरे प्रिय निबन्ध', सन् 1981 ई०

26 'महादेवी सस्मरण ग्रन्थ', सन् 1967 ई० (इसमे छपी महादेवी की हस्त लिखित कविता)

हिन्दी

1 अथातो सौन्दर्यजिज्ञासा डॉ० रमेश कुतल मेघ, दि मैकमिलन कपनी ऑफ इडिया, लिमिटेड, सन् 1977 ई०

2 आकाशदीप जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, सन् 1984 ई०

3 आलोचक और आलोचना डॉ० बच्चन सिह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1970 ई०

4 आधुनिक साहित्य आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, भारती भडार, प्रयाग, प्रथम सस्करण।

5 आधुनिक कवि सुमित्रानन्दन पत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, स० 2012

6 आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियॉ डॉ० नामवर सिह, किताब महल, इलाहाबाद, सन् 1954 ई०

7 आधुनिक हिन्दी कविता मे गीति – तत्त्व डॉ० सच्चिदानन्द तिवारी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् 1964 ई०

8 आधुनिक हिन्दी कविता – सिद्धान्त और समीक्षा डॉ० विश्वम्भर नाथ उपाध्या, प्रभात प्रकाशन, सन् 1962 ई०

9 आधुनिक हिन्दी कविता की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव डॉ० हरिकृष्ण पुरोहित, उपमा प्रकाशन, उदयपुर, सन् 1970 ई०

10 उपनिषद्– चिन्तन श्री देवदत्त शास्त्री, जननी कार्यालय, जीरो रोड, इलाहाबाद, सन् 1956 ई०

11 उत्तरा पत, भारती भडार, प्रयाग, सन् 1949 ई०

12 कबीर का रहस्यवाद डॉ० रामकुमार वर्मा, साहित्य भवन इलाहाबाद, सन् 1951 ई०

13 काव्य कला तथा अन्य निबध जयशकर प्रसाद, भारती भडार, इलाहाबाद, स० 2010

14 काव्य–बिम्ब– डॉ० नगेन्द्र

15 काव्य मे रहस्यवाद डॉ० बच्चूलाल अवस्थी, ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर, सन् 1965 ई०

16 काव्य मे सौन्दर्य और उदात्त तत्त्व शिवबालक राय, वसुमती, जीरो रोड, इलाहाबाद, सन् 1968 ई०

17 गद्य के प्रतिमान डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी

18 गीताजलि डॉ० भवानी प्रसाद तिवारी (अनु०), लोक चेतना प्रकाशन, जबलपुर, सन् 1961 ई०

19 गीतिका सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', भारती भडार, प्रयाग, चतुर्थ स०

20 गीत–पञ्चशती इदिरा देवी चौधुराणी, साहित्य एकेडमी, दिल्ली, सन् 1960 ई०

21 गद्य – पथ सुमित्रानदन पत

22 ग्रीक दर्शन डॉ० छोटे लाल त्रिपाठी, प्राच्य विद्या सस्थान, सोबतियाबाग, इलाहाबाद, सन् 1979 ई०

23 घनानद और स्वच्छद काव्यधारा डॉ० मनोहर लाल गौड, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 2015 विक्रम

24 चिन्तामणि भाग 1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, सरस्वती मदिर, काशी स० 2006

25 चित्रलेखा डॉ० रामकुमार वर्मा

26 चाबुक निराला, निरुपमा प्रकाशन, प्रयाग सन् 1962 ई०

27 चिदम्बरा पत, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1959 ई०

28 छायातप डॉ० सत्यनारायण त्रिपाठी व डॉ० रामदेव शुक्ल, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1992 ई०

29 छायावाद और रहस्यवाद डॉ० गगा प्रसाद पाण्डेय, सन 1941 ई०

30 छायावाद डॉ० उदयभानु सिह (स०)

31 छायावाद डॉ० नामवर सिह, राजकमल प्रकाशन, सन् 1997 ई०

32 छायावाद की सही परख–पहचान डॉ० सूर्यप्रसाद दीक्षित, साहित्य रत्नाकर, सन् 1991 ई०

33 छायावाद का सौनदर्यशास्त्रीय अध्ययन डॉ० कुमार विमल राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1989 ई०

34 जयशकर प्रसाद वस्तु और कला डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल

35 जायसी ग्रन्थावली आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, स० 2025

36 दार्शनिक चिन्तन डॉ० छोटे लाल त्रिपाठी, सरस्वती प्रकाशन, 17 कूँचा श्याम दास, इलाहाबाद सन् 1996 ई०

37 नया साहित्य, नये प्रश्न आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी विद्यामदिर, वाराणसी, सन् 1955 ई०

38 नव–जागरण और छायावाद डॉ० महेन्द्रनाथ राय, राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली,सन् 1973 ई०

39 निबधमणि श्री मोहन द्विवेदी (प्रधान सम्पादक), महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा, सन् 1977 ई०

40 निराला की साहित्य साधना डॉ० रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन

41 निराला रचनावली, खण्ड 1

42 निराला रचनावली, खण्ड 2

43. निराला रचनावली, खण्ड 3

44 निराला रचनावली, खण्ड 4

45 निराला रचनावली, खण्ड 5

46 निराला रचनावली, खण्ड 6

47 पल्लविनी पत भारती भडार

48 पूर्व और पश्चिम कुछ विचार– डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (अनु० रमेश वर्मा)

49 प्रकाश की ओर नलिनी कात गुप्त, अदिति ग्रन्थमाला अरविन्द आश्रम, पाडिचेरी

50 प्रबन्ध–पद्म निराला, गगा पुस्तक माला, लखनऊ, स० 2011

51 प्रबन्ध – प्रतिमा निराला, भारती भडार, इलाहाबाद, प्र० स०

52 प्रसाद ग्रन्थावली, खण्ड 1

53 प्रसाद ग्रन्थावली, खण्ड 2

54 प्रसाद–निराला–अज्ञेय डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993ई०

55 पत ग्रन्थावली भाग 1

56 पत ग्रन्थावली भाग 2

57 पत ग्रन्थावली भाग 3

58 पत ग्रन्थावली भाग 4

59 पत ग्रन्थावली भाग 5

60 पत ग्रन्थावली भाग 6

61 पत ग्रन्थावली भाग 7

62 भक्ति काव्य मे रहस्यवाद डॉ० रामनारायण पाण्डेय, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, 1966 ई०

63 भारतीय दर्शन डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

64 भारतीय साहित्य शास्त्र आचार्य बलदेव उपाध्याय

65 भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली

66 महादेवी (स०) इन्द्रनाथ मदान, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1973 ई०

67 महादेवी (स०) परमानद श्रीवास्तव, लोकभारती मूल्याकन माला, 1976 ई०

68 महादेवी नया मूल्याकन डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त, भारतेन्दु–भवन, शिमला, 1969 ई०

69 महादेवी की रचना प्रक्रिया कृष्णदत्त पालीवाल, पूर्वोदय प्रकाशन, 1971 ई०

70 महादेवी साहित्य भाग 1, 1969 ई०

71 महादेवी साहित्य भाग 2, 1970 ई०

72 महादेवी साहित्य भाग 3, 1970 ई०

73 महीयसी महादेवी गगा प्रसाद पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1969 ई०

74 युगपथ पत, भारती भडार, इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण

75 युगवाणी पत, भारती भडार, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण

76 रस – मीमासा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, स० 2006

77 रस – सिद्धान्त डॉ० नगेन्द्र, द्वितीय सस्करण

78 रस– सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र डॉ० निर्मला जैन, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, 1967 ई०

79 विचार – दर्शन डॉ० रामकुमार वर्मा , साहित्य निकुज, प्रयाग, 1948 ई०

80 विश्व कोश भाग 14

81 श्री अरविन्द के पत्र श्री अरविन्द आश्रम, पाडिचेरी

82 श्रीधर पाठक तथा हिन्दी पूर्व – स्वच्छन्दतावादी काव्य डॉ० रामचन्द्र मिश्र, रणजीत प्रिटर्स एण्ड पब्लिशर्स, चॉदनी चौक, दिल्ली, 1959 ई०

83 सवदना और सौन्दय राजमल बोरा, नमिता प्रकाशन औरगाबाद, 1976 ई०

84 सस्कृति के चार अध्याय रामधारी सिह 'दिनकर, उदयाचल, पटना, 1962 ई०

85 साहित्य का छठवॉ दशक विजयदेव नारायण साही, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1987 ई०

86 साहित्यालोचन डॉ० श्यामसुन्दर दास, इडियन प्रेस, प्रयाग, 1970 ई०

87 साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य डॉ० रघुवश

88 साहित्य का नया शास्त्र डॉ० गिरिजा राय, शालिनी प्रकाशन, इलाहाबाद, 2000 ई०

89 साहित्य चितन डॉ० रामकुमार वर्मा, किताब महल, इलाहाबाद, 1965 ई०

90 सौन्दर्यशास्त्र डॉ० हरिद्वारी लाल शर्मा

91 सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व डॉ० कुमार विमल, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद, 1953 ई०

92 सौन्दर्यशास्त्र की पाश्चात्य परम्परा डॉ० राजेन्द्र प्रताप सिह, नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद

93 सौन्दर्यशास्त्र विविध आयाम परमजीत पाहवा, सजीव प्रकाशन, कुरुक्षेत्र (हरियाणा), 1988 ई०

94 सौन्दर्य – विज्ञान डॉ० हरवश सिह शास्त्री

95 सौन्दर्यशास्त्र स्वरूप एव विकास डॉ० चन्द्रकला, साधना प्रकाशन, चडीगढ

96 स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचना डॉ० जगदीश गुप्त, प्रगति प्रकाशन, आगरा, सन् 1977 ई०

97 स्वाधीनता की अवधारणा और निराला (स०) डॉ० राजेन्द्र कुमार, अभिप्राय, सन् 2000 ई०

98 हिन्दी आलोचना डॉ० विश्वनाथ त्रिपाठी राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1997 ई०

99 हिन्दी साहित्य और सवेदना का इतिहास डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1997 ई०

100 हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, स० 2003

101 हिन्दी साहित्य का इतिहास डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली, 1987 ई०

102 हिन्दी साहित्य के वाद डॉ० द्वारिका प्रसाद मीतल

103 हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 1 नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

104 हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 2 नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

105 हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 (स०) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मडल लिमिटेड, वाराणसी, 1985 ई०

106 हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 (स०) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञान मडल लिमिटेड, वाराणसी, 1985 ई०

सस्कृत

1 अभिज्ञान शाकुन्तलम कालिदास

2 औचित्य विचार चर्चा क्षेमेन्द्र

3 काव्यादर्श दडी

4 काव्यालकार वामन

5 काव्यालकार सूत्र–वृत्ति वामन

6 तैत्तिरीयोपनिषद्

7 ध्वन्यालोक आनन्द–वर्धन

8 वाल्मीकि रामायण

9 महाभारत

10 मनुस्मृति

11 मेघदूत कालिदास

12 श्रीमद्भगवत् गीता

अग्रेजी

1 English Critical Essays Wordsworth

2 Personality Ravindra Nath Tagore, 1948

3 Philosophy of Beauty E F Carritt, 1922

4 Romantic Image Frank Kermode, 1957

(ग) पत्रिकाएँ

1 अभिप्राय

2 आलोचना

3 अवन्तिका

4 उत्तर प्रदेश

5 कल्पना

6 कला–प्रयोजन

7 दस्तावेज

8 माध्यम

9 वसुधा

10 वागर्थ

11 समीक्षा

12 सरयूधारा

13 साक्षात्कार

14 हिन्दी अनुशीलन

15 हिन्दुस्तानी एकेडमी

16 हस